

ISSN : 2319-7137

Volume : 14/Issue : 02
July to December-2021

INTERNATIONAL LITERARY QUEST

An International Multidisciplinary Peer Reviewed Refereed Research Journal



Editor in Chief
Prof. Ashok Singh

Editor
Dr. Vikash Kumar
Dr. Surendra Pandey

International Literary Quest/1

©सम्पादक

प्रधान सम्पादक

प्रो० अशोक सिंह (कुलपति, संत गहिरा गुरु विश्वविद्यालय, सरगुजा, अम्बिकापुर, छत्तीसगढ़)

सम्पादक

डॉ० विकास कुमार (असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, श्री वाष्णोय महाविद्यालय, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश)

डॉ० सुरेन्द्र पाण्डेय (असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, कूबा पी०जी० कॉलेज, दरियापुर, नेवादा, आजमगढ़)

उप सम्पादक

डॉ० नलिनी माथुर (एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, भगिनी निवेदिता कालेज दिल्ली विश्वविद्यालय)

डॉ० विनय कुमार शुक्ल (असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभागाध्यक्ष, रामानुजप्रतापसिंह देवशासकीय स्ना.महा., बैकुण्ठपुर, कोरिया, छ.ग.)

सुनील कुमार सिंह (असिस्टेंट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, अर्मापुर स्ना. महाविद्यालय, कानपुर)

कार्यकारी सम्पादक

डॉ० सच्चिदानन्द चौबे (एसोसिएट प्रोफेसर, अध्यक्ष, इतिहास विभाग, सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, सिद्धार्थनगर, उ.प्र.)

डॉ० अरूण कुमार मिश्रा (असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, मुनीश्वरदत्त स्नातकोत्तर महाविद्यालय, प्रतापगढ़, उ.प्र.)

मोहम्मद आदिल (असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, भवन्स मेहता पी.जी. कालेज, कौशाम्बी, उ.प्र.)

सह सम्पादक

डॉ० वर्षा सिंह (एसोसिएट प्रोफेसर, अंग्रेजी विभाग, देशबंधु कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय)

डॉ० सुदर्शन चक्रधारी (पूर्व शोध छात्र, प्रा.भा.इ. सं. पुरातत्त्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)

डॉ० अजीत कुमार राय (गाजीपुर)

प्रबन्ध सम्पादक

डॉ० रविशंकर पाण्डेय (अतिथि प्रवक्ता, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उ.प्र.)

डॉ० रिपुंजय कुमार सिंह (पूर्व शोध छात्र, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)

राणा अवधूत कुमार (शोध छात्र, भोजपुरी अध्ययन केन्द्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)

विधि परामर्शदाता

डॉ० रणजीत सिंह चौहान

अधिवक्ता, सर्वोच्च न्यायालय

ISSN : 2319-7137

मूल्य : ₹0 250.00

सम्पादकीय पता

डॉ० विकास कुमार

सिविल लाइन, तकिया रोड,

सासाराम, रोहतास (बिहार)

ई-मेल : internationalliteraryquest@gmail.com

मो० : 09470828492, 9934468661

वेबसाइट- www.internationalliteraryquest.com

डॉ० सुरेन्द्र पाण्डेय

एस.एन. 14/191, सरायनन्दन, खोजवाँ,

वाराणसी, उ०प्र०, मो०नं० 09451173404, 7705040045

Email: surendrpanday@gmail.com

मुद्रक :

राजैरिया ऑफसेट

जगतपुरी, दिल्ली-110093

नोट : सभी पद अवैतनिक एवं अव्यावसायिक हैं। प्रकाशित लेखों एवं उद्धरणों का दायित्व स्वयं लेखकों का है। लेखों एवं उद्धरणों से सम्बन्धित किसी भी वाद-विवाद के लिए लेखक स्वयं जिम्मेदार होगा।

संपादक मण्डल

प्रो० अनीता सिंह

अंग्रेजी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रो० रवीन्द्रनाथ सिंह

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ० प्रभाकर सिंह

हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ० एस० आर० जयश्री

महात्मा गांधी कॉलेज, तिरुवन्तपुरम्, केरल

प्रो० बी० गनेशन

बैंगलोर विश्वविद्यालय, कर्नाटक

डॉ० मिकी निशिओका

एसोसिएट प्रोफेसर, रिसर्च डिवीजन ऑफ एशियन, लैंग्वेजेज एण्ड कल्चर III रिसर्च इंस्टिट्यूट ऑफ वर्ल्ड लैंग्वेजेज, ओसाका यूनिवर्सिटी, जापान

प्रो० कीम उ जो

भारतीय अध्ययन विभाग, हाइकू यूनिवर्सिटी, दक्षिण कोरिया

प्रो० आरिफ नजीर

हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी

डॉ० सुनीता सिंह

शिक्षा संकाय, ली० मोयने कॉलेज, सायराक्यूस, न्यूयार्क, अमेरिका

डॉ० मृत्युंजय सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, एस०पी० जैन कॉलेज, सासाराम, बिहार

डॉ० रमेश कुमार

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, श्री वाष्ण्य महाविद्यालय, अलीगढ़

डॉ० सावित्री सिंह

संस्कृत विभाग, महिला महाविद्यालय, सासाराम, रोहतास, बिहार

डॉ० दिग्विजय सिंह

हिन्दी विभाग, के०डी०बी० डिग्री कॉलेज, दुबहर, बलिया

डॉ० प्रिया सिंह

राजनीतिशास्त्र विभाग, गुलाब देवी महिला, पी०जी० कॉलेज, बलिया

डॉ० राजकुमार उपाध्याय मणि

अध्यक्ष, प्रयोजनमूलक विभाग, संत गाहिरा विश्वविद्यालय, सरगुजा, अम्बिकापुर, छत्तीसगढ़

डॉ० आशुतोष कुमार सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, प्रो. रज्जू सिंह उर्फ रज्जू भैया विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उ.प्र.

डॉ० विकास कुमार सिंह

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ० देवेन्द्र प्रताप सिंह

प्राचार्य, कूबा पी०जी० कालेज, दरियापुर, नेवादा, आजमगढ़

डॉ० सपना भूषण

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, वसन्त कन्या महाविद्यालय, कमच्छा, वाराणसी

श्री राकेश कुमार

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, श्री वाष्ण्य महाविद्यालय, अलीगढ़

डॉ० अभय कुमार

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, बी.आर.एम. महाविद्यालय, मुंगेर विश्वविद्यालय, मुंगेर, बिहार

डॉ० रितु वाष्ण्य गुप्ता

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, किरोरीमल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

अनुक्रम

1.	MORAL AND ETHICAL VALUES: SIGNIFICANCE AND RELEVANCE Dr. Seema Yadav	9-13
2.	हिन्दी उपन्यासों में किसान जीवन डॉ० नयना	14-19
3.	मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों में ब्रज और बुन्देली जनपदों का सामान्य परिचय डा० वेदवती राठी	20-24
4.	Challenges to Disinvestment in India Manuj Joshi	25-29
5.	“Traditional Knowledge of Medicinal Plants and Its Use by Indian People” Dr. Shashi Bala Trivedi	30-34
6.	ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत गोरखपुर परिक्षेत्र के व्यापार एवं उद्योग की स्थिति (1800–1947) डॉ० ओंकार नाथ द्विवेदी	35-39
7.	आत्मकथा 'जूठन' : एक परिचयात्मक विश्लेषण राज मणि सरोज	40-41

8.	'मुर्दहिया' का परिचयात्मक विवरण नंदराम	42-44
9.	श्री अरविन्द समग्र योग समाज शास्त्रीय व्याख्या डॉ० सतीश चन्द्र तिवारी	45-47
10.	गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिन्दुस्तान : अपने अतीत का आख्यान मारीषा	48-52
11.	Macbeth : A Linguistic Tragedy SHIKHA MISHRA	53-60
12.	जल संकट और भारत सत्य बहादुर सिंह	61-65
13.	भारत में बालश्रम एक गंभीर समस्या श्रीमती नैपाली	66-74
14.	कॉलरिज की काव्य सम्बन्धी मान्यतायें? डॉ० कमलेश सिंह	75-77
15.	हिन्दी आलोचना यशवंत सिंह वर्मा	78-83
16.	प्राचीन नगरी काशी का सांस्कृतिक और धार्मिक महत्त्व चंद्रकला राय	84-87

17.	डा. रवीन्द्र उपाध्याय के गीतों में राग-विराग देवीदत्त मालवीय	88-94
18.	कविवर डॉ. गोरख प्रसाद मस्ताना के कविताओं में प्रकृति चित्रण डॉ० विकास कुमार	95-100
19.	भारत में संगीत का विकास डॉ० पूर्वी निमगांवकर	101-106
20.	नवाचारी कहानियाँ : संक्षिप्त विवरण डॉ० देवेन्द्र प्रताप सिंह	107-113
21.	महावीर प्रसाद द्विवेदी की अनूदित कृति 'स्वाधीनता' एक विवेचना सदरे आलम	114-115
22.	तथागत बुद्ध के मध्यम मार्ग और आधुनिक जीवन शैली डॉ० अभय कुमार	116-119
23.	1857 की क्रांति में दलित-मुस्लिम स्त्रियों का योगदान डॉ० रोहित कुमार	120-126

24.	हिन्दी संत कवि और उनका दार्शनिक विचारधारा संजय मिंज	127-135
25.	अमीर-उल-उमरा खानजमां अलीकुली खाँ शैबानी : एक परिचय डॉ० मोहम्मद आदिल	136-140
26.	HISTORY AND DEVELOPMENT OF YOGA AND NATUROPATHY IN INDIA Dr. Rakesh Kumar	141-145
27.	शोषण से मुक्ति का आह्वान करती कविताएं अनुज कुमार	146-150
28.	उपनिषदीय आध्यात्मिकता डॉ० अजित कुमार जैन	151-153
29.	शिक्षक-शिक्षा की चुनौतियाँ एवं सुझाव डॉ० सुधा राजपूत	154-157
30.	छायावादी काव्य में नारी का उद्घात स्वरूप गीता देवी	158-167
31.	तीसरी कसम : अधूरी प्रेम कहानी के दिवास्वप्न का कारुणिक अंत डॉ० पंकज राय	168-171
32.	ऋग्वेदकालीन शिक्षा डॉ० अजित कुमार जैन	172-173
33.	वर्चस्व को चुनौती देती चेतना से लैश कविताएँ डॉ. मधुलिका बेन पटेल	174-177
34.	स्त्री विमर्श का नया फलक और उषाकिरण खान डॉ. चन्दन कुमार	178-184

35.	गोदान के काल्पनिक कथानक की वास्तविकता डॉ रोशन रवि	185-189
36.	कबीर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व डॉ० सुरेन्द्र पाण्डेय	190-191
37.	The Menace of Cyber Crime Khursheed Alam Khan	192-195
38.	आधुनिक हिंदी काव्य में पर्यावरण चेतना डॉ० सावित्री रावत	196-200
39.	तुलसी साहित्य में छन्द प्रक्रिया वनीत कौर	201-203
40.	समकालीन हिंदी कविता : समय की चुनौतियाँ डॉ. काली चरण झा	204-208
41.	तुलसी की भक्ति दृष्टि : नवधा भक्ति डॉ० अरुण कुमार मिश्र	209-215
42.	मध्यकालीन भारतीय समाज का समाजशास्त्रीय पक्ष माधुरी कुमारी	216-218
43.	बिक्रम सिंह की कहानियों में स्त्री-विमर्श श्रीमती मीरा देवी	219-224
44.	The outlines of Gift under Muslim Law - A detailed study DR. FARID KHAN	225-232

MORAL AND ETHICAL VALUES: SIGNIFICANCE AND RELEVANCE

Dr. Seema Yadav

Associate Professor, H.O.D.

Department of Law,

S.V. College, Aligarh

“You can see a little in your life, short life a very little indeed. But if you extend your vision to the centuries past you can see beyond your clairvoyance.”

Lala Hardayal

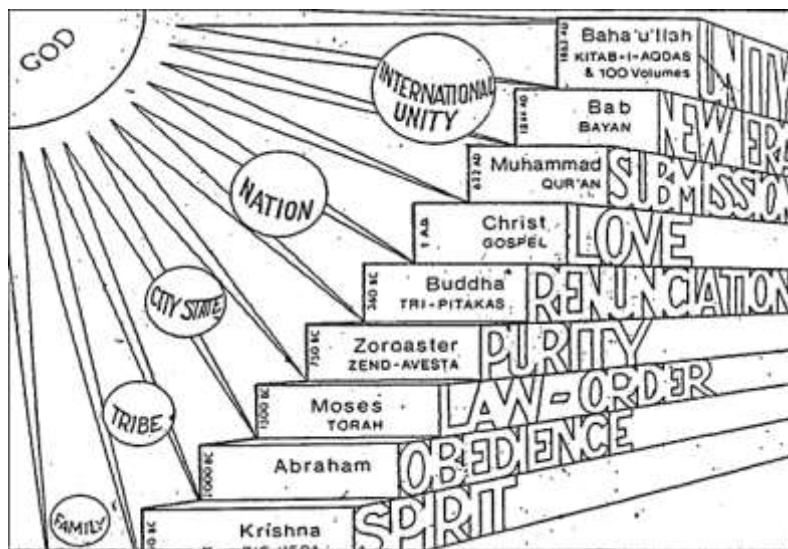
“No life without literature”, is famous Roman proverb & Sanskrit Nitibachan (Ethics) lays down the foundation from where the literature comes: ‘Bhasyate Kathyate Eti Bhasha (भाष्यते कथ्यते इतिभाषा) i.e. language is the sole medium of expression of one’s view. Ideas through this medium find their manifestation and transmission to the coming generation. Although each and every living creature is physical combination of five great elements, but human being possess three basis instincts apart from rather in addition to these five elements; says the Bhagavat Geeta:

भूमिरापोऽनलो वायुः एवम नो बुद्धि रेव चं ।

अहंकार इतीय में भिन्ना प्रकतिरष्टधा ॥

Meaning thereby Earth, Water, Fire, Air, Ether, Mind, Reason & also the Ego- these constitute man’s eight fold divice. Last three are special are special instincts in man that give him superiority over all other living creatures. This standing posture has freed his hand to do something through which he could have realised and visualized himself. To perform all this without mistake which his predecessors could have done, he seeks their guidance through the moral and ethical value they have set for right course conduct in the society which they established.

Since man is a social animal and a society consists of number of persons living together in a righteous manner (सम्यक प्रकारेण बहुवाः जव). This righteous manner depend on contemporary moral ethical and social values. All religions of the world have almost same moral & ethical principles & notions of welfare concept & solidarity to all. Famous British writer Gelle Bulson in his book ‘Devine Symphony’ diagramed holy books with its main principle as follows:-



Gelle Bulson also explained hidden sentiments of all religion in poetic form which is most required in present scenario.

“किताबें अकददस कविता बहाव की
नवयुग बयां है भावना बाव की
मोहम्मद का समर्पण शरीफे कुरआन है
ईशा का बाइबिल प्रेम की शान है
त्रिपिटक त्याग बुद्ध का तो
जेण्डा अवेस्ता पावित्र्य जरथुस्त्र का
मुसा का तोराह विधि व्यवस्था का प्रतीक है तो
प्रेम कर्म ज्ञान कृष्ण गीता का सटीक है।”

These values are not static but are very dynamic according to the needs of the contemporary society e.g. Annie Besant & Bradlofaud prosecuted for obscenity when they advocated for the use of artificial means for birth control, for controlling population for the sake of society & development of nation & wave criticized, but today small children viewing T.V. suggests after their parents to act on the lines of advertisements on this count& now the overpopulation became big hurdle to national development.

Cooperation has been the prime source of development since time immemorial. Bees, ants exhibit extreme cooperation & devotion to their & nests respectively but they never preach the sermons that all bees and ants are sisters. Man (manus) possessing mind does pleads and acts according to norms set by his ancestors for regulating his own conducts in the society duly tested by them on the touch stone of time.

In case our teachers (Guru: Not a person but a principle) are alive may come in their guidance by their exhortations. The term Guru is combination of two words gu-darkness+Ruzchat Removal thereof. One who leads from darkness is Guru (teacher indeed) words are very powerful says Lord Macauley “they may be misconstrued by an intelligent, misinterpreted by a knave, whatever is said ludicrously may be taken

literally and whatever is spoken metaphorically may be taken to be true. The manner emphasis tense & the mode may make the difference between innocence and guilt”.

One's eyes are what one is and his tongue does make him what he will be. Words once spoken may not be taken back as arrow propelled by area may not return back in the situation when aimed by the archer. Every possible restraint while pronouncing a 'word' need be applied. Moreover the nature has bestowed use two eyes, two ears but one tongue making a moral binding on us to speak half of the things which we may see or hear.

The company of great & good man afford us ample opportunities of direct association & communication. The aura (Ardour) of great man, Ascetics & enlightened personalities affects the surroundings atmosphere. The magnetic ray emanating through their body, senses & tip of fingers communicating their pious conduct, willed actions guided by their our superior moral & ethical values founded on their supreme philanthropy developed heuristically by them. Plato argued that “role of education was to help people acquire the kind of knowledge that would bring virtue & the wisdom that comes from the knowledge of the good”.

Lord Krishna is said to be the greatest of Yogis (Yogeshwar) he performed his yogic activities in Brindavan (Mathura). If anyone ever visit 'RamanReti' (dust) & taking off one's socks putting bare feet on that Reti (dust) one may be in eternal peace irrespective one's faith & religion etc. The effects of rays emanating from his body still subsists in the soil of Brindavan or Brij Bhumi (Mathura). Ascetics & great souls do communicate through telepathy & distance becomes immaterial.

So far feet touching practice is concerned it has a scientific base. One gets by touching feet or kissing hands of great man magnetic waves emanating from their body are imbibed by the devote. The process puts a caution on touching feet of each and every person just to avoid unwanted material to take place.

Moral & ethical values are necessary for upkeep of one's moral. Morals are qualities and characteristics that check and balance one's comport in practical life, ethical norms are moral bindings and lack any sanctions for their enforceability except the social inhibitions. Dr. Quadir in his Lecture on Bio Terrorism at Academic stuff college, AMU Aligarh refresher in course programme has rightly remarked that “Bio terrorism, through deviated from the basic ethics of medical profession, is the product of this speciality. Scientists, not a layman, develop biological weapons. We the doctors should be the focal points of action for prevention of minimizing the impact of bioterrorism, media should play the positive role in decreasing the mental/social impact of bioterrorism, instead of creating scar”. Family, School, Society, Religion, Nation etc. are the main components from which moral & ethical values derives. All components have its importance towards moral & ethical values.

In Hindu Mythology thought of inauspicious thinking for others are only pollutes the ideas of thinker but also cause damages to others whose minds are set on that very frequency as minds are universal & everything (idea) coming in one's mind mixing with other gets amplified, goes in every mind. Here is dissolution of thoughts there is resolution of thoughts. Ethics pronounce that honesty is best policy & it is to be observed by all which is moral binding on all society condemns the dishonesty in all its forms and working.

Greatmen through their ideological discourses directly or indirectly convey their wish to the masses act and negotiate in a righteous manner. All the divine books Vedas, Bible, Quran, Kitab-e-Aqdas, Tripitaks, Geeta etc. are divine songs based on morals & ethical values. Some great men have translated these ethical values into action. Their practical experience with expertise knowledge may lead to others to be cautious as regard recidivism to their own follies. The writing of such exalted personalities if codified, may serve the purpose of guidance to the future generations. By reading those books we can associate with their views & ideologies. They are significant and relevant at each & every step we trand & keep a pace with changing needs of the society in which we live.

Moral & ethics are to be pressed into action through our deliberation and their sanctions is social inhibition but in case there is breach of Rules of moral & ethics no sanction as that of law are prescribed to materialise inflict the punishment. Moral & ethical norms are have definite bearing of Sanskars, Intelligence may propel anyone to move in a particular directions but one's sanskar forming his nature (प्रकृति) may restrain him. When Arjun requested Lord Krishna to place his chariot in between armies of Kauravas and Pandavas seeing his kith & kin, Arjun laid down his bow & arrows and sat into his hinder part of his chariot. Lord Krishna explaining Arjun moral & ethical duties exhorted him engage himself in righteous war without any attachment to the consequences thereof.

A person targeting his attainments did perfect his assignment but his aim at the fruit of his action remains halfhearted while every action entails its reaction teaching to Veda inculcate that performance of duty, they concern fruit of action is yours i.e. कर्तव्यं दक्षिणास्ते जयो मयं सभ्यता. Geeta reiterates the theory of निष्काम कर्मयोग with no attachment of its fruits. The supreme moral & ethics lies here as under:

“करमण्येवाधिकारस्ते मां फलेषुकदाचन ।
मा कर्मफल हेतुर्भूमा ते सगडोऽस्तवकर्माणि ॥”

The equanimity of Yoga by relinquishing attachment & by indifference to success & failure frees the mind of the door from any worry & whole hearted performance is guaranteed leading to success in variably. A person bathing in Ganga river derives the benefits of bathing, another person feeling his moral duty not only gets the benefit of both but also gets mental satisfaction and peace.

Knowledge is man's principal opportunity for progress. To realize his opportunity, knowledge has to be transformed from man to man and from country to country. It has to be implemented by creative work & decision making, for this knowledge has to be relevant to the needs of the people & resources of the country. It also has to be harmony with culture & knowledge itself is always positive, but its use can be both beneficial & detrimental. All this implies the need for value judgments & ethical knowledge because “when the life from the Body is perforce to depart Better is that it should quit with honour: This is the end of the world & it is all; That a name after death should survive the individual (Sa'di). Last not the least I agreed with the views of Stephen Hawking-

“Look up at the stars and not down at your feet,

International Literary Quest/12

**Try to make sense of what you see and wonder,
about what makes the universe exist be Curious”.**

**Thankful to respected luminaries & authors for their valuable works,
which motivated/inspired me to mention them in my paper.**

REFERENCES

1. Bhagwat Geeta : Chapter VII, Shlok 3:4
Chapter II, Shlok 47
2. Lala Hardayal : Hints for Self Culture
3. Rokeach Milton (1973) : The Nature of Human Values New
York, Foe Press
4. Steffen Roth (2013) : Human systems management
5. Pelto Pertri J. (1968) : The differences between “Tight &Loose
Societies”
6. Journal of cross (2015) : The index of cultural tightness and
looseness among 68 countries.
7. Hacker Violaine (2011) : Building medias industry while
promoting a community of values in the
globalization; from quixotic choices to
pragmatic boon of EU citizens
(Politidee Vedy, Journal of Political
science, Slovakia P. 64-74.
8. Lymp Kahle Pierreualatte Flournce : Market place life style in an age of
(2012) social media, New York ME Sharpe,
15BN978- 0-7656-2561-8
9. Abhraham Maslo (1943) : A Theory of Human Motivation
10. Sukh Sagar : Stories of Hindu Mythology
11. Sanskrit Nitibachoon

हिन्दी उपन्यासों में किसान जीवन

डॉ० नयना

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
जाकिर हुसैन कॉलेज (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय

भारत देश की संस्कृति का मूल आधार कृषि है। लाल बहादुर शास्त्री द्वारा निर्मित 'जय जवान जय किसान' नारे में यह दिखता है कि हमारे जीवन में जितना महत्व एक जवान का है उतना ही एक किसान का भी है। सैनिक भारतीय सीमा पर अचल रह सभी प्रकार की कठिनाइयों को स्वयं झेल कर उसे हरा देता है और हमारी हर प्रकार के डर व समस्याओं को दूर कर देता है। ठीक उसी प्रकार किसान हमारे जीवन को जीवित रखने का कार्य करता है। जीवन तत्व हम तक उनकी दिन रात की मेहनत द्वारा ही पहुंचता है। साहित्य में भी जीवन के इस महत्वपूर्ण पक्ष को बड़ेही सरल व स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया गया।

सर्वप्रथम प्रेमचंद जी जिन्हें गांव का कहानीकार भी कहा जाता है, किसानी जीवन के यथार्थ को हमारे समक्ष बड़े सहज रूप में रखा है। "प्रेमचंद का मुख्य सरोकार जमीन से जुड़े किसान हैं, उनके जीवन की वे यातनाएं हैं जो उन्हें लगभग आत्महत्या तक धकेल देती हैं। प्रेमचंद की यह परंपरा नागार्जुन, रेणु, भैरवप्रसाद गुप्त, मार्कण्डेय, विवेकी राय से होती हुई रामदेव शुक्ल, मिथिलेश्वर, रामदरश मिश्र, शिव प्रसाद सिंह, जगदीश चन्द्र आदि तक विस्तार पाती है किन्तु प्रेमचंद की परंपरा का अर्थ ठीक उन्हीं की तरह और सिर्फ उन्हीं पात्रों पर लिखना नहीं है। प्रेमचंद की संवेदना, सरोकार और दृष्टि ही उनकी परंपरा है जिसे हम आज जल, जंगल के आसमान-वितरण के संघर्ष में देखते हैं।" (हंस, अगस्त 2006 यातना, संघर्ष और स्वप्न) 'गोदान' किसान जीवन के संघर्ष की ऐसी कहानी है जिसमें भारतीय समाज के दूसरों रूपों की झलक मौजूद है। यदि कुंवर पाल सिंह के शब्दों में कहे तो 'गोदान' किसान के भूमिहीन बनने की प्रक्रिया का उद्घाटन करती है।

ग्रामीण जीवन पर लिखे उपन्यास का केंद्रबिन्दु अधिकांशतः भारतीय किसान ही हैं। 'होरी', 'गोदान' का केंद्रीय पात्र है। वह तत्कालीन भारतीय किसान की इन वस्तुगत परिस्थितियों में पूरी दशा एवं मानसिकता का समर्थ नमूना है। बेलारी के होरी की सारी आर्थिक विवशताओं के मूल में भारत में अंग्रेजों के साम्राज्यवादी शासन की प्रतिच्छाएं हैं। यह सच है कि गोदान की वृत्ति अर्थमूलक है लेकिन इस अर्थकेन्द्रित वृत्ति से ही होरी और समग्रतः पूरे उपन्यास की मानवतावादी दृष्टि समाप्त हो गई हो ऐसा नहीं है। होरी तो आदर्शों से अंत तक चिपटा हुआ है। यद्यपि आर्थिक वैषम्य को वे आदर्श उसके लिए दुख का कारण ही बनते हैं। होरी एक ऐसा पात्र है जो अपनी दुर्बलताओं के कारण ही हमारी आधिकारिक सहानुभूति का पात्र बनता है। वह भारतीय किसान की तत्कालीन स्थिति और उसकी पराजय का भी प्रतिनिधित्व करता है। वह प्रेमचंद जी की जीवन दृष्टि का प्रतीक है। वर्गों का संघर्ष गोदान में है लेकिन वह साम्यवादी वर्ग संघर्ष की कोटि का नहीं है। वह सत्य और असत्य का संघर्ष है। असत् का प्रतिनिधित्व है— जमींदारों साहूकारों और काकनों का वर्ग जो कृषक वर्ग की वेदना को तीव्रतर और घनीभूत करने के उद्देश्य से ही आया है। भारतीय किसान की स्थिति को उसके यथार्थ की तीव्रता को आदर्श धर्म का आवरण पहनाया गया है।

किसान खेतों की रक्षा के लिए अथक परिश्रम करता है क्योंकि 'कृषि प्रधान देश में खेती केवल जीविका का साधन नहीं है, सम्मान की वस्तु भी है। होरी की गाय लेने की इच्छा एक ऐसी इच्छा है जो अथक परिश्रम के बावजूद पूरी नहीं हो पाती। ऐसी अपूर्ण इच्छाओं का चित्रण करते हुए प्रेमचंद जी ने यह दिखाया है कि किसानों के शोषण की मात्रा कितनी अधिक है। वह होरी जो जीवन भर गाय लेने की इच्छापूर्ति के लिए संघर्ष करता रहा, जब मरता है तो पंडित दातादीन गोदान की आवश्यकता समझते हैं। यदि किसान आंदोलन की ओर ध्यान दे तो "प्रेमाश्रम के सत्रह अठारह वर्षों के बाद लिखे हुए गोदान में किसान को अधिक विद्रोही दिखाना चाहिए था, लेकिन वास्तविकता यह थी कि तमाम आंदोलनों के बावजूद भारतीय किसान काफी संतोषी, भाग्यवादी और धैर्यवान रहा है, अपने अनुभवों से प्रेमचंद ने इस तथ्य को अंत में समझा और होरी के रूप में उन्होंने ऐसे किसान का चित्रण किया जो तमाम किसानों का प्रतिनिधि हो सका। "गोदान वह उपन्यास है जहां गंगा और जमुना जैसी ये दोनों धाराएं— नारी वाली धारा, किसान वाली धारा यानी सेवा सदन की और प्रेमाश्रम की। दोनों धाराएं समन्वित समंजस्य एकीकृत रूप में जिस एक उपन्यास में एकत्र होती हैं यद्यपि उसकी शुरुआत रंगभूमि में ही सबसे प्रभावशाली रूप में व्यक्त होती है। गोदान में जाकर नारी अलग से सेवासदन की सुमन जैसी नारी नहीं रहती बल्कि एक ही किसान के घर में वह होरी और धनियां के रूप में गोबर और झुनिया के रूप में और मध्यवर्ग का चरित्र कितना कमजोर होता है यह मेहता और मालती के रूप में जो नए मूल्यों की एक तरह से पीत छाया मात्र है। जो निरे आदर्शवाद से आतंकित हैं जो यथार्थ की जबान को धारण नहीं कर पाते हैं। इन युगों के साथ ये उपन्यास प्रेमचंद के अकेले प्रेमचंद के हाथों दोनों धाराएं एकजुट होकर उस बिन्दु पर पहुंचती हैं जहां भारतीय उपन्यास पैदा होने के साथ ही सहसा वयस्क होता है।" (कर्मभूमि, व्याख्यान, डॉ नामवर सिंह, पृ 29) 'प्रेमाश्रम' के बलराज और मनोहर जैसे किसानों को प्रेमचंद जी ने बहुत विद्रोही दिखाया था, लेकिन होरी को उन्होंने संतोष, धैर्य, सहनशीलता तथा अंधविश्वास का पुंज दिखलाया, जो भारतीय किसानों की जाती विशेषता है।

किसान में पीड़ा सहने की जितनी शक्ति है, वह पीड़ा को दूर करने के संगठित संघर्ष में भी लग सकती है। प्रसाद जी ने 'तितली' उपन्यास में अपने समकालीन उपन्यासकार प्रेमचंद की ही भांति किसानों की भुखमरी बेकारी और गरीबी जैसी समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है। उन्होंने तितली उपन्यास में ग्रामीण जीवन और समाज के कुरूपतम दृश्यों को नजरअंदाज न करके, उन्हें सफलता से चित्रित किया है। इसमें जमींदारी, महाजनों द्वारा किसानों के होते हुए शोषण, सम्मिलित कुटुंब की स्वार्थवृत्ति के कारण टूटते हुए परिवार, अपनी आर्थिक एवं दयनीय स्थिति से जूझते हुए किसान और गांवों में होते हुए विकास को चित्रित किया है। तितली का मधुबन कुछ दिन शहर में मजदूरी कर आया तो क्या अंत में किसान ही रहता है। किंतु नागार्जुन के 'बलचनमा' का नायक मधुबन से भिन्न एक दूसरा रूप हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है। मधुबन निम्न श्रेणी का किसान था, यद्यपि किसी कारणवश उसे मजदूरी करनी पड़ी। किंतु नागार्जुन का बलचनमा ऐसा भावुक है, जिसके माता पिता लगान रहे न औरकर्ज आदि की मुसीबतों में पड़कर बेदखल होते होते नाम मात्र को किसान रह गए और उनकी दूसरी पीड़ी का बलचनमा नाम मात्र को किसान न रहकर मजदूर बन गया। जबवह देखता है कि शोषक गरीबों का अधिक से अधिक शोषण कर ऐश्वर्यवाली बने जा रहे हैं और दलितों को उनकी सेवा कर भी भरपेट भोजन और तन ढाकने को पर्याप्त वस्त्र भी नसीब नहीं नहीं, तो वह ईश्वर के इस अन्याय को देख अत्यंत कटु बन जाता है। डॉ बच्चन सिंह कहते हैं "बलचनमा की कथा वहां से शुरू होती है, जहां गोदान समाप्त होता है, यानी मजदूर से।" (हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, डॉ बच्चन सिंह, पृ 518) जिस आत्म चेतना के दर्शन हमें होरी में नहीं होते, मधुबन में नहीं होते, वह अपनी

पूर्णतया के साथ बलचनमा में विद्यमान है। बलचनमा 1937 का नवांकुरित युवक है जिसमें पूर्व किसान मजदूर आंदोलन अपनी पूर्ण सक्रियता, कर्मण्यता के साथ संपन्न हो चुका है।

मोटे तौर पर उस युग में तीन तरह के किसान वो कुछ लोग ऐसे थे जिनके पास जमीन जोतने का अधिकार तो था, लेकिन वे उस पर स्वयं खेती नहीं करते थे। 'गोदान' के पंडित दातादीन ऐसे ही किसान थे। ये खेती के अलावा लेन देन का धन्धा भी करते थे। अधिकतर ब्राह्मण जाति के किसान स्वयं हल नहीं चलाते। प्रेमचंद ऐसे व्यक्तियों को किसान नहीं मानते। दूसरी श्रेणी उन किसानों की रही, जिनके पास जमीन जोतने का अधिकार नहीं होता। वे दूसरों के खेतों पर काम करते हैं। ऐसे खेतीहर मजदूर अधिकतर नीची समझी जाने वाली जातियों के लोग होते हैं। प्रेमचंद जी ने बताया है कि आर्थिक दबावों से पीड़ित होकर किसान खेत-मजूर बन रहे हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे लोग भी गांवों में रहते हैं, जिनके पास जमीन जोतने का अधिकार भी होता है और ये स्वयं अपने खेतों में काम करते हैं और जमीन का लगान देते हैं। 'तितली' का मधुबन भारतीय किसान की उस पीढ़ी का नेतृत्व करता है जो प्रगतिशील एवं संघर्षशील है। बाबा रामनाथ के उच्च आदर्शों एवं उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर मधुबन उच्च जाति का होते हुए भी खेती करने एवं हल चलाने पर अपने आपको नीचा नहीं समझता। ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने भारतीय किसान पर उपज पर कर लगाने के बजाय जमीन पर लगान निश्चित कर दिया था। फलस्वरूप किसानों को अकाल या बाढ़ के कारण फसल नष्ट होने पर भी नयी कर व्यवस्था के कारण लगान देना अनिवार्य हो गया था। ब्रिटिश साम्राज्यवाद की इस नयी कर व्यवस्था के कारण, किसानों की आर्थिक स्थिति दयनीय होती गई। पति मधुबन के कलकत्ता भाग जाने पर, संघर्षशील महिला किसान तितली, न केवल अपने लिए संघर्ष करती है, बल्कि किसानों का नेतृत्व भी करती है। प्रसाद किसानों को शोषण से मुक्ति के लिए यह संदेश देते हैं कि भूमि पर जमींदार या महाजनों का स्वामित्व नहीं होनी चाहिए। जब तक भूमि पर जमींदार आदि का स्वामित्व होगा किसानों का कल्याण होना असंभव है किसानों का वास्तविक कल्याण तभी संभव है जब भूमिपर किसानों का स्वामित्व होगा। 1950ई के आसपास भारतीय सामज और राजनीति की जो पहचान नागार्जुन को थी, वह शायद ही किसी समकालीन उपन्यासकार को रही है। वह साफ साफ लिखते हैं – "कलकत्ता बम्बई के सेठ साहूकार भी भीतर ही भीतर गांधीजी का पक्ष ले रहे थे। उनको साफ साफ लोकता था कि स्वराज होने से जास्ती भलाई उन्हीं की होगी। वे देख रहे थे : सरकार झुकती है तो सुराज मिलता है। सुराज मिलता है तो अधिक से अधिक कल कारखाने वे खड़ा कर सकते हैं। अभी जो देश को दुहकर सारी सम्पदा अंग्रेज ले जाते हैं, स्वराज होने पर वह सब सीधे उनके खजाने में आने लगेगी।" (संपूर्ण उपन्यास, भाग 1, नागार्जुन, पृ0 49)

किसान संघर्ष के आंचलिक रूप को हम नागार्जुन के उपन्यासों में देख सकते हैं। प्रेमचंद के समान नागार्जुन का भी किसान जीवन की समस्याओं से गहरा तादात्म्य है और शायद यही कारण है कि उनके उपन्यासों में ग्रामीण जन-जीवन को वास्तविक यथार्थानुभूति होती है। आजादी के बाद सबसे बड़ा महत्वपूर्ण परिवर्तन ग्रामीण जीवन और कृषि अर्थ व्यवस्था में आया है। जमींदारी उन्मूलन कृषि का आधुनिकीकरण औद्योगिकीकरण नवीन पंचवर्षीय योजनाएं, सहकारी खेती, चकबंदी, भूमि सुधार संबंधी नए कानून आदि से भारतीय ग्राम्य जीवन में उथल पुथल हुई। अंततः कहा जा सकता है कि औद्योगिक क्षेत्र में पूंजीपतियों द्वारा तथा ग्रामीण क्षेत्र में नए वर्ग द्वारा आम किसान मजदूर का शोषण जारी रहा जमींदारों द्वारा किसानों संगठनों को तो इनकी प्रत्येक चाल किसानों की राजनीतिक समझ के आगे नाकाम हुई। 'रतिनाथ की चाची' का कालीचरण, 'बलचनमा' का बलचनमा, 'बाबा बटेसरनाथ' का जैकिसुन, जीवनाथ, दयानाथ, 'वरुण के बेटे' का मोदन मांझी किसान वर्ग के चेतना- सम्पन्न प्रतिनिधि पात्र है। नागार्जुन के 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में किसान मजदूर आंदोलन जहां नेताओं की

अवसरवादिता के कारण असफल होता है वहां 'बलचनमा' उपन्यास में किसान मजदूर संघर्ष वर्गीय वैचारिकता से सम्पन्न जुझारू संगठन के नेतृत्व में सफलता प्राप्त करता है। 'बाबा बटेसरनाथ' उपन्यास में नागार्जुन ने किसान संघर्ष का चित्रण एक नूतन शिल्प प्रयोग के द्वारा किया है। मिथिलांचल के रूपउली गांव के सौ वर्षों का राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक इतिहास जैकिसुन को वट-वृक्ष बाबा बटेसरनाथ कहानी के रूप में सुनाते हैं। सामंती एवं पूंजीवादी व्यवस्था के संघि काल में किसानों पर जमींदारों, महाजनों, सरकारी अधिकारियों और पुलिस के नृशंस अत्याचार, जमींदारों द्वारा गांव के सार्वजनिक तालाबों, वृक्ष, भूमि आदि पर अवैध अधिकार तथा किसानों की बेदखली आदि के विरोध में गांव में उभरती हुई साम्यवादी चेतना से युक्त नई पीढ़ी के नेतृत्व में संगठित किसानों का अपने वर्गहित के लिए निरंतर संघर्ष जारी रहता है। एक ओर जहां अदालत जमींदारों के हित में फैसला मुलतबी करती है वहीं दूसरी ओर पुलिस के लोग पाहुने बनकर किसानों के घर दावतें उड़ते हैं। 'बाबा बटेसरनाथ' उपन्यास की कथावस्तु बिहार के रूपउली अंचल विशेष की ही कथावस्तु ही नहीं है अपितु भारत के उन समस्त गांवों में होने वाली उथल पुथल की कहानी है जहां जमींदार सार्वजनिक संपत्ति बनाकर खेतीहर मजदूरों और किसानों को भूमिहीन बना रहे थे।

फणीश्वरनाथ रेणु के 'परती परिकथा' का मुख्य कथा केंद्र कृषि क्रांति है। कृषि विकास में वैज्ञानिक अनुसंधान की नवीनतम उपलब्धियों का उपयोग कर गांव की इस विशाल सुदृक, धरती को जोड़ना जो अगणित अंधविश्वासों, अंधपरंपराओं और जड़ और सांस्कृतिक सड़ी व्यामोह-ग्रस्तताओं को धरती है। इसकी उपलब्धियों पर ध्यान जाता है तो ऐसा लगता है कि परंपरा और प्रगति के संघर्ष में कथाकार परिवर्तित जीवन मूल्यों की पुनरु स्थापना में सफल होता है। धर्ममूलक सांस्कृतिक कृषि वाले ग्रामांचल में अर्थमूलक वैज्ञानिक कृषि का अवतरण निस्संदेह एक युग का अंत है यह परंपरावादी गांव में आधुनिकता का प्रवेश है।

'दन्ताराक्षस' आधुनिक वैज्ञानिक संयोग है, जिसकी सहायता से ट्यूबवेल, नहर आदि की खुदाई और सिंचाई आदि के आधुनिक प्रोजेक्ट पूर्णता को पहुंचाए जाते हैं। आधुनिक वैज्ञानिक संयंत्र को उसकी बनावट और कार्यप्रणाली की दृष्टि से 'दन्ताराक्षस' के चित्रबिंब में उपस्थित करना चमत्कारपूर्ण है सुंदरी साक्षात् विकासयोजना है। इस प्रकार वंध्या परती भूमि को जलस्रोतों से परिपूर्णाकार कृषि क्रांति का प्रत्यावर्तन यदि उपन्यास की मुख्य प्रतिज्ञा है तो उसकी यह केंद्रीय लोककथा तत्संबंधी निर्माण की प्रतीकात्मक व्याख्या है। इसके युगांतकारी कथानायक जितेन्द्र में गांव की सांस्कृतिक क्रांति का कृषि आधारित सपना है जिसके लिए आधुनिक संयंत्रों आदि का सहारा लेने के बाद भी उस रागतत्व की सुरक्षा चाहता है, जो इसे जोड़ता है। भारतवर्ष में कृषि क्रांति का आरंभिक बिंदु जमींदारी उन्मूलन है। प्रेमचंदयुगीन मूल्यों और मान्यताओं से यथार्थवादी स्तर पर भिन्न टोस मुद्दों की अपेक्षा थी। जिन्हें रेणु ने बड़ी ही गहराई से उठाया है। आंचलिकता के सूत्रों से कृषि क्रांति की पकड़ 'परती-परिकथा' की महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

इस उपन्यास में पांच मुख्य आयाम हैं जिनसे कृषि क्रांति मुख्य आयाम है जो मुख्यतः एक घटना द्वारा उजागर होता है, जिस दिन जितेन्द्र के द्वारा टैक्टर से परती तोड़ने पर बकझक करने वाले स्वयं उस पर कब्जा करने की दौड़ में अपना अपना हल बैल लेकर पहुंच जाते हैं। भैरवजी ने अपने कथा-साहित्य में प्रेमचंद की भांति ग्राम्य परिवेश को उसकी समग्रता के साथ प्रस्तुत किया है। 'गंगा मैया' से लेकर 'सत्तीमैया का चौरा' तक के उपन्यासों में स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण यथार्थ की मुखर अभिव्यक्ति हुई है।

‘गंगा मैया’ उपन्यास का मुख्य स्वर राष्ट्रीय स्वतंत्रता के प्रतिमोह भंग और जमींदारों के विरुद्ध वर्ग संघर्ष है। भैरव जी ने इस उपन्यास में जिस कलात्मकता और चेतना के स्तर पर किसानों की जीवन का चित्रण किया है उसके आधार पर उन्हें प्रेमचंद जी का असली वारिस कहा जा सकता है। ‘गंगा मैया’ के ग्रामीण यथार्थ की प्रमाणिकता का संकेत बिहार, बंगाल और उत्तर प्रदेश के किसान संघर्षों में मिल जाते हैं। जमींदारी उन्मूलन के बाद जमींदारों ने परती भूमि पर अवैध कब्जा कर किसानों का शोषण करना शुरू कर दिया। वहीं प्रतिक्रिया स्वरूप किसान संगठन के अधीन वर्गीय अधिकारों को पाने के लिए किसानों ने जमींदारों के विरुद्ध अपना संघर्ष चलाया। यद्यपि इन संघर्षों में किसानों को सफलताएं— असफलताएं दोनों ही मिली हैं। ‘गंगा मैया’ उपन्यास में किसान और जमींदारों का संघर्ष स्थल पूर्वांचल है। जिस क्षेत्र और नदी का वर्णन है, वह सरयू नदी के दीयार का क्षेत्र है। सरयू तट पर स्थित दीयार क्षेत्र में अच्छी फसल होने के कारण, बलिया के लोग सरयू को ‘गंगा मैया’ कहते हैं। ‘गंगा मैया’ संबोधन सरयू के प्रति किसानों की कृतज्ञता है, स्नेह है। गंगा की कछार भूमि पहाड़ी तोड़ों से घिरी परती भूमि है। ‘प्रेमचंद के बाद कथा साहित्य में फणीश्वर नाथ ‘रेणु’ का एक ऐसा प्रतिष्ठित एवं सम्मानित नाम है जिनकी रचनाओं के पास हमें बार-बार जाने की जरूरत महसूस होगी अपने समय संदर्भ का अर्थ ढूंढने के लिए और प्रेमचंद के बाद हिंदी प्रदेशों में ग्रामीण यथार्थ की विकसित संवेदना में बदलाव तलाशने के लिए भी।’ (परिषद् – पत्रिका, रेणु विशेषांक, जुलाई-दिसम्बर, 2001, पृ 72)

रामदरश मिश्र के उपन्यास ‘पानी के प्राचीर’ में संपूर्ण उपन्यास में टेढ़ा ग्रामांचल है और खेत, किसान, खलिहान और देवरी-डांड का वातावरण है। नीरून के पिता ही नहीं सारा गांव दरिद्र है। खेत रहन रखकर बच्चों की शादी और पढ़ाई चलती है। जाड़े में सारा गांव नथुआ के साग पर जीता है। वस्तहीन गरीबों की ठंडी रातें कटकटातें कूं कूं करके बीतती हैं। बाढ़, प्लेग और अकाल की छाया में जन साधारण का जीवन सिकुड़ा सिकुड़ा ही चुक जाता है।

कमलकांत त्रिपाठी जी द्वारा लिखित दो उपन्यास पाहीघर और बेदखल इतिहास कथा होने के साथ ग्राम कथा भी है। यह मात्र संयोग नहीं है कि प्रेमचंद ने भारतीय किसान की त्रासदी की अभिव्यक्ति के लिए अवध की जिस कथा भूमि को चुना था वहीं पाहीघर और बेदखल की कथा भूमि की है। गोदान के गांव सेमरी और बेलारी की ही तरह पाहीघर और बेदखल का गांव कसौली की अवध की उन सैकड़ों हजारों गांवों में से एक है जहां पहली बारिश के बाद किसान उत्साह के साथ हल बैल के लिए खेत की ओर दौड़ता है। मगर खेत उसका नहीं। तालुकदार जब चाहे उसे बेदखल कर दें।

गोदान के होरी महतों की ही तरह ‘पाहाघर’ के जयकरन अहीर और बेदखल के सुचित कुर्मीअपने खेत से बेदखल होना पड़ता है और इस बेदखली की जड़ में गोदान के पंडित दातादीन की ही तर्ज पर ‘पाहीघर’ के मालगुजार शंकर दुबे और बेदखल के पदारथ तिवारी हैं। कर्ज, मालगुजारी, नजराना और बेदखली से त्रस्त अवध के जयकरन और सुचित सरीखे किसानों के अठारह सौर सत्तावन का विद्रोह एवं बेदखल का बाबा रामचंद्र के नेतृत्व में किसान आंदोलन महज इतिहास की थिंगली न होकर इन उपन्यासों की केन्द्रीय अर्न्तवस्तु है। यहां पर यह द्रष्टव्य है कि ‘पाहीघर’ में 1857 के विप्लव के दौरान तालुकदारों जमींदारों व मालगुजारों का जो कुलीन संवर्ग अपनी हितों की रक्षा के लिए निर्धन किसानों को अंग्रेजों के विरुद्ध इस्तेमाल कर रहा था। वही कुलीन वर्ग ‘बेदखल’ में अंग्रेजों के साथ गठजोड़ करके किसान रियाया पर भूमि बेदखली का कहर ढा रहा था। इस प्रकार उपन्यासकार राष्ट्रवाद और राष्ट्रीय चेतना के विकास का एक वैकल्पिक विमर्श खड़ा करते हैं जिसमें किसान दृष्टि को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। उपन्यासकार किसान की ‘परजा’ होने की उस नियति को भी रेखांकित करता है जिसके चलते नवानी जमाने में भी गांव में फौज आने की खबर सुनते ही पूरा गांव खाली हो जाता था। पाहीघर के जयकरन की मौत का मार्मिक प्रसंग भारतीय किसान की निष्फल

श्रमगाथा का अंत है। पाहीघर में जहां सन् 1857 के विप्लव की पृष्ठभूमि में किसानों की त्रासद स्थितियों का चित्रण है वहीं बेदखल में 1920 के दशक में अवध के किसान आंदोलन का चित्रण है। यहां किसान न केवल नई चेतना से लैस है वरन उनका आंदोलन व्यापक राष्ट्रीय संघर्ष से जुड़कर, राष्ट्रीय आंदोलन के मध्यवर्ग आधार का भी विस्तार करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. अंग्रेजी ढंग का नॉवेल और भारतीय उपन्यास, डॉ० नामवर सिंह
2. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ० बच्चन सिंह
3. उपन्यास की पहचान: मैला आंचल, गोपाल राय
4. किसान आंदोलन के डेढ़ सौ वर्ष, रामचन्द्र सिंह
5. निराला ग्रंथावली, डॉ० रामविलास शर्मा
6. प्रेमचन्द और उनका युग, डॉ० रामविलास शर्मा

मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों में ब्रज और बुन्देली जनपदों का सामान्य परिचय

डा० वेदवती राठी

ऐसोसिएट प्रोफेसर, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
धर्मसमाज महाविद्यालय, अलीगढ़

चर्चित कथाकार मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों का परिवेश ग्रामीण है। वह वहाँ के अनुभवों को अपने विचारों में परिवर्तित कर के कहानियों को दिशा देती हैं। ब्रज और बुन्देली अंचल से स्वयं का जुड़ाव होने के कारण भी उनका अनुभव व्यापकता की ओर अग्रसित होता है मैत्रेयी पुष्पा अपनी कहानियों में आंचलिकता की अभिव्यक्ति के माध्यम अंचल-विशेष की संस्कृति, रहन-सहन, रीति-रिवाज, प्राकृतिक छटा, भौगोलिक परिवेश, जन-जीवन की चेतना, वर्गभावना, परम्पराओं, अंधविश्वास, जाति-व्यवस्था और विभिन्न आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक परिस्थितियों का समग्र अंकन करती हैं।

चूँकि मैत्रेयी पुष्पा ब्रज जनपद में जन्मी, पत्नी-बढ़ी तथा माताजी की सरकारी सेवा करने के दौरान बुन्देली के क्षेत्र में रही और बुन्देल खण्ड विश्वविद्यालय झाँसी से हिन्दी सहित्य का उच्च संस्कार प्राप्त किया, इसलिए उनके जीवन में यह विचित्रता देखने को मिलती है कि ब्रज और बुन्देली दोनों जनपदों के मानव-जीवन को उन्हें निकट से देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

भारत एक विविधतापूर्ण संस्कृति-सम्पन्न देश है। इसीलिए भारत के प्रत्येक प्रान्त, समाज और सम्प्रदाय का रहन-सहन अलग-अलग है। सामान्य जीवन के अन्तर्गत रहन-सहन, आवास, वस्त्र, वेशभूषा, खान-पान और ओढ़ने-बिछाने के वस्त्र आदि का वर्णन होता है। मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों का परिवेश ग्रामीण अंचल से सम्बन्धित हैं। अर्थोपार्जन के द्वारा ही समाज के विविध वर्ग निर्धारित होते हैं। ग्रामीण समाज में उच्च तथा निम्नवर्ग की प्रधानता होती है मध्यम वर्ग नगरीय समाज में देखने को मिलता है। ग्रामों में मजदूरी, किसान, जमींदार वर्ग की बहुलता के कारण उनके रहन-सहन में भिन्नता मिलती है। उच्च वर्ग की अपेक्षा निम्नवर्ग के रहन-सहन का स्तर साधारण होता है।

ब्रज अंचल में स्वाधीनता पूर्व से ही जमींदार वर्ग आर्थिक रूप से सम्पन्न है। इसीलिए उनके रहन-सहन का स्तर उच्च-कोटि का है। 'छाँह' (ललमनियाँ तथा अन्य कहानियाँ, संग्रह) कहानी में जमींदार ददुआ के व्यक्तित्व का चित्रण द्रष्टव्य है—

“ मेरे गाँव के जमींदार रहे हैं ददुआ। रियासतों का जमाना देखा है। शीशेदार झूल से सजे ऊँट पर बैठकर चला करते थे कभी। भव्य तेजस्वी व्यक्तित्व के स्वामी, दूधिया गौरवर्ण। बड़ी-बड़ी काली मूँछे। झक्क सफेद लिबास पर लहरियादार पगड़ी। वैश्य होकर भी क्षत्रियों की सी आन-बान। वैसी ही गरिमा। जिधर निकलते, लोग राह छोड़कर अलग खड़े निरखते रह जाते। पूरे पाँच गाँव की जमींदारी थी।”¹

‘हवा बदल चुकी है’ (चिह्नार संग्रह) कहानी में भी जमींदार सुजान ठाकुर की सम्पन्नता की ओर संकेत किया गया है—

“ तब सुजान ठाकुर के पिता बीस गाँव के जमींदार थे—रौब-रूतवा, खत्ती-खास, अशर्फियों से भरी तिजौरी सब कुछ था घर में।”²

ग्रामीण समाज में उच्चवर्ग की अपेक्षा निम्नवर्ग का आर्थिक स्तर नीचा है। यह निम्न वर्ग दबा-कुचला, शोषित होने के कारण पिछड़ा हुआ है। अतः रहन-सहन का स्तर भी साधारण है। 'मन नाँहि दस-बीस' (चिह्नार संग्रह) कहानी में हरिजन जाति के व्यक्तियों के रहन-सहन का चित्र निम्न वाक्यों में देखिए—

“हम लोग जाटव थे। हरिजन टोले में रहा करते थे। भीतर एक कोठा था और उसके आगे झुका ढीला-सा छप्पर लटका रहता, जिसे अम्मा बरंडा कहतीं और उसी से लगाकर अम्मा ने मिट्टी की दीवार के रूप में छोटी-सी चारदीवारी उठा ली थी, काफी नीची-नीची दरवाजे पर जहाँ टूटी-सी किवाड़ चढ़ी थी वहाँ वह मिट्टी की बनी दीवार ऊँची हो उठी थी। बस, यही सम्पत्ति थी हमारे पास।”³

समकालीन भारतीय समाज एवं संस्कृति में तीव्रता से परिवर्तन हो रहे हैं तथा भारतीय ग्रामीण समाज भी इन परिवर्तनों से अछूता नहीं है। उद्योगीकरण के समय में नगरीय समाज से सम्पर्क बढ़ जाने के कारण आवागमन एवं संचार-साधनों में सुधार तथा शिक्षा की सुविधाओं में वृद्धि के कारण आज भारतीय ग्रामीण समाज का स्वरूप पूर्णतः परिवर्तित होता जा रहा है। ब्रज अंचल में इसकी गूँज ज्यादा सुनाई देती है। 'केतकी' कहानी (चिह्नार- संग्रह) में उच्चवर्ग की विद्यावती शहर की वस्तुओं से ग्राम में अपने घर को सजा देती और सुविधा युक्त बना देती है—

“उन्होंने अपने गाँव के उस घरोंदे को सुरुचिपूर्ण सजावट और सुविधाओं के जरिये शहरी मकान-सा बना लिया था। गाँव में जो चीज कहीं भी नहीं मिलती, गृहस्थी का वह साधन उनके यहाँ अवश्य मिल जाता। क्या इमामदस्ता, सिवई की मशीन, विभिन्न साँचे, तोसकतकिया, ठाकुरजी का पालना और न जानेक्या-क्या? विद्यावती ने न जानेकहाँ-कहाँ से जरूरत के सामान ला-लाकर अपने घर को आदर्श गृहस्थाश्रम बना लिया था।”⁴

आज अमीर अधिक अमीर और गरीब अधिक गरीब रहने के लिए अभिशप्त है। 'गोमा हँसती है' (गोमा हँसती है संग्रह) कहानी में इसी अन्तर को रेखांकित किया गया है—

“अब तो मेरे खयाल में हमारे नाती-बेटा भी इसी रेत भरे दगरे में साइकिल घसीटेंगे। बन गयी सास सड़क। नाती-बेटा कहते हुए कसक जागी कि खुनक ? हाँ, बली सिंह की आवाज जरूर निकली— 'तब तक साइकिल ही प्रधान का छोरातो फटफट'।”⁵

ब्रज अंचल का खान-पान घी-गुड़ और आटे के लड्डू, गुड़ बहेरे के लड्डू, महेरी, चना-चबैना, सा बौनियों के सफेद ढेर चमचम आदि विशिष्ट पदार्थ है। 'गोमाहँसती है' (गोमा हँसती है संग्रह) कहानी में ग्रीष्म ऋतु के समय के भोज्य पदार्थों का चित्रण हुआ है—

“तुम पसीना-पसीना हो रहे हो। दो पल विरमा लेते। लस्सी-मठाही पिए जाते सक्कर डालकर। कतीरा डाला था कोरे मल्सा में तुम्हारे लिए। चीनी मँगा ली थी बाजार से। गुड़ की सक्कर नहीं सुहाती कतीरा में।”⁶

ब्रज जनपद का प्रसिद्ध नृत्य ललमनियाँ नाचने वाली स्त्री की वेशभूषा विशिष्ट होती है। 'ललमनियाँ' (ललमनियाँ तथा अन्य कहानियाँ संग्रह) कहानी में इसी विशिष्ट वेशभूषा, आभूषण और श्रृंगार-प्रसाधनों का उल्लेख किया गया है—

“वह काली मगजी का लाल लँहगा और गोटेदार पीली ओढ़नी ओढ़कर ऊपर छत पर आ गई। बाँकड़ादार हरी चोली को आधी ढँकते हुए पल्ला खोंसा, कलाइयों में लाल-लाल कामदानी चूड़ियाँ खनकने लगीं। खडुआ पौहची और पाँवों में झाँझन। आँखों में सुरमा। माथे पर लाल टिकुली और लश्कारा मारती नगदार लौंग नाक में।”⁷

‘गुल्लू’ (पियरी का सपना’ संग्रह) कहानी में आधुनिकता के कारण ब्रज अंचल की शिक्षित बहु की वेशभूषा में परिवर्तन की झलक मिलती है—

“गुल्लू की माँ को अपनी आँख पर विश्वास नहीं हुआ—यह बहू है? जींस और टॉप पहले हुए, पूरी मरदानी।”⁸

ब्रज अंचल में सामान्य व्यक्तियों के वस्त्र मट-मैली झीनी धोती-कुर्ता, पिछौरा आदि का वर्णन आया है। ‘ललमानियाँ’ कहानी (ललमनियाँ तथा अन्य कहानियाँ, संग्रह) में ग्रामीण आर्थिक परिवेश की स्त्री मोहरो के विवाह के पश्चात् उसके वस्त्रों में परिवर्तन की आहट को उसकी सखियाँ-सिलवार कुर्ती, लायलौन की साड़ी और खमम खेलब्लाउज जैसे वस्त्र पहनने को लेकर छेड़खानी करती हैं।

ग्रामीण जीवन में श्रृंगार का बड़ा महत्व है। ‘छाँह’ कहानी (ललमनियाँ तथा अन्य कहानियाँ, संग्रह) में बतासो बाजार से चूड़ी, पिन, ऐरन, चुटीला, नाखूनी की शीशी आदि श्रृंगार की वस्तुएँ खरीदती है। ग्रामीण स्त्रियों को गुदना गुदवाने का शौक होता है। क्योंकि गुदना से श्रृंगार का आकर्षण और बढ़ जाता है। इसीलिए ‘रास’ कहानी (गोमा हँसती है संग्रह) की पात्र जैमन्ती इगलास के बसन्त मेले में गुदना गुदवाने जाती है—

“नाक और ठोड़ी पर एक-एक बूँद गुदना गुदवाया था। मुख छवि दस गुना बढ़ गई। साँवले चेहरे पर सतबुँदिया लौंग।”⁹

स्त्री का श्रृंगार बिना आभूषणों के अधूरा है। ब्रजअंचल की कहानियों में ब्रज के आभूषण पाँवों के लच्छे, गले की हँसुली, शीश पर चाँदी को बोल्ला आदि देखने का मिलते हैं। ‘केतकी’ (चिह्नार संग्रह) कहानी में नयी बहू के आगमन पर आभूषण और वेशभूषा की यह सूची लम्बी हो गयी है—

“नाक की नथ के लाल-सफेद तीन मोती गुलाबी अधरों पर मचल रहे थे। सुराहीदार ग्रीवा पर हँसुली-जैसे धवल हिम पर गोलाकार नाजुक-सी स्वर्ण-रेखा खिंच गयी हो। जरी के बूटोंवाले बनारसी गुलाबी ब्लाउज में यौवन को सँभाले बाँधे केतकी के रूप में अंजता की मूतिवत् नारी सजीव हो उठी थी।”¹⁰

ब्रजअंचल के ग्रामीण परिवेश में ओढ़ने-बिछाने के वस्त्र बहुत सामान्य हैं। खाट पर कथूलियाँ कथरियाँ-गुदड़ियाँ आदि वस्त्र बिछाये जाते हैं, तथा खाटके सिरहाने गेंदुआ (ताकिया) रखा जाता है।

ब्रजअंचल की अपेक्षा बुन्देली अंचल पिछड़ा हुआ है। लेकिन यहाँ पर सम्पन्न उच्च वर्ग खुशहाल जीवन-यापन करता है और निम्नवर्ग शोषित होने के कारण अभिशप्त है। उसके रहन-सहन का स्तर निम्न कोटि का है। दोनों अंचलो में कुछ समानताओं के बावजूद उनका परिवेश, संस्कृति भिन्न-भिन्न हैं। बुन्देली जनपद के उच्च वर्ग के वैभव को मैत्रेयी पुष्पा सम्पन्न ठाकुर किसान पीतम सिंह के माध्यम से चित्रित करती हैं। ‘शतरंज के खिलाड़ी’ (गोमा हँसती है संग्रह) कहानी में उच्चवर्ग के लोगों की वेशभूषा, वस्त्र, आवास, रहन-सहन को दलित पात्र कामता के अन्तर्द्वन्द्व के माध्यम से व्यक्त किया गया है—

“मालिक पक्के फर्श पर रखे पीठदार मूढ़े की लाल गद्दी पर आराम के साथ बैठे थे। चौड़े और गोरे माथे पर गुलाबी साफा, उसके नीचे रोली का लम्बा तिलक जो पूजा करने के बादल गालिया करते थे, देह पर महीन वायल का कुर्ता और सुपरफाइन की सफेद धोती। इन दिनों मालिक कुछ ज्यादा ही सज-धज कर रहते थे। जैसा घर का शानदार रंग-रोगन और कलई पुता दरवाजा, पक्का चबूतरा, वैसी ही मुरादाबादी कलाकारी की फरसी। गुंजल क मारे कई हाथ लम्बी नै धरती पर पड़ी रहती है। आस पास के घरे में जितने भी आदमी बैठे हों, कोई भी अपनी ओर खींच लो। वह मालिक के पुरखों के जमाने से बैठक में पी जाती रही है। वे उसी नैको अपने होठों पर सटाये बैठे थे।”¹¹

बुन्देली जनपद के निम्नवर्ग की दशा पर 'शतरंज के खिलाड़ी' कहानी (गोमा हँसती है संग्रह) का पात्र पीतम सिंह अपने नौकर कामता की स्थिति का चित्रांकन करता है—

“हमारा कामता सतजुगी आदमी है। इस कलजुग में बिरथा ही पैदा हो गया। भाई, आज्ञाकारी इतना कि खूँटे पर बँधे धौरे/बैल और इसमें रस्तीभर भेद नहीं। आदर्श जनसेवक सिद्ध होता। आदर्श इसलिए कि उसे तो ढोरों से काम। रोटी और नींद के अलावा तीसरी चिन्ता नहीं है उसे। संतभाव से नया—पुराना, फटा—चिथड़ाक पड़ा स्वीकार कर लेता है।”¹²

निम्नवर्ग के लोगों को कुछ समय के लिए धन प्राप्त हो जाने पर भी उनके जीवन में ज्यादा परिवर्तन नहीं आ पाता है। यह परिवर्तन क्षणिक होता है। उसके पश्चात् वह अपनी पुरानी जीवन पद्धति में वापस आ जाता है। 'रिजक' कहानी (ललमनियाँ तथा अन्य कहानियाँ संग्रह) में आसाराम बसोर के जीवन में भी कुछ क्षणों के लिए परिवर्तन आता है—

“आसाराम की भी वेशभूषा बदल गई। वह सफेद कमीज, सफेद धोती पहनता। रंगीन पगड़ी बाँधकर ब्याह—कारज, पर—त्यौहार रमतूला बजाने जाता। कमली और हरिया भरपेट रोटी साग तो क्या, गुड़—घी खाते। अम्मा के लिए खैनी—तम्बाकू आता छिरिया गेहूँ चरती। लल्लन मोंठ की मेम साब की तरह घड़ी—घड़ी चीनी की चाय पीती। वह चाय बनाने के लिए अलमूनियम की टोंटीदार केटली मोंठ के बाजार से लायी थी। काँच के चार गिलास। वे बातें सपना हो गयीं। मन में अवा—सासु लगता है अब तो।”¹³

'रिजक' कहानी (ललमनियाँ तथा अन्य कहानियाँ संग्रह) में बुन्देली जनपद के खाद्य—पदार्थ लडुआ—पेरा का उल्लेख मिलता है। हरिया अपनी माँ लल्लन बसोर से लडुआ—पेरा खरीदने के लिए जिद करता है—

“अम्मा, जिज्जी कैरयी थीं कि फिर तो हम मोंठ रहा करेंगे। वहाँ लडुआ—पेरा बिकते हैं। अम्मासँ। दिलाओगी न लडुआ—पेरा?”¹⁴

बुन्देली अंचल में उच्चवर्ग के व्यक्तियों के पास बहुमूल्य वस्त्र तथा निम्नवर्ग के पास मैली कुचैली धोती—कुर्ता मिलते हैं। 'पगला गई है भगवती।' (ललमनियाँ तथा अन्य कहानियाँ संग्रह) कहानी में सम्पन्न किसान माधोसिंह पुत्र विवाह के समय मूल्यवान वस्त्र पहनता है—

“माधोजी जा सुनहरी अचकन और चूड़ीदार पाजामा पहने भीतर आए।”¹⁵

बुन्देली जनपद में स्त्री के आभूषणों की अपनी अलग एक विशिष्ट पहचान है। इस जनपद में तिदाना, बेलचूड़ी, दस्ताने तथा कर्धनी आदि आभूषणों का वर्णन मिलता है। 'पगला गई भगवती!' कहानी में विवाह के समय बहू के आभूषणों की सूची दी गयी है—

“बहू साड़ी—कपड़ा, सिंगार—पटार अपने संग लाई है। गहने जिज्जी ने दिये हैं। जिज्जी खड़ी—खड़ी बता तो रही हैं कि दस्ताने का पेच कैसे लगेगा, बेलचूड़ी कैसे पहनी जाएँगी और तिदाना गले से चिपकाकर पहना जाता है। कर्धनी की कील आधे ठप्पे से जुड़ेगी।”¹⁶

'1857 एक प्रेमकथा' (पियरी का सपना संग्रह) कहानी में बेड़नियों के आभूषणों पर भी दृष्टि डाली गई है। पात्र रज्जों गंगिया बेड़िनी के आभूषणों के विषय में पूछती है—

“गंगिया तुम इतने गहनों का क्या करोगी? जगह—जगह नाचती हो, सोना रूपया बटोरती हो। गले में लडलडी तिदाना और जौ माला।”¹⁷

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों में आंचलिकता की अभिव्यक्ति के लिए सामान्य जीवन का समुचित एवं विशिष्ट वर्णन हुआ है। सामान्य जीवन के तत्व रहन—सहन,

वस्त्र, वेशभूषा, आभूषण, आवास, खान-पान आदि का समुचित उल्लेख ब्रज और बुन्देली जनपदों के जीवन में हुआ है।

सन्दर्भ संकेत

1. मैत्रेयी पुष्पा: ललमनियाँ तथा अन्य कहानियाँ, पृ0 32
2. मैत्रेयी पुष्पा: चिह्नार, पृ0 70
3. मैत्रेयी पुष्पा: चिह्नार, पृ0 54
4. मैत्रेयी पुष्पा: चिह्नार, पृ0 124
5. मैत्रेयी पुष्पा: गोमा हँसती है, पृ0 168
6. मैत्रेयी पुष्पा: गोमा हँसती है, पृ0 183
7. मैत्रेयी पुष्पा: ललमनियाँ तथा अन्य कहानियाँ, पृ0 68
8. मैत्रेयी पुष्पा: पियरी का सपना, पृ0 175
9. मैत्रेयी पुष्पा: गोमा हँसती है, पृ0 144
10. मैत्रेयी पुष्पा: चिह्नार पृ0 123
11. मैत्रेयी पुष्पा: गोमा हँसती है, पृ0 18
12. मैत्रेयी पुष्पा: गोमा हँसती है, पृ0 22
13. मैत्रेयी पुष्पा: ललमनियाँ तथा अन्य कहानियाँ, पृ0 19
14. मैत्रेयी पुष्पा: ललमनियाँ तथा अन्य कहानियाँ, पृ0 13
15. मैत्रेयी पुष्पा: ललमनियाँ तथा अन्य कहानियाँ, पृ0 29
16. मैत्रेयी पुष्पा: ललमनियाँ तथा अन्य कहानियाँ, पृ0 29
17. मैत्रेयी पुष्पा: पियरी का सपना, पृ0 156

Challenges to Disinvestment in India

Manuj Joshi

Guest Professor,
Hansraj College, Delhi University

Abstract

India has had a tough past with disinvestment of public sector enterprises. The government has been accused by both the right- and left-wing economists in its operations of public sector enterprises. The right-wing economists have argued that the government loses a lot of money in running these enterprises or inefficiently employs capital in such enterprises. The left-wing economists argue that selling these enterprises reduces the social welfare and strategic hold that the government has through such enterprises. With the government caught between the two arguments, even when the government moves to disinvest these enterprises it faces multiple challenges in finding buyers at the correct valuation. Leaving aside the arguments put forth by either of the left- or right-wing economists, this paper highlights the challenges faced by government while disinvesting and what are the possible solutions.

Introduction

Central Public Sector Enterprises (CPSEs)¹ are an integral part of the Indian economy. Post-independence, the Indian economy was fragile. Until such time that the private sector was capable of building scale, size, and expertise, the Government of India decided to spend public money in developing the country's industrial base.

It was hoped that focusing on CPSEs would reduce inequalities in the economy and spur growth in the core sectors. In 1991, the Government of India realised that the majority of PSEs were dragging the economy downward. The economic reforms of 1991, characterised by liberalisation, privatisation, and globalisation, led to opening up of many sectors to private investment, and also kick started the era of disinvestment.

Challenges for Disinvestment

Political challenges aside, the major financial and economic challenge faced by the government in executing disinvestment deals have been with regard to valuation of the CPSE and in securing adequate market demand for any Initial Public Offering (IPO) or Further Fund Offer (FFO). Furthermore, the pressures from unions also restrict the government to take major decisions.

3.1 Minimum Public Shareholding

In 2014, SEBI issued a notification mandating all public sector undertakings to increase their minimum public shareholding to 25 per cent, in line with other private sector listed companies, by 21st August 2017. Apart from ensuring equal treatment of private and government-owned listed companies, it was also believed that increasing the public shareholding to 25 per cent will encourage greater retail ownership in CPSEs. For many reasons the CPSEs were unable to meet their deadline in 2017 and despite granting of a year's extension by SEBI, many CPSEs did not comply. The deadline was then extended to

2020. It was decided in 2021 to exempt some public sector undertakings from this mandate.² But this points towards a greater question as to why meeting the minimum public shareholding requirements became a challenge which is partially explained in the following subsection.

3.2 Perception, Valuation and Short Sales

For a successful IPO or Offer for Sale (OFS), valuation is key. Public perception, not entirely unfounded, is that government usually disinvests those CPSEs that are not profitable. Hence, most CPSE IPOs have to battle this perception bias, leading to vapid demand of such IPOs in the past

Institutional investors, on the other hand, have often benefitted from disinvestment. For firms already listed on the exchange the government usually opts for an OFS. However, a major limitation of this approach is that existing investors short their holdings, thereby driving prices down. A substantial reduction in share price is seen which erodes the market capitalisation of the company and adversely affects the valuation of the floor price for sale.³ This is usually in anticipation of short-term speculative gains as they expect the government to divest, even if valuations are unfavourable, to meet budgetary targets.

3.3 Return on Investment

Post listing, a CPSE is expected to provide decent returns to investors but since CPSEs are not always set up with profit as a primary motive, listed CPSEs find themselves in a muddled position. This also becomes a major reason as to why the returns provided by CPSEs are below the competition. Hence, demand from the private sector as well as general public is muted.

On account of the shallow interest from private sector, strategic partnerships have not materialised in the past. The retail demand has also not been upbeat which is evident from the inability of government to meet its minimum public shareholding.

3.4 Managing Labour Unions

Labour unions are a huge bottleneck to the disinvestment process. A classic case is of Hindustan Photofilms (Manufacturing) Company Limited which was ordered to shut down by Board of Industrial and Financial Reconstruction in 2003⁴. However, it took as long as 15 years before it finally closed in 2018. The Kolar Gold Fields is another ripe example. Even though the mines have not been in operation for over three decades, the fields have neither been shut nor has there been any kind of intent to relocate the employees so that the fields can be shut eventually. Instead the tax payer's money continues to fund this company's salaries. Once the disinvestment process is initiated, it is important for the government to draft a strategy for managing labour unions and relocating the employees of concerned CPSEs.

Recommendations

The performance of CPSEs has been a mixed bag over the years as a result of which the task of disinvesting has been arduous. The demand for many CPSEs has fallen short of expectations in the past and targets for disinvestment set out in the previous budgets have remained unachievable till FY17⁵. The minority share sales have also not fared as anticipated. There is a need to turn around loss making CPSEs which will enhance not only their demand but also the receipts from disinvestment. Further, targeted efforts are needed to increase managerial efficiency and managing labour unions.

The following recommendations make an effort towards resolving some of the issues plaguing the CPSEs and their disinvestment.

Agency Problem and Performance Based Pay

Under the current ownership and governance structure, CPSEs are managed by government bureaucrats. These bureaucrats are paid in accordance with government pay scales which deprives them of any performance-based compensation. Additionally, the pay is often lower than offered in private sector entities.

The absence of variable pay removes the incentive for managers to perform better than expected. This introduces lax behaviour and lousy work ethic which is reflected in performance of many CPSEs.

When such a pay structure is combined with the fact that a lower compensation is offered at managerial positions than prevalent elsewhere, agency problems make their way into the organisation. Introducing a variable part in compensation structure may to a large extent counter this. Studies and deliberations are required to formulate a method of introducing performance-based pay in CPSEs without upsetting the pay structure of other horizontally placed government employees.

Providing ownership to trusts

It has long been argued that disinvestment is a way of selling the family silver to meet day to day expenditure. However, it has also been recognised that government is unable to run some CPSEs efficiently which creates the basis for disinvestment. There is a need for the government to distance itself from the CPSEs but not sell them to meet revenue expenditure.

Trusts offer a viable solution to meet both these objectives. It is suggested that the government should hand over the responsibilities of some social sector schemes along with ownership of shares of some CPSEs. These trusts will be entrusted with the task of funding expenses of the schemes with dividends earned from the CPSE. As a prerequisite, the government will have to create trusts and identify the social sector schemes whose responsibility is to be transferred to the trusts. With a majority shareholding, the trusts will also be assigned with responsibility of unlocking the real value of the enterprise and building it to its potential. These trusts will have the freedom to divest the shares as the value of these shares rises.

To retain the power of blocking certain special resolutions the government can keep hold of 26 per cent of shares.

The benefit of transferring ownership to trusts over privatisation is that managers cannot entrench themselves in a trust unlike in private sector. Additionally, siphoning of funds is difficult in a trust than in promoter driven companies.

Managing workforce of liquidating enterprises

Labour union strikes and pressure on political parties continue to be the foremost reasons for delays in disinvestment or liquidation of enterprises. It is suggested that prior to liquidation of the enterprise, the employees should be given the option of participating into a reskilling/upskilling programme which is to be organised by the CPSE. That programme should prepare the employee with skills required in the job market. At the time of liquidation, the employee will be skilled enough to switch the job. If the employee chooses not to participate into the programme, the Voluntary Retirement Scheme shall remain as an option.

This will considerably reduce the resistance of workforce towards shut down operations of the entity.

Short selling

Stake sales by the government in equity markets generally raise much less than targeted for, due to short selling practices of investors.

A recourse for the government is to create a recurring disinvestment cycle whereby a random portfolio of different CPSEs is offloaded to the market on a specific date of every month. While this will ensure that investors look forward to buying CPSE stocks in the market on that particular date, existing investors won't short their holding due to the uncertainty of the disinvestment portfolio's composition.

Investor's viewpoint and Transparency

The government while disinvesting any public sector entity needs to evaluate if the investor benefits from the purchase. Investors look for profitable opportunities in markets. It is therefore suggested that the offered stake is of a CPSE which can be turned around with little effort and made profitable. In past, stocks of CPSEs were sold at a discount of five per cent and they saw a huge demand in the market. However, this practice was later abandoned. Given the subdued demand by investors for the CPSE stocks, it is suggested that a lucrative deal for investors be formulated for higher demands of offered stake.

The government must also clarify its objectives, the control which it wishes to exercise on decision making and the future plans of the CPSE after its disinvestment. This is to ensure that the investor takes an informed decision based on the long-term prospects of the company.

Pricing the goodwill

CPSEs have a huge goodwill in the market. The general public believes that since government does not produce with the intention of profit making, products of CPSEs are of a superior quality than that of competing private sector companies. The government must cash in this goodwill while disinvesting through strategic partnerships. It must be accounted for on the basis of legacy of the CPSE and the market share which it holds. Other better suited methods to measure the value of goodwill might also be reached through deliberations.

Conclusion

The government runs public sector enterprises to serve the society by setting example of employment standards, provide products which are not the most profitable yet required for public welfare or hold importance strategically. Earning profits through public sector enterprises is not the primary motive of the government. Yet, liberalisation and introduced competition into the space of public sector enterprises and therefore profits are becoming an equal priority as other aspects of running the public sector enterprise. As the government loses ground in the market, it has to disinvest and utilise funds in other areas for social welfare. However, disinvestment comes with its own challenges of fighting the negative perception about public sector enterprises' profitability, returns on investment and managing labour through the process of disinvestment. The paper has provided many recommendations for the government to consider for each of these challenges.

References

1. There are three kinds of PSEs – (a) Central Public Sector Enterprises (CPSEs), (b) State Level Public Enterprises (SLPE), and (c) Public Sector Banks (PSBs). For the purpose of this paper, we refer only to CPSEs.
2. <https://economictimes.indiatimes.com/news/economy/policy/govt-can-exempt-any-listed-psu-from-min-public-holding/articleshow/84929409.cms>.
3. Retrieved from; <http://www.cag.gov.in/content/disinvestment-cpses>, accessed on 19/08/2017
4. <https://www.goodreturns.in/company/hindustan-photo-films-manufacturing/history.html>
5. CAG audit reports
6. “Government Can Exempt Any Listed PSU from Minimum Public Holding.” *The Economic Times*, The Economic Times, <https://economictimes.indiatimes.com/news/economy/policy/govt-can-exempt-any-listed-psu-from-min-public-holding/articleshow/84929409.cms>.
7. Goodreturn. “History of Hindustan Photo Films Manufacturing Company Ltd., Company.” *Goodreturn*, Goodreturns.in, <https://www.goodreturns.in/company/hindustan-photo-films-manufacturing/history.html>.
8. Drishti IAS. “Missed Annual Disinvestment Targets.” *Drishti IAS*, 28 Jan. 2021, <https://www.drishtias.com/daily-updates/daily-news-analysis/missed-annual-disinvestment-targets>.
9. “Liquidation of Hindustan Photo Films Manufacturing Company Ltd..” *Press Information Bureau*, <https://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=1578860>.
10. “Vital Stats.” *PRS Legislative Research*, <https://prsindia.org/policy/vital-stats/disinvestment-in-india>.
11. Report No.7 of 2020 - General Purpose Financial Reports of Central Public Sector Enterprises, Union Government (Commercial)

“Traditional Knowledge of Medicinal Plants and Its Use by Indian People”

Dr. Shashi Bala Trivedi

(Associate Professor)

Teacher Education Department

Shri Varshney College, Aligarh (U.P.)

Abstract:

Indian has a great wealth of medicinal plants and traditional knowledge. Medicinal plants have played an important role of primary health care system among the rural and urban people of India. The present paper is a study of the traditional knowledge of medicinal plants and its use by people of different Region in Indian. Due to its [India] unique geographical location and different climatic condition, it has rich biodiversity and variety of plant species. Medicinal plants are the principal health care resources among the most of people in India. Rural, tribal and poor people are basically depending upon medicinal plants for their primary health care system. Their primary cure of diseases is based upon deep observation of nature and their understanding of traditional knowledge of medical practices. Rural people in India, especially tribal people and women heavily use these traditionally available medicinal plants for health and believe that these are easily available, less expensive and have no side effects as compare to modern medicine. The plants used for medicinal purposes in the primary health traditions are slowly becoming extinct due to development activities, population explosion, impact of tourism, deforestation and many more. The present paper focuses about the indigenous knowledge of different 41 medicinal plants used in India.

Key words:medicinal plants, traditional knowledge,health care&medicine.

Introduction:

About 80% of the world's population relies solely or largely on traditional remedies for their healthcare needs. Today, about 70,000 to 80,000 plant species are used for medicinal or aromatic purposes globally. India with its ecological, geographical and climatic diversities is perhaps the richest nation with a vast herbal medicinal wealth (About 15000-20000 plants have good medicinal value). Medicinal plants are valuable resources for our health system since ancient period. These systems include Ayurveda, homeopathy, Unani and even allopath.

Geographical Condition & Medicinal Plants:

In India the therapeutic use of herbs dates back to the Vedic period. The Rig-Veda (which is thought to have been written between 4,500 and 1,600 BC) has documented about 67 medicinal plants, Yajurveda 81 species and Atharvaveda 290 species. Collection and trade of medicinal plants to India is a historical fact. The trade of non-timber jungle products is mentioned in the 3,000 years old Ramayana. Similarly, the Urikshayarved provides outstanding information about plants and their medicinal properties. The Charka and the SushrutSamhitas were written between 700-200 BC, and contain accounts of the finding of medicinal plants.

The Himalayas have a great wealth of medicinal plants and traditional medicinal knowledge. Medicinal plants have played an important role of primary health care system among the rural, urban and tribal people. As the rural and tribal people are settled far from urban area,

they cannot take modern health care facilities so they are totally dependent on traditional medicinal practices for their primary health care. Out of 15,000 species of flowering plants found in India, about 17% have their medicinal value. Several species (1,745) are from the Indian Himalayan region, and many of these are found in Uttarakhand. Local people of this region are partially or completely dependent on forest resources for medicine, food, and fuel. Medicinal species are steadily diminishing due to anthropogenic activities. The Central Himalayan Region covers the new state (Uttarakhand) of India, provides admirable opportunities for studying the Traditional Knowledge Systems. Uttarakhand has a rich variety of herbs, medicinal and aromatic plant species. The Garhwal Himalaya is one of the richest floristic zones of India and contains more than 300 species of medicinal plants.

India's natural forests are home to about 8000 medicinal plants that form the primary source of health care for 60- 80% of the country's population, especially the rural people, tribal community and poor people. These natural healing herbs are used in treatment of many diseases and disorders. About 80% of traditional medicines used for principal healthcare are derived from plants (Farnsworth). During the last few decades, there has been an increasing interest in the study of medicinal plants and their traditional use in different parts of the globe. Documenting indigenous knowledge through ethno- medicinal studies is significant for the management and utilization of biological resources.

Medicinal Plants and Their Uses:

The World Health Organization (WHO) suggested that as many as 80% of the world's people depend on traditional medicine for their primary healthcare needs. There are significant economic benefits in the development of indigenous medicines and in the use of medicinal plants for the cure of various diseases and disorders. Their specialty is advantages like better compatibility in the body, easy metabolism, low side effects and also less expensive than synthetic drugs. Further they are not harmful to environment after disposal. They don't require heavy manufacture, expensive analysis and storage facilities. They retain their potency for long period if stored well. Many of them can be used as home-made preparations, during emergency or can be bought as over the counter drugs without physician prescription. These medicinal plants come under different types of plant and not restricted to one family or type of plants.

List of Medicinal Plants & their Uses for Health

S.N.	Common Name of Plants & Maturity Period	Parts Used	Medicinal Use
1.	Kurai (S)	Bark, Seed	Scabies, Antipyretic, Amoebic dysentery.
2.	Ashok (T) 10 years onward	Bark Flower	Menstrual Pain, Uterine, Disorder, Diabetes.
3.	Ashwagandha (H) One year	Root, Leaf	Restorative Tonic, Stress, Nerves Disorder, Aphrodisiac.
4.	Amla (T) After 4th year	Fruit	Vitamin - C, Cough, Diabetes, cold, Laxative, hyper acidity.
5.	Bhumi Amla (H) within one year	Whole Plant	Anemic, jaundice, Dropsy.
6.	Brahmi (H) Indian penny worth/one year	Whole plant	Nervous, Memory enhancer, mental disorder.

7.	Chiraita (H) (High altitude) within one year	Whole Plant	Skin Disease, Burning, sensation, fever.
8.	Gudmar /Madhunasini (C) after Four year	Leaves	Diabetes, hydrocele, Asthma.
9.	Guggul (T) after 8 years	Gum Racine	Rheumatized, arthritis, paralysis, laxative.
10.	Guluchi / Giloe (C) Within one year	Stem	Gout, Pile, general debility, fever, Jaundice.
11.	Calihari / panchanguliaGlori Lily Five years	Seed, tuber	Skin Disease, Labour pain, Abortion, General debility.
12.	Kalmegh/ Bhuneem (H) within one year	Whole Plant	Fever, Weakness, Release of gas.
13.	Long peeper / Pippali (C) after two to three years	Fruit, Root	Appetizer, Enlarged Spleen, Bronchitis, Cold, Antidote.
14.	Makoi /Kakamachi (H) Within one year	Fruit/whole plant	Dropsy, General debility, Diuretic, Anti-dysenteric.
15.	PashanBheda/PatharChur (H) One year	Root	Kidney stone, Calculus.
16.	Sandal Wood (T) Thirty years onward	Heart wood, oil	Skin disorder, Burning, Sensation, Jaundice, Cough.
17.	SarpaGandha (H) After 2 years	Root	Hyper tension, Insomnia.
18.	Satavari (C) After 2-3 year	Tuber, root	Enhance lactation, General weakness, fatigue, cough.
19.	Senna (S) Within 1 year	Dry Tubers	Rheumatism, General debility tonic, Aphrodisiac.
20.	Tulsi (perennial) Each 3 months	Leaves/Seed	Cough, Cold, Bronchitis, Expectorates.
21.	VaiVidanka (C) 2nd year onward	Root, Fruit, Leaves	Skin disease, Snake Bite, Helminthiasis.
22.	Peppermint (H) Perennial	Leaves, Flower, Oil	Digestive, Pain killer.
23.	Henna/Mehdi (S) 1/25 years	Leaf, Flower, Seed	Burning, Steam, Anti Inflammatory.
24.	Grit Kumari (H) 2nd-5th year	Leaves	Laxative, wound healing, Skin burns & care, Ulcer.
25.	SadaBahar (H) Periwinkle/Nyantara	Whole Plant	Leukemia, Hypotensive, Antispasmodic, Antidot.
26.	Vringraj (H)	Seed/whole	Anti- Inflammatory, Digestive, hair tonic.
27.	Swetchitrak (H) Perennial	Root, Root bar	Appetizer, Antibacterial, Anticancer.
28.	RaktaChitrak (H)	Root, Root bar	Indyspepsia, colic, inflammation, cough.
29.	Kochila (T) 15 years	Seed	Nervous, Paralysis, healing wound.

30.	Harida (T)	Seed	Trifala, wound ulcer, leprosy, inflammation, Cough.
31.	Bahada (T)	Seed, Bark	Cough, Insomnia, Dropsy, Vomiting, Ulcer, Trifala.
32.	Gokhur /Crawling Puncture Vine (H) 1 year	Whole Plant	Sweet cooling, Aphrodisiac, appetizer, Digestive, Urinary.
33.	Neem (T)	Rhizome	Sedatives, analgesic, epilepsy, hypertensive.
34.	Anantamool/sariva(S) Indian Sarapsarilla	Root/ Leaf	Appetiser, Carminative, aphrodisiac, Astringent.
35.	Bach/Sweet Flag (H) 1 year	Rhizome	Sedatives, analgesic, epilepsy, hypertensive.
36.	Vasa (S)	Whole Plant	Antispasmodic, respiratory, Stimulant.
37.	Nageswara (T)/ Nag Champa	Bark, Leaf, Flower	Asthma, Skin, Burning, Vomiting, Dysentery, Piles.
38.	Benachar/ Khus (S)	Root	Hyperdipsia, Burning, ulcer, Skin, Vomiting.
39.	Mandukparni/ Indian pennywort (H)	Whole plant	Anti-inflammatory, Jaundice, Diuretic, Diarrhea.
40.	Kaincha/Creeper Baidanka	Root, Hair, Seed, Leaf	Nervous, Disorder, Constipation, Nephropathy, Strangury, Dropsy.
41.	Dalchini Perennial Shrub	Bark, Oil	Bronchitis, Asthma, Cardiac, Disorder, Fever.

Conclusion:

Medicinal plants have strong acceptance in spiritual activities of north Indian inhabitant communities, who worshiped the plants in the form of God, goddesses, and minor deities. Due to the unavailability of modern health facilities, poverty, connectivity with urban center, awareness, etc. people in rural areas are still relying on traditional medicines for their health care. Many communities use wild plant parts for the primary healthcare, due to belief in its effectiveness, easily available, lack of modern medicines. Apart from human use, many plant species were also used in animal husbandry as the primary source of healthcare. **United nations University proposal defines** "traditional knowledge system as 'traditional knowledge' or 'local knowledge' is a record of human achievement in comprehending the complexities of life and survival in often unfriendly environments. Traditional knowledge may be technical, social, organizational, or cultural was obtained as part of the great human experiment of survival and development."

Traditional knowledge provides the basis for problem-solving strategies for local communities, especially the poor. Diseases are the curse of civilization ever since its advent on this planet. Humans have been struggling against a variety of diseases since ancient periods. Finally, humans developed a native system of medicine. For millennia human societies have been depending on forest and forest products like medicinal plants, aromatic plants, edible roots, food and many other things for their livelihoods as well as primary health needs. In certain areas these folk medical prescriptions are widespread and have survived through ages from one generation to the next generation through the word of mouth. They do not exist as on paper knowledge. Normally these systems of medicine depend on old people's

experiences and practices. Rural, tribal and poor people have a close relationship with nature. They are fully dependent upon forest for food, fruits, fodder, and medicinal plants for their healthcare, especially older age people, tribal people and women heavily use these traditionally available medicinal plants for health and believe that these are easily available, less expensive and have no side effects as compare to modern medicine The present situation of traditional knowledge regarding to medicinal plants everywhere is an issue of deep anxiety as the traditional knowledge is gradually declining and disappearing from the countryside. Due to the deforestation, impact of tourism on natural vegetation of this region, population explosion & heavily construction of this region for development and changing of climate in Himalayan region and many more to responsible for its.

References:

1. Nadkarni AK; Indian MatereaMedica. Vol. 1 (3rd edn), 1954; Popular Book Depot, Bombay.
2. Bentley R, Trimen H; Medicinal Plants. Vols-IV (repr. Edn). 1980; International Book Distributor, Dehradun
3. Kirtikar KR, Basu BD; Indian Medicinal Plants. Vols. 1-4, 1933. Allahabad, India.
4. Malla SB, Shakya PR; Medicinal plants of Nepal. In: T.C., 1984.
5. Pandey HP, Verma BK; Phytoremedial wreath: A traditional excellence of healing. Ind. For, 2005; 131(3): 437-441
6. Silori CS, Badola R; Medicinal plants cultivation and sustainable development: a case study in buffer zone of the Nanda Devi Biosphere Reserve, Western Himalaya, India. Mountain Research and Development, 2000; 20:272-9
7. Samal PK, Shah A, Tiwari SC, Agrawal DK; Indigenous health care practices and their linkages with bio-resource conservation and socioeconomic development in central Himalayan region of India. Indian Journal of Traditional Knowledge, 2004; 3:12-26.
8. Kala CP; The valley of flowers: myth and reality. Dehradun: International Book Distributors;2004
9. www.academia.edu
10. www.docplayer.net
11. www.forest.uk.gov.in
12. www.healthdocbox.com
13. www.iijs.com
14. www.infinityfoundation.com
15. www.liveayurved.com
16. www.naturalremedieshome.com
17. www.olderor.lbp.world
18. www.oneearthfoundation.in
19. www.ucbmsh.org
20. www.uou.ac.in

ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत गोरखपुर परिक्षेत्र के व्यापार एवं उद्योग की स्थिति (1800—1947)

डॉ० ओंकार नाथ द्विवेदी

प्राचार्य

महात्मा गांधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय
फतेहपुर, उ०प्र०

1801 ई० में गोरखपुर एक संधि के द्वारा अंग्रेजों को मिला। 1801 ई० में ही राउटलेज गोरखपुर का प्रथम कलेक्टर नियुक्त हुआ। अब यह निर्वादाव हो चुका है कि अंग्रेजी शासन की स्थापना ने भारत की परम्परागत अर्थव्यवस्था का विघटन कर दिया। ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीति के प्रभाव के कारण भारतीय दस्तकारी उद्योग तथा कृषि का प्रभावी संतुलन समाप्त हो गया। कृषि पर जनसंख्या का दबाव निरन्तर बढ़ने लगा। अब किसानों का उद्देश्य पहले अपने तथा अपने परिवार के लिए खाद्यान्न का बन्दोबस्त करना हो गया था। इसका परिणाम यह हुआ कि जिस खेत में नगदी फसलें उगनी चाहिये थीं, उसमें केवल खाद्यान्न फसलें अपनी आवश्यकता के अनुसार उगायी जाने लगी थी। फलस्वरूप किसानों की आमदनी प्रभावित होने लगी। जहाँ एक एकड़ खेत में खाद्यान्न फसल का उत्पादन 20 रू० – 40 रू० का होता था, वहीं गन्ना जैसी नकदी फसलों का उत्पादन 150 रूपये का होता था। कमोबेश यही परिस्थितियाँ उद्योग एवं व्यापार की भी थी। ज्यादातर उद्योग स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही स्थापित थे। निर्यात पर ज्यादा जोर नहीं था। कुछ अपवादों को छोड़कर गोरखपुर में केवल उन्हीं उद्योगों का अस्तित्व था और उन्हीं सामानों का उत्पादन किया जाता था जिनकी स्थानीय स्तर पर ग्रामीण जीवन में आवश्यकता थी।

गोरखपुर में प्रयोग में आने वाली रूई का अधिकांश भाग आयात किया जाता था। धुनिया धुनाई करते थे, जबकि महिलायें सफाई का काम करती थी। कुछ बड़े स्थानों पर धुनिया आयातित रूई को खरीद लेते थे और उसकी सफाई करके उसको फुटकर दामों में बेचते थे। कुछ धुनिया बुनकर हो गये थे। वे गरीबी का जीवन व्यतीत करने को मजबूर थे। प्रत्येक परिवार औसतन प्रतिवर्ष 36रू० से कम खर्च करता था। इस जिले के बुनकर मुख्यतया सफेद सूती कपड़े के उत्पादन में लगे थे। यह सूती कपड़ा दो प्रकार का होता था— प्रथम गजी, द्वितीय गरहा। 1838 में इस जिले में बुनकर परिवारों की संख्या 5145 थी। जिनके पास 6114 लूम थे और वे 522840 रू० मूल्य के कपड़े बुनते थे। स्पष्ट है कि बुनकरों की आर्थिक स्थिति खराब थी। इस बात का प्रमाण मिलता है कि लगभग 155500 रू० मूल्य का सूती वर्ष आयात किया जाता था, जबकि 35000 रू० का निर्यात किया जाता था।

चिन्ट्ज बनाने वाले केवल नवाबगंज व उसके आस – पास के क्षेत्रों में रहते थे। सामान्यतः वे व्यापारियों से अग्रिम धन लेकर उनका उत्पादन करते थे। चिन्ट्ज का अच्छी मात्रा में जिले के बाहर निर्माण होता था। कम्बल, बुनाई और सिल्क डार्ड करने का कार्य भी किया जाता था। गोरखपुर के बुनकर आजमगढ़ और फैजाबाद के जुलाहों जैसी परिष्कृत बुनाई नहीं कर पाते थे। गजी और गरहा के अतिरिक्त वे स्थानीय उपभोक्ताओं के लिए टाट और घुसा (सूत और उनका मिश्रण) का उत्पादन करते थे। शोरा से नकम उत्पान किया जाता था जिसके चार चरण थे – रस, काही, लाही, गिराठी, जो एक आना प्रति सेर बिकता था। नमक के शुद्धिकरण के लिए कम्पनी की ओर से पड़रौना और नवाबगंज में व्यवस्था थी।

जो मिट्टी के बर्तन यहां बनाये जाते थे वे एकदम सादे होते थे। उनमें सजावट नहीं होती थी। शीशे का उत्पादन नहीं किया जाता था। जहां तक धातु के बर्तन का सवाल है अधिकांशतः आयात किये

जाते थे। पड़रौना में एक विशेष प्रकार के मिश्रण से बर्तन बनाया जाता था, जिसको फूल कहते थे। इसका निर्यात बलिया तक होता था, परन्तु महंगा होने के कारण इसका विक्रय घनी वर्ग तक सीमित था।

घाघरा के उत्तर में स्थानीय स्तर पर काफी मात्रा में टोकरी बनाने का काम होता था, लेकिन इसके प्रमाणनहीं है कि इनका निर्यात होता था या नहीं।

गोरखपुर में सवर नामक चमड़े पर कढ़ाई का भी एक लघु उद्योग था। इस कार्य में दो या तीन परिवार लगे हुए थे, जो केवल स्थानीय माँग की आपूर्ति करते थे। इसमें हिरन, साम्भर, पीतल, परहा औरनीलगाय के चमड़ों की खाल को साफ करके उसे बेलवेट जैसा मुलायम बना लिया जाता था, उसके पश्चात चमड़े पर रंगीन सिल्क से कढ़ाई की जाती थी।

बढ़ई (लकड़ी के कारीगर) सामान्यतया घर में प्रयुक्त होने वाले लकड़ी के सामान दरवाजे, खिड़कियां, बैलगाड़ी और कृषि में उपयोग आने वाले विभिन्न औजारों का उत्पादन करते थे। गोरखपुर में उनमें से कुछ पालकी और बक्से भी बनाते थे। यहां पर बढ़ई का मेहनताना प्रतिदिन 3 से 4 आना था। (दूसरे शब्दों में 6 रू0 प्रतिमाह) इनमें से बहुत से लकड़ी के व्यापारियों के यहां सेवा में नियुक्त थे। कुछ नावों के निर्माण में भी निपुण थे। विशेषतया गोरखपुर जिले में एक नाव जब तैयार होती थी तो उसका कुल खर्च लगभग 700 रू0 होता था। बड़ी नावों को धामा कहते थे। छोटी नावों का प्रयोग सामान्तः लकड़ी के टुकड़ों को ले आने या ले जाने में किया जाता था और वो भी विशेषतया गण्डक नदी पर।

गोरखपुर में उद्यमियों के दो वर्ग और थे, कशेरा और ठठेरा। कशेरा लोग मुख्यतया कांसे के बर्तन के मरम्मत का कार्य करते थे। जबकि ठठेरा कांसे के आभूषण बनाते थे। गोरखपुर पड़रौना और बखिरा के कशेरा कई प्रकार के नए बर्तन भी बनाते थे जैसे – बखिरा में कप और प्लेट बनता था। कशेरा वर्ग की स्थिति ठठेरों से अच्छी थी।

गोरखपुर में तम्बाकू उद्योग और नील उद्योग का भी अस्तित्व था। यहाँ पर देवरिया के लार में एक विशेष प्रकार का साबुन निर्मित किया जाता था, जो खारी मिट्टी से बनाया जाता था। इसका निर्यात भी होता था। 1906-07 में लार रोड रेलवे स्टेशन से 2150 मन साबुन बाहर भेजा गया, जिसका अधिकांश भाग नेपाल जाता था।

गोरखपुर का मुख्य उद्योग चीनी का उत्पादन था। 1905 में गोरखपुर जिले में 139 चीनी मिलें थीं। जिनमें से अधिकांशतः हाटा एवं देवरिया में थी, शेष में 48 पड़रौना में, 24 गोरखपुर में 10 महाराजगंज में थी। कुछ कुछ वर्ष पूर्व यह उद्योग मुख्यतया परगना सिधुआ जोबना में केन्द्रित था लेकिन 1905 तक आते आते इसका केन्द्रीयकरण गोरखपुर जिले के दक्षिण-पूर्वी क्षेत्रों में हो गया। जैसे बरहज, रामपुर कारखाना, पिपराईच, चौरी चौरा, डुमरी इत्यादि। पुराने लकड़ी के कोल्हू कुछ हद तक अस्तित्व में बने रहे लेकिन बाद में उनके स्थान पर लोहे के रोलर मिल लगा दिये गये। गन्ने की विभिन्न किस्में भी बोई जाती थी, जैसे आम, रेओरा, हिमजा, हरवा, मनघा, लारबरउवा, पतला दसली, सरौती, कटरा, पानशाही। गन्ने का रस उबाल करके गुड भी बनाया जाता था, जिसको छोटी छोटी भेली में बदलकर बाजार में उपलब्ध कराया जाता था। प्रत्येक भेली लगभग 1 पाव (250 ग्राम) की होती थी। अगर पक्की चीनी (सफेद परिष्कृत चीनी) का उत्पादन करना होता था तो उस से राब बनाया जाता था। कच्ची चीनी स्थानीय उपयोग के लिये बनायी जाती थी, उसका निर्यात भी कभी कभी होता था। अनुमानतः तीन लाख मन चीनी का निर्यात प्रतिवर्ष नदियों के माध्यम से होता था। परिष्कृत चीनी केवल रेल के माध्यम से ही भेजी जाती थी।

गोरखपुर जिले में चीनी मिलों, निलहा जमींदारों और बहुत बड़े बड़े भूपतियों के बीच अन्तः सम्बन्ध दिखाई देता है। प्रतापपुर (1905) और बभनौली (1913) की चीनी मिलों का निर्माण एक भूतपूर्व निलहा जमींदार ने किया था। इसी प्रकार सरैया चीनी मिल की स्थापना 1918 में एक पंजाबी परिवार द्वारा की गयी थी जो 1920 के दशक में लगभग 300 एकड़ भूमि पर गन्ने की खेती करवाता था।

पहले के समय में गोरखपुर जिले का जो भी व्यापार वाणिज्य था वह अवध शासन काल में पूरी तरह समाप्त हो गया था। 1802 में कलेक्टर राउटलेज ने लिखा कि यद्यपि की भूमि उपजाऊ है लेकिन, केवल उन्हीं चीजों का उत्पादन होता है, जो जीवन के लिए नितान्त आवश्यक है। और उतना ही मात्रा में उत्पादन होता है जो जीवन के लिए आवश्यक है। फिर भी कम्पनी के अधिकारियों ने व्यापार पर एकाधिकार बनाये रखने के लिए प्रारम्भ से ही निजी व्यापार को हतोत्साहित किया। प्रारम्भ में केवल लकड़ी के बोटों का निर्यात होता था इसके अतिरिक्त पशुओं और मोटे कपड़ों का नेपाल से आयात होता था। नमक और चीनी का अन्य भागों से आयात होता था। नेपाल की सीमा पर प्रत्येक वस्तु के व्यापार पर कर लिया जाता था। हर परगने की सीमा पर राहदारी की वसूली की जाती थी। 1816 में बनारस के साथ तेजपत्ता, चीनी और कपड़े का व्यापार बढ़ने के संकेत प्राप्त होते हैं। ऐसा लगता है कि 1820 में गोरखपुर में आने वाले प्रत्येक सामान पर पाँच प्रतिशत चुंगी देनी पड़ती थी। 1824 में कलेक्टर के सलाह पर बांसी में होने वाले लाह के व्यापार पर कर लगा दिया गया। 1830 में अनाज के निर्यात का प्रथम उल्लेख मिलता है। बूचानन ने इस तथ्य की पुष्टि भी की है। उन्होंने आगे लिखा है कि चीनी और अनाज का निर्यात नदी से नहीं बल्कि सड़क मार्ग से किया जाता था। बूचानन ने अनुमान लगाया है कि उत्तर में चावल का व्यापार कम से कम 18 लाख रु० का था। उन्होंने तौबा, तौबे का बर्तन, सिक्के इत्यादि को नेपाल से आयात की चर्चा भी की है। 1885 तक व्यापार मुख्यतया सड़कों या नदियों के माध्यम से होता था। लेकिन आगे रेलवे के आने से परिस्थितियों में बदलाव हुआ। कपड़े के आयात ने वाणिज्य की दिशा बदल दी। 1860 में आधा लाख रुपये से बढ़कर 1862-63 में आयात दो लाख रुपये का हो गया। जबकि दस वर्ष पश्चात अकेले गोरखपुर शहर 3 लाख 50 हजार रुपये का कपड़ा आयात करता था जो कि 1876-77 में बढ़कर 5 लाख रुपये का हो गया। चीनी जिले के व्यापार का मुख्य वस्तु बनी रही। 1885 में रेलवे के खुल जाने से व्यापार की आँकड़ा बढ़ा क्योंकि गोरखपुर देश के अन्य हिस्सों से रेलवे से जुड़ गया था।

रेलवे के आने से व्यापार के लिए नदी मार्ग का प्रयोग लगभग बन्द हो गया। पहले नेपाल से चालव विनायकपुर और धानी बाजार लागाय जाता था और उसके बाद नौव पर लाद कर राप्ती और घाघरानदी के माध्यम से बंगाल के बाजारों तक पहुँचाया जाता था। कुछ मात्रा में चावल निचलौल और कप्तानगंज होते हुए छोटी गण्डक तक पहुँचाया जाता था। कुछ चावल एवं मसाले सिधुवा जोबना परगना से तिवारी पट्टी होते हुए बड़ी गण्डक तक ले जाया जाता था। दक्षिण में बॉस गॉव के अनाज राप्ती और क्वानो नदी के माध्यम से भेजे जाते थे। यहां से इन्हें बरहज और गोला पहुँचाया जाता था। लकड़ी के व्यापार के लिए रोहीन और बड़ी गण्डक का प्रयोग किया जाता था। सड़को का महत्व कम हो गया था। नेपाल से जो सामान आता था उसको धानी और निचलौल में एकत्र करके सड़क मार्ग से गोरखपुर लाया जाता था और वहां से सड़क मार्ग से बंगाल भेजा जाता था। अन्य व्यापारिक मार्ग में दक्षिण में गोरखपुर से दोहरीघाट और आजमगढ़ पश्चिम में बस्ती और फैजाबाद तथा उत्तर में फरेंदा और लोटन थे। परन्तु रेलवे के आने के पश्चात वक्त के साथ इनका महत्व कम हो गया।

लकड़ी के लट्टों के अतिरिक्त निर्यात का अधिकांश भाग कृषि उत्पाद था, जैसे चावल, गेहूँ, चना, दाल, हल्दी इत्यादि। आयात को प्रमुख सामान लोहा और अन्य धातुये थी। केरोसिन ऑयल, तम्बाकू, इत्यादि का भी आयात नेपाल से होता था। गेहूँ का निर्यात बंगाल में होता था। चीनी का निर्यात कानपुर, मध्य भारत, राजपुताना और पूर्वी बंगाल में किया जाता था। तिलहन कानियात कलकत्ता, मटर और अरहर का छपरा, हल्दी का पंजाब, जबकि लकड़ी के लट्टों को बनारस, कानपुर आदि में भेजा जाता था। अधिकांश नमक कच्छ की खाड़ी से मंगाया जाता था। सूती सामानों व धातुओं को कानपुर से आयात किया जाता था और तम्बाकू को तिरहुत से आयात किया जाता था।

1833 में पुलिस पुनर्गठन के कुछ सालों के बाद जब अनेक स्थानों पर जंगलों को साफ करके भू यूरोपियों को दी गयी, तो इन यूरोपियों के कारण व्यापार ने गति पकड़ी। नदी और सड़क मार्ग दोनों से व्यापार विकसित हुआ। नदी मार्ग अपेक्षाकृत सस्ता था। अतः इसका उपयोग ज्यादा हुआ। कपड़ों के आयात ने इस क्षेत्र में वाणिज्य के विकास को तीव्रता प्रदान की। सन् 1860 में कपड़ों का आयात आधा

लाख रूपये से बढ़कर 1862-63 में दो लाख रूपये और दस वर्ष पश्चात अकेले गोरखपुर शहर में 3.5 लाख रूपये का कपड़ा आयात होता था जो 1876-77 में बढ़कर पाँच लाख रूपये हो गया।

1905 में चावल का वार्षिक निर्यात तीन लाख मन था गेहूँ का पचास लाख मन औरचना का एक लाख मन और अन्य खाद्यान्नों का निर्यात एक लाख साठ हजार मन वार्षिक था। परिष्कृत चीनी का निर्यात 3 लाख मन, अपरिष्कृत चीनी का निर्यात 2 लाख 75 हजार मन था। लकड़ी के लट्ठों का निर्यात 1 लाख 30 हजार मन और 21 हजार मन हल्दी का निर्यात गोरखपुर से वर्ष 1905 में होता था। जहाँ तक आयात से सम्बन्धित आँकड़ों की बात है। 1905 में सूती सामान 51 हजार मन सूत 1 हजार मन लोहे का सामान 41 हजार मन तम्बाकू 35 हजार मन, नमक 32 हजार मन, किरासिन तेल 28 हजार मन, कांसा एवं अन्य धातुएँ 13500 मन आयात की जाती थी।

नेपाल और भारत के मध्य व्यापार समृद्ध स्थिति में था। अध्ययन काल में नेपाल से आयात की मुख्य वस्तु चावल थी। इसके अतिरिक्त तिलहन, मसाले औरघी भी आयात होते थे। नेपाली अधिकारियों ने ताबे का निर्यात बन्द कर दिया था। इन सब सामानों के बदले गोरखपुर से धागे, कपड़े, आनाज, चीनी, नमक, मछली, बकरियों औरभेड़े नेपाल भेजी जाती थी।

अनाज का व्यापार करने वालों को केराना व्यापारी कहते थे। अधिकांश अनाजअन्य जिलों के व्यापारियों के द्वारा खरीदा जाता था जो राप्ती नदी के माध्यम से व्यापार करते थे ये व्यापारी तीन प्रकार के होते थे गृहस्थ व्यापारी, बरदलदु व्यापारी और लेरहिया व्यापारी। लेरहिया व्यापारी किसान होते थे जिनके पास काफी मात्रा में बेड़ा होता था। जिनका प्रयोग ये बैलगाड़ियों में करते थे और सामानों को बाजारों तक पहुंचाते थे। कपड़े के व्यापारियों को कपरिया कहा जाता था।

मान्दगोमरी मार्टिन ने लिखा है कि गोरखपुर परिक्षेत्र में प्रतिवर्ष लगभग 300 छोटी बड़ी नावों का निर्माण होता था जिसमें लगभग 1 लाख 20 हजार मन सामान ढोया जाता था। बंजारा व्यापारी भी होते थे जो नमक और हल्दी का व्यापार करते थे ये व्यापारी नमक और हल्दी कासारण व नेपाल से आयात करते थे। ये हिन्दू और मुसलामान दोनों होते थे। ये कारवां बनाकर चलते थे और व्यापारिक गतिविधियों में शामिल रहते थे। ये कभी कभार लूटमार भी किया करते थे फुटकर व्यापारियों को बनिया या परचूनिया भी कहा जाता था। नमक का व्यापार करने वालों को बुनिहा व्यापारी कहा जाता था। पशुओं का व्यापारकरने वालों को दहरिया कहा जाता था। 15 गोरखपुर क्षेत्र में पैदल व्यापारियों को बहुरिया कहा जाता था। गोरखपुर क्षेत्र में बैकर्स शहर में रहते थे और इन्हें कोठीवाला कहा जाता था। इन्हीं में से एक कन्हैयालाल था जो कलेक्टर का खजांची था और इसके एजेन्ट कलकत्ता, पटना और बनारस तक फैले थे और इनका व्यापार लखनऊ, फैजाबाद और मुर्शीदाबाद तक फैला हुआ था। दूसराबैकर हरिनारायण था जिसका मुख्य केन्द्र कलकत्ता था और इसके एजेन्ट पटना और बनारस तक फैले हुए थे। इस जिले में किसी व्यापारी को अढतिया नहीं कहा जाता था बल्कि अढतियां को महाजन, साहू, बहरियाकहा जाता था। ये सूद पर धन भी दिया करते थे।

गोरखपुर के सर्राफा व्यापारियों की स्थिति कमोबेश देश के अन्य सर्राफा व्यवसायियों की तरह ही थी। सर्राफा व्यवसायी छोटे पूंजीपति थे और सोना-चांदी का व्यापार करते थे।

नेपाल के साथजो गोरखपुर का व्यापार संचालित होता था उसके प्रमुख केन्द्र घानी और निचलौल थे। कुछ समय बाद जब रेलवे कीस्थापना 1885 में गोरखपुर में हुई तो घानी का स्थान बृजमनगंज ने ले लिया। रेलवे के आगमन के कारण ही कैप्टनगंज और रगड़गंज जहां से मुख्यतया निचलौल के साथ व्यापार होता था बन्द हो गया और उसका स्थान मुडैरा ने ले लिया। कैप्टनगंजऔर बहों के बीच रेलवे लाईन बनने के कारण सिसवा बाजार का उदय हुआ। इसी प्रकार रेलवे के कारण लकड़ी के लट्ठों के व्यापार पर भी असर पड़ा और मनीराम फरेन्दा, बृजमनगंज और उसका बाजार में अब यह रेलगाड़ियों पर लादा जाने लगा।

पिपराइच बाजार चीनी उद्योग के लिए महत्वपूर्ण था और इसकी समृद्धता को बगहों में रेलवे की स्थापना ने और बढ़ा दिया। पूरब में वाणिज्य के प्रमुख केन्द्र पडरौना, तिवारी, पट्टी और महाराजगंज थे। सहजनवा रेलवे स्टेशन परगना हसनपुर, मगहर के उत्पादों को एकत्र करता था। यह मुख्यतः

आनाज निर्यात का केन्द्र था। चौरी-चौरा में कई चीनी मिलें भी थी। इसके अलावा कई तेल मिले थी थी जिनका मालिकाना हक डुमरी स्टेट के पास था। गोरखपुर का सबसे बड़ा पशु बाजार केवटाली में था। दक्षिण में घाघरा और गोला जो बॉस-गॉव तहसील में था। लेकिन 20वीं शताब्दी के द्वितीय दशक में इनका महत्व धीरे-धीरे घटने लगा। पूरब में बडहलगंज, बरहज, गौरा प्रमुख व्यापारिककेन्द्र थे।

संदर्भ सूची :

1. मार्टिन, मान्तगोमरी : दी हिस्ट्री एन्टिक्विट्ज, टोपोग्राफी, एण्ड स्टैटिस्टिक्स ऑफ ईस्टर्न इण्डिया, भाग-2, 1838, पृ0 588-560
2. वहीं पृ0 562
3. नेविल, एच0आर0 : डिस्ट्रिक्ट गजेटियर ऑफ गोरखपुर, वाल्यूम XXXI इलाहाबाद 1905, 72-73
4. वहीं पृ0 73
5. मार्टिन, मान्तगोमरी : पूर्वोद्धत, पृ0 73
6. नेविल एच0आर0 : पूर्वोद्धत पृ0 73
7. वहीं, पृ0 73
8. चीनी के उत्पादन की प्रक्रिया के लिए देखें, एम0एस0 हादी, सुगर इण्डस्ट्री दी युनाईटेड प्राविन्सेज, इलाहाबाद 1902 तथा शाहिद अमीन : सुगर केन एण्ड सुगर इनडस्ट्री इन गोरखपुर, दिल्ली, 1964
9. हैण्ड बुक, परगना सलेमपुर- मझौली, 1919 पैरा-7
10. सर्वे ऑफ लार्ज लैण्डेड स्टेट्स इन यू0पी0 (गोरखपुर डिवीजन), 1919
11. नेविल, एच0आर0 : पूर्वोद्धत, पृ0 76
12. वहीं, पृ0 75
13. वहीं, पृ0 75
14. मार्टिन, मान्तगोमरी : पूर्वोद्धत, पृ0 560-569
15. वहीं, पृ0 569-572
16. मार्टिन, मान्तगोमरी : पूर्वोद्धत, पृ0 80-83
17. गुप्ता, एस0सी0 : एग्रेरियन रिलेसन्स एण्ड अर्ली ब्रिटिश रूल इन इण्डिया, ए केस स्टडी ऑफ सीडेड एण्ड कान्कर्ड प्राविन्सेस, न्यूयार्क, 1936
18. इण्टरनेशनल इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइन्सेज, वाल्यूम-2 एण्ड वाल्यूम-12, मैकमिलन एण्ड प्रेस, न्यूयार्क, 1972
19. सिद्दीकी, आशिया : एगोरियन चेन्ज इन ए नार्दन इण्डिया स्टेट, 1819-1833, 1973 आक्सफोर्ड
20. मिश्रा, बी0आर0 : लैण्ड रेवेन्यू पॉलसी इन दी यूनाईटेड प्राविन्सेज, बनारस, 1942

आत्मकथा 'जूठन' : एक परिचयात्मक विश्लेषण

राज मणि सरोज

असि० प्रो० हिन्दी विभाग

धर्मसमाज महाविद्यालय, अलीगढ़

शोध-पत्र

जूठन शब्द का आशय है वह खाद्य पदार्थ जो किसी के द्वारा खाने के उपरांत पत्तल अथवा थाली में छोड़ दिया जाता है। भारतीय समाज में दलित जातियाँ जो अत्यन्त गरीब एवं आर्थिक रूप से निरीह होती थी, वह सब दूसरे व्यक्ति के घर से भोजन या अन्य अवसर पर लोगों के द्वारा भोजन करने के बाद पत्तलों में शेष बचे हुए भोजन को एकत्रित कर लेते थे और अपने घर पर लाकर उसका उपयोग कई महीनों तक करते थे। उस जूठे भोजन को लम्बे समय तक उपयोग में लाने के लिए वे उसे धूप में सुखा देते थे और सूखने के बाद उसे बरतन में रख लेते थे और भविष्य में उसे उबालकर भोजन के रूप में प्रयोग में लाते थे।

जूठन का आशय समझने के लिए आत्मकथा 'जूठन' की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं— 'शादी-ब्याह के मौके पर, सब मेहमान या बराती खाना खा रहे थे। बारात के खाना खा चुकने पर झूठी पत्तले उन टोकरी में डाल दी जाती थी, जिन्हें घर ले जाकर वे जूठन इकट्ठी कर लेते थे। पूरी के बचे-खुचे (टुकड़े) एक साथ मिठाई का टुकड़ा या थोड़ी बहुत सब्जी पत्तलें पर पाकर बाँछें खिल जाती थी। जूठन चटखारे लेकर खायी जाती थी.....। ये सूखी पूड़ियाँ बरसात के कठिन दिनों में बहुत काम आती थी। इन्हें पानी में भिगोकर उबाल लिया जाता था। उबली हुई पूरियों पर बारीक मिर्च और नमक डालकर खाने में मजा आता था। कभी-कभी गुड़ डालकर लुगदी जैसा बना दिया जाता था जिसे सभी बड़े चाव से खाते थे।'¹

आत्मकथा 'जूठन' सामाजिक भेदभाव, दलित जीवन की विवशता, जातिवादी व्यवस्था के भयावह रूप को उजागर करने वाली दलित समाज की प्रतिनिधि रचना है। ओम प्रकाश वाल्मीकि के अनुसार दलित, "जीवन की पीड़ाएँ असहनीय और अनुभव दुग्ध हैं। ऐसे अनुभव जो साहित्यिक अभिव्यक्तियों में स्थान नहीं पा सके। एक ऐसी समाज व्यवस्था में हमने साँसे ली हैं, जो बेहद क्रूर और अमानवीय है। दलित के प्रति असंवेदनशील भी। इन अनुभवों को लिखने में कई प्रकार के खतरे थे। एक लम्बी जद्दोजहद के बाद मैंने सिलसिलेवार लिखना शुरू किया। तमाम कष्टों, यातनाओं, अपेक्षाओं, प्रताड़नाओं को एक बार फिर जीना पड़ा। उस दौरान गहरी मानसिक यन्त्रणाएँ मैंने भोगी। स्वयं को परत-दर-परत उधेड़ते हुए कई बार लगा कितना दुःखदायी है यह सब। कुछ लोगों को यह अविश्वनीय और अतिरंजना पूर्ण लगता है।'²

आत्मकथा 'जूठन' के सन्दर्भ में ओम प्रकाश वाल्मीकि जी लिखते हैं— "कई मित्र हैरान थे, अभी से आत्मकथा लिख रहे हो। उनसे मेरा निवेदन है कि उपलब्धियों की तराजू पर यदि मेरी इस व्यथा कथा को रखकर तौलोगे तो हाथ कुछ नहीं लगेगा। एक मित्र की यह भी सलाह थी कि मैं आत्म-कथा लिखकर अपने अनुभवों का मूलधन खो रहा हूँ। कुछ का यह भी कहना था कि खुद को नंगा करके आप अपने समाज की हीनता को ही बढ़ायेंगे। एक बेहद आत्मीय मित्र को भय सता रहा है। उन्होंने लिखा— आत्मकथा लिखकर आप अपनी प्रतिष्ठा ही न खो दें। इस प्रक्रिया में ऐसा बहुत कुछ है, जो लिखा नहीं गया या मैं लिख नहीं पाया। मेरे सामर्थ्य से बाहर था। इसे आप मेरी कमजोरी मान सकते

हैं। पुस्तक का शीर्षक चयन करने में श्रद्धेय राजेन्द्र यादव जी ने बहुत मदद की। अपने व्यस्त जीवन से समय निकालकर पाण्डुलिपि को पढ़ा। सुझाव दिये जूठन शीर्षक भी उन्होंने ही सुझाया। उनका आभार व्यक्त करना मात्र औपचारिकता होगी।³

‘जूठन’ में भारतीय समाज के उपेक्षित, शोषित, वंचित, दलित जीवन की समस्याओं, सरोकारों को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है, साथ ही जाति आधारित भारतीय समाज की विसंगतियों को भी उजागर किया गया है। आत्मकथा ‘जूठन’ में अपमानित जीवन का संत्रास, गरीबी, दीन-हीन, होने की वेदना का स्वर मुखरित हुआ है। इस कृति के माध्यम से लेखक ने दबे-कुचले, शोषित, पीड़ित जनसमूह की अस्मिता के स्वर को मुखरित करते हुए सामाजिक विसंगतियों पर प्रहार किया है। इस आत्मकथा में दलित जीवन की त्रासद सच्चाई को प्रकट किया गया है। अपने मोहल्ले का जिक्र करते हुए ओम प्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं— “अस्पृश्यता का ऐसा माहौल कि कुत्ते-बिल्ली, गाय-भैंस को छूना बुरा नहीं था लेकिन यदि चूहड़े का स्पर्श हो जाये तो पाप लगा जाता था। सामाजिक स्तर पर इन्सानी दर्जा नहीं था। वे सिर्फ जरूरत की वस्तु थे। काम पूरा होते ही उपयोग खत्म। इस्तेमाल करो, दूर फेंको।”⁴ इन पंक्तियों से किसी एक व्यक्ति की नहीं नहीं बल्कि सम्पूर्ण दलित समाज की मानसिक व्यथा, विवशता तथा सच्चाई को प्रकट किया गया है। ‘जूठन’ के माध्यम से लेखक द्वारा दलित जीवन के उन सभी सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पहलुओं पर गंभीरता पूर्वक चिंतन किया गया है जिसके कारण दलित उत्पीड़न का प्रश्न भारतीय समाज में एक समस्या बनी हुई है।

बाल्यावस्था से ही पढ़ने लिखने में होनहार बालक ओम प्रकाश वाल्मीकि ने पारिवारिक – सामाजिक बाधाओं के बीच अपनी शिक्षा पूरी की और आर्डिनेंस फैक्टरी देहरादून में जब एप्रेंटिस के रूप में भर्ती हुये तो अपने पिता को सूचित करते हैं कि वह पढ़ाई छोड़कर एप्रेन्टिस बनकर रक्षामंत्रालय के फैक्टरी में प्रवेश पा गये हैं। इस बात से पिता को सन्तोष होता है कि अब मेरा बेटा फैक्टरी में मशीन के कलपुर्जों की तकनीक का काम सीखेगा और अच्छा हुआ कि जाति के कामों से पीछा छूट गया। ओम प्रकाश वाल्मीकि इस भावना को अभिव्यक्त करते हुए लिखते हैं— “लेकिन जाति से मृत्युपर्यन्त पीछा नहीं छूटता, इस तथ्य से वे अंत तक अपरिचित रहे।”⁵ ‘जूठन’ केवल ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा ही नहीं बल्कि दलित जीवन का भोगा हुआ सच है, जहाँ जाति आधारित सामाजिक व्यवस्था की खतरनाक खाइयाँ हैं और वहाँ से निकलने वाली दलितों की दर्दनाक चीखें हैं।

सन्दर्भ-सूची

1. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, जूठन, पृ0सं0 – 19, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1997,
2. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, जूठन, पृ0सं0 – 07
3. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, जूठन, पृ0सं0 – 08
4. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, जूठन, पृ0सं0 – 12
5. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, जूठन, पृ0सं0 – 97

‘मुर्दहिया’ का परिचयात्मक विवरण

नंदराम

असि० प्रो० हिन्दी विभाग
धर्मसमाज महाविद्यालय, अलीगढ़

शोध पत्र

‘मुर्दहिया’ का सामान्य अर्थ एक ऐसे स्थल से है, जहाँ शवों का अंतिम संस्कार किया जाता है। प्रस्तुत ‘मुर्दहिया’ आत्मकथा में वर्णित मुर्दहिया डॉ० तुलसीराम के गाँव धरमपुर की बहुउद्देशीय कर्मस्थली थी। पशुचारण, कृषि सम्बन्धी कार्यों, स्कूल, दुकान, बाजार, मंदिर एवं रेल यातायात आदि गतिविधियों को सम्पन्न करने हेतु गाँव वालों को मुर्दहिया से गुजरना पड़ता है।

लेखक के गाँव की खासकर दलित बस्ती के जीवन में मुर्दहिया का केन्द्रीय स्थान था। जीवकोपार्जन से लेकर शवों के अंतिम संस्कार करने तक प्रत्येक कार्यों में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान था। पशुओं के मरने पर भी उन्हें मुर्दहिया में लाकर उनकी खाल उतारने का कार्य किया जाता था। भूख के सन्दर्भ में भी यह स्थल दलितों, कुत्तों, सियारों, गिद्धों आदि के जीवन में महती भूमिका निभाता था।

इस प्रकार मुर्दहिया लेखक के गाँव में घटित होने वाली लगभग सभी घटनाओं की साक्षी हुआ करती थी। गाँव के सदस्य जीवन यापन सम्बन्धी विभिन्न कार्यों हेतु मुर्दहिया पर निर्भर रहते थे और अन्त में अपने जीवन की खट्टी-मीठी यादों के साथ इसी में दफन भी हो जाते थे।

पशु-पक्षियों के भोजन के साथ मुर्दहिया उनके निवास हेतु स्थान भी प्रदान करती हैं। अर्थात् मानव के साथ वह पशु-पक्षियों के जीवन का भी केन्द्र स्थल।

डॉ० तुलसीराम के जीवन में भी मुर्दहिया का केन्द्रीय स्थान है। यह पशुओं को चराने और मरे हुए पशुओं की खाल उतारने से लेकर विभिन्न खेलकूद सम्बन्धी गतिविधियों में लेखक के जीवन में रची-बसी थी। तुकबंदी बनाकर गाने वाले जोगीबाबा, लक्कड़ ध्वनि पर नृत्यकला की छटा बिखरती नटिनिया, गिद्ध-प्रेमी पगल बाबा तथा सिंघा बजाता बंकिया डोम आदि पात्र जिनका महत्त्वपूर्ण योगदान लेखक के जीवन परिवेश के निर्माण में था, वे भी मुर्दहिया से अभिन्न रूप से जुड़े थे। इसी कारण लेखक ने अपनी आत्मकथा का शीर्षकीकरण मुर्दहिया किया है।

‘मुर्दहिया’ में डॉ० तुलसीराम ने न सिर्फ दलितों की पीड़ा को ही रेखांकित किया है, बल्कि अपने गाँव धरमपुर के जरिए उस समय के पूरे भारतवर्ष के गाँवों को ही चित्रित कर दिया है। डॉ० तुलसीराम कहते हैं— “इसमें मेरा दर्द है, मेरे समाज का दर्द है। मेरा पूरा जीवन ही मुर्दहिया है। मुर्दहिया यानी गाँव का वह कोना जहाँ मुर्दे फूँके जाते हैं, मुर्दहिया यानी गाँव का वह हिस्सा जहाँ मरे हुए जानवरों के चमड़े उतारे जाते हैं।”

डॉ० तुलसीराम द्वारा अपने आत्मकथा को ‘मुर्दहिया’ नाम देना सिर्फ एक शीर्षक भर ही नहीं है। किसी भी रचना की आत्मा उसके शीर्षक में ही होती है। मुर्दहिया इस आत्मकथा का शीर्षक ही नहीं अपितु लेखक के गाँव धरमपुर का लीला स्थल है। लेखक ने स्वयं स्पष्ट किया है— “मुर्दहिया हमारे गाँव धरमपुर (आजमगढ़) की बहुउद्देशीय कर्मस्थली है। चरवाही से लेकर हरवाही तक के सारे रास्ते वहीं से गुजरते थे। इतना ही नहीं, स्कूल हो या दुकान, बाजार हो या मंदिर यहाँ तक कि मजदूरी के लिए कलकत्ता वाली रेलगाड़ी पकड़ना हो, तो भी मुर्दहिया से ही गुजरना पड़ता था। हमारे गाँव की

‘जियो-पालिटिक्स यानी भू-राजनीति में दलितों के लिए मुर्दहिया एक सामरिक केन्द्र जैसी थी। जीवन से लेकर मरन तक की सारी गतिविधियाँ मुर्दहिया समेट लेती थी। सबसे रोचक तथ्य यह है कि मुर्दहिया मानव और पशु में कोई फर्क नहीं करती थी।’¹

‘मुर्दहिया’ को समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से अवलोकित करने पर यह स्पष्ट होता है कि यह तत्कालीन समाज में चल रहे सामाजिक ताने-बाने का बारीकी से अध्ययन प्रस्तुत करती है। इस सन्दर्भ में मणीन्द्र नाथ ठाकुर द्वारा अपने लेख ‘समाज शास्त्र’ के स्वरूप पर बहस और ‘मुर्दहिया’ में प्रकट विचार उल्लेखनीय है— ‘इस आत्मकथा की पहली खासियत तो यह है कि यह एक व्यक्ति के अनुभवों के माध्यम से पूरे दलित समाज की कहानी है। यह एक तरह से एथनोग्राफिक उपागम से दलित समाज का समाजशास्त्रीय अध्ययन है। जिस अध्ययन में भोगे हुए यथार्थ का निरपेक्ष अध्ययन भी है और उससे उत्पन्न भावनाओं का उद्गार थी। समाजशास्त्र के पूर्व पक्ष के उपागमों के माध्यम से दलित समाज के अन्दर चल रही प्रक्रियाओं की समझ बना पाया मुश्किल है। उदाहरण के लिए, एक दलित बालक को अपनी पढ़ाई-लिखाई जारी रखने के लिए किस तरह की समस्या से गुजरना होता है; एक दलित छात्र यदि विकलांग भी हो तो उसे समाज में किस तरह की समस्या का सामना करना पड़ सकता है या फिर एक ब्राह्मण विधवा महिला को किस तरह की सामाजिक समस्या का सामना करना पड़ सकता है। जिन लोगों को देखना लोग अपशुन मानते थे उनमें अपनी विकलांगता के कारण लेखक स्वयं और यह ब्राह्मण विधवा शामिल है। इसी तरह दलित समाज का उच्च जाति के लोगों के साथ किस तरह का संबन्ध बनता है इसके लम्बे इतिहास का जो लेखा-जोखा आत्मकथा के माध्यम से संभव हो पाया है, किसी और समाजशास्त्रीय अध्ययन में हो पाना मुश्किल है। किसी उच्च जाति की कन्या का लेखक के प्रति स्नेह और उसे गोद में उठाकर नदी पार करवाने की घटना के बाद उस कन्या का विवाह किया जाना और विदाई के समय उस लड़की का अपनी शिक्षा नहीं पूरी कर पाने को लेकर रोना, सब कुछ जाति और पितृसत्ता के सम्बन्धों की जटिलता को दर्शाता है।’²

हिन्दी दलित साहित्य की विभिन्न महत्त्वपूर्ण आत्मकथाओं में मुर्दहिया का अपना विशेष स्थान एवं महत्त्व है। जितनी गहराई के साथ ग्रामीण एवं लोक-जीवन परिवेश मुर्दहिया में अंकित है वैसा अन्य दलित आत्मकथाओं में मिलना मुश्किल है। सूर्यनारायण रणसुभे ने लिखा है— ‘हिन्दी में जितनी भी महत्त्वपूर्ण दलित आत्मकथाएं प्रकाशित हुई हैं, उनमें मुर्दहिया की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें एक छोटे से गाँव में स्थित दलित जीवन का गहरा चित्रण किया गया है। यह दलित लोकजीवन की आत्मकथा है। हिन्दी की पहली दलित लोकजीवन की आत्मकथा है। हिन्दी की पहली दलित आत्मकथा ‘अपने-अपने पिंजरे’ का सम्बन्ध मेरठ शहर के बाहर जीने वाली दलित बस्ती के साथ है। ‘जूठन’ में ग्रामीण दलित जीवन पृष्ठभूमि में ही है। ‘तिरस्कृत’ में दिल्ली की झुग्गियों में जीने वाले दलितों का जीवन है। ‘नागफनी’ में अलबत्ता गाँव का चित्रण है। परंतु यहाँ लेखक केन्द्र में है, ग्राम जीवन नहीं। श्योराज सिंह बेचैन की आत्मकथा के पूर्वाद्ध में अलबत्ता दलित ग्रामीण जीवन केन्द्र में है। परन्तु वहाँ भी लोक जीवन की अपेक्षा ‘परिवार’ केन्द्र में है। ‘मुर्दहिया’ संभवतः हिन्दी की पहली आत्मकथा है, जिसमें केवल दलित ही नहीं अपितु इस गाँव का सम्पूर्ण लोक जीवन ही केन्द्र में है।’³

‘मुर्दहिया’ डॉ० तुलसीराम द्वारा रचित मात्र एक आत्मकथा नहीं, बल्कि लेखक के व्यक्तिगत पारिवारिक जीवन के साथ-साथ आस-पास के सभी वर्गों — जातियों के सामाजिक — सांस्कृतिक सम्बन्धों और उनकी जटिलताओं की भी रचनात्मक अभिव्यक्ति है। यह कृति हिन्दू-धर्म एवं सामाजिक व्यवस्था और घर-परिवार में उपेक्षा, अनादर तथा अपमान झेलते एक बालक की त्रासद जीवन-स्थिति की यथार्थ रचती है। हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में समाया जातिगत भेदभाव, अपमान, पीड़ा, घृणा, धार्मिक जड़ता, कर्मकाण्ड, अन्धविश्वास और विद्रूप परम्पराओं की बारीक परतों को मुर्दहिया खोलती है।

सन्दर्भ सूची :

1. तुलसीराम, डॉ० 'मुर्दहिया', पृष्ठ सं० – 05, राजकमल प्रकाशन प्रा० लि० नई दिल्ली। प्रथम संस्करण : 2012
2. श्री धरम, सं० – 'तुलसीराम व्यक्तित्व एवं कृतित्व', मणीन्द्रनाथ ठाकुर का लेख 'समाजशास्त्र के स्वरूप पर बहस और 'मुर्दहिया'' पृष्ठ सं०-64-65 प्रथम संस्करण : 2016, अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश।
3. श्री धरम, सं० – 'तुलसीराम व्यक्तित्व एवं कृतित्व', सूर्यनारायण रणसुभे का लेख 'तुलसीराम की आत्मकथा : 'मुर्दहिया' और 'मणिकर्णिका'' पृष्ठ सं०-76

श्री अरविन्द समग्र योग समाज शास्त्रीय व्याख्या

डॉ० सतीश चन्द्र तिवारी
एसो० प्रोफेसर समाजशास्त्र
भवन्त मेहता महाविद्यालय
कौशाम्बी

समकालीन भारतीय दर्शन के पुनरुत्थान का श्रेय जिन मूर्धन्य विचारकों को है उनमें श्री अरविन्द विशेष रूप से उल्लेखनीय है। श्री अरविन्द के दार्शनिक चिंतन का सैद्धान्तिक पक्ष समग्र अद्वैतवाद है और उसका व्यावहारिक पक्ष समग्र योग है। अरविन्द के समग्र योग को आन्तरिक योग, अध्यात्म योग, अधि-मानसिकीय योग, पूर्ण योग भी कहते हैं। इसका लक्ष्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास, उसके व्यक्तित्व की सभी शक्तियों एवं पक्षों का समग्र विकास है। श्री अरविन्द के विकासवाद के अनुसार विकास-प्रक्रिया का परम लक्ष्य दिव्य जीवन की स्थापना है और यह दिव्य जीवन आना भी है, चाहे यह शीघ्र या विलम्ब से। पुनः उनकी मान्यता है कि विकास-प्रक्रिया व्यक्तिगत एवं जगत्, दोनों स्तरों पर एक विशेष अवस्था तक पहुँची है और अब यह आध्यात्मिक क्षेत्र में छलॉग लगाने के लिए उद्यत है। उनका विचार है कि अभी तक जगत् का विकास जड़, प्राण, मन, मानस के स्तर तक पहुँचा है। वे कहते हैं कि अब विकास को उच्चतर अवस्था (अतिमानस) में छलॉग लगानी है। जब यह छलॉग साकार हो जायेगी तो यह जगत् पूर्ण रूपान्तरित हो जायेगा। यह पूर्ण रूपान्तरण मानस के अतिमानस में आरोह और अतिमानस के मानस में अवरोह द्वारा तथा मानस और अतिमानस के मध्य चित अज्ञान के पर्दे को हटाकर ही संभव होगा। श्री अरविन्द के अनुसार यह रूपान्तरण दिव्य शक्ति के द्वारा होगा। यह दिव्य शक्ति भी अज्ञान के पर्दे को उठाने के लिए आगे आये तो भी यह पर्दा तब तक नहीं उठेगा जब तक अतिमानस का प्रकाश हमारी चेतना को प्रकाशित न कर दें, जब तक इस पर्दे को उठाने के लिए हमारे अंदर गहरी अभीप्सा न हो। यही पर योग की आवश्यकता होती है जो अतिमानसिक प्रकाश के अवतरण को ग्रहण करने में व्यक्ति को समर्थ बनाती है। जब योग के द्वारा अज्ञान का यह पर्दा हट जाता है और अतिमानस का अवतरण हो जाता है तो मानव उच्चतर अवस्था में ऊपर उठ जाते हैं।

श्री अरविन्द के अनुसार योग चेतना को विस्तृत करने, उसके उच्चतर उठने तथा अंततः एक रूप होने की प्रक्रिया है अथवा योग मानस की संपूर्णता में ईश्वरत्व का उत्प्रवाह है। इनके अनुसार योग प्रकृति में तथा प्रकृति के मोक्ष का प्रयत्न है, मात्र प्रकृति से मोक्ष का नहीं। योग आत्म चेतना न होकर आध्यात्मिक आत्म अभिव्यक्ति है। श्री अरविन्द अपनी तात्विक मान्यताओं के संदर्भ में योग को स्वीकार करते हैं और उसकी व्याख्या करते हैं। इनके अनुसार योग का अर्थ है, दिव्य (ईश्वर) के साथ मिलन, जो पारलौकिक स्तर पर या सार्वभौम स्तर पर या वैयक्तिक स्तर पर हो सकता है। योग दर्शन के विभिन्न विचारक योग के इन्हीं तीन विधाओं में से किसी एक का प्रतिपादन करते हैं। किन्तु श्री अरविन्द का मानना है कि उनके समग्र योग में ये तीनों विधाएं एक साथ जुड़ी हैं।

श्री अरविन्द के अनुसार योग-विधि वह पद्धति है जिसके सहारे मानस उच्चतर मानस, प्रदीप मानस, अन्तर्दृष्टि, व्यापक मानस के सोपानों को पार करता हुआ अति मानसिक प्रकाश को ग्रहण करने में सक्षम होगा। इसके लिए त्रिस्तरीय विधि आत्मिकता की प्रक्रिया, आध्यात्मिका की प्रक्रिया और अतिमानसिकता की प्रक्रिया। ये समग्र योग या अद्वैत योग के तीन सोपान हैं, ये आन्तरिक उत्थान विधियां हैं क्योंकि ये मानस को उच्चतर रूपों की ओर ले जाती हैं। इसी कारण इसे आन्तरिक योग भी कहते हैं।

योग के द्वितीय सोपान आध्यात्मिकता में आत्म को अबाधित एवं विस्तारित किया जाता है। इसमें आत्म में यह क्षमता आ जाती है कि वह अपने को उच्चतर चेतना के लिए पूर्णतया खोज सके। आध्यात्मिकता की प्रक्रिया से आत्म स्पष्टतः चेतना के उच्चतर रूपों की ओर उन्मुख हो जाता है। योग के अतिमानसिकता के स्तर पर आत्म उच्चतर चेतना के अन्तरण को ग्रहण कर लेता है। इसमें उसकी चेतना ईश्वरीय हो पाती है तथा सम्पूर्ण दृष्टिकोण ही परिवर्तित हो जाता है। इस स्थिति में यही विश्व, जो पहले अशिव रूप में दिखता था, अब शिव में रूपान्तरित हो जाता है और व्यक्ति स्वयं अपने को भगवती शक्ति के प्रवाह का माध्यम, उसकी सक्रिय अभिव्यंजना का केन्द्र महसूस करने लगता है। अब मानसिकता के स्तर पर उत्पन्न सभी झंझाव-2 के अंश (क्षोभ, अशांति उत्पन्न करने वाले तत्व) पूर्णतया शांत हो जाते हैं। श्री अरविन्द अतिमानसिकता के चार स्तरों का उल्लेख करते हैं—अचंचलता, स्थिरता, शांति तथा नीरवता। इन चारों में गुणात्मक भेद नहीं है। ये उस क्रम का निर्देश करते हैं जिस क्रम में आत्म मानस के द्वारा उत्पन्न विषमताओं से शनैः शनैः मुक्त होता है। श्री अरविन्द के अनुसार अतिमानसिकता के स्तर दो परिवर्तनहोते हैं—सार्वभौमिकता तथा परात्मकता। सार्वभौमिकता चेतना का पूर्ण विस्तार है और परात्मकता पूर्ण एकत्व की स्पष्ट अनुभूति है।

श्री अरविन्द के समग्र योग दर्शन की मुख्य विशेषताएं हैं कि अरविन्द यह स्वीकार करते हैं कि मनुष्य के लिए अपने सामाजिक जीवन में इस पार्थिक शरीर में पूर्ण दिव्यता प्राप्त करना सम्भव है। दिव्यता ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसे मनुष्य केवल मन, प्राण और शरीर से बाहर निकलकर ही प्राप्त कर सकता है। अपितु मनुष्य शरीर में रहते हुए दिव्यता प्राप्त कर सकता है। यह सम्भव ही नहीं बल्कि निश्चित है कि मनुष्य निकट या सुदूर भविष्य में दिव्यता प्राप्त कर ले। यहां शंकर दर्शन में मनुष्य शरीर, मन, प्राण के साथ सम्बन्ध विच्छेद करके एवं निरपेक्ष में विलीन होकर मुक्ति प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार शंकर केवल वैयक्तिक मुक्ति में विश्वास करते हैं। इसमें मनुष्य की प्रकृति का अतिमानस या दिव्य पुरुष के रूप में रूपान्तरण नहीं होगा, न सम्पूर्ण जगत्, जड़, प्राण एवं मानस का ही रूपान्तरण होगा। अरविन्द दर्शन में मनुष्य का एक दिव्य पुरुष के रूप में रूपान्तरण सम्भव है मनुष्य का यह रूपान्तरण इसी जगत् में, इसी पार्थिव सत्ता में सम्भव है।

योग पद्धतियाँ समस्त गतिशील अस्तित्व को अज्ञान, भ्रम आदि मानकर सीधे मन से निरपेक्ष दिव्य में ले जाती हैं। अरविन्द का समग्र योग भारत में विकसित दार्शनिक विचार से मूलतः भिन्न है, तथापि यह हमारे प्राचीन शास्त्रों की आत्मा के साथ पूर्ण संगति रखती है क्योंकि इन शास्त्रों में मनुष्य की भवितव्यता और उसकी सांसारिक सत्ता के स्वर्णिम विकास के सम्बन्ध में अटूट विश्वास लक्षित होता है। इस प्रकार श्री अरविन्द ने पार्थिव शरीर की गरिमा और मनुष्य की उच्च भवितव्यता के विषय में वेदों और उपनिषदों की प्राचीन शिक्षा को पुनर्जीवित किया है।

अरविन्द के आन्तरिक योग का अनुशीलन सबके लिए सम्भव है। इसमें सभी योग-पद्धतियों के समान आन्तरिक अनुशासनों की अनुशंसा तो है, किन्तु वे ऐसे अनुशासन हैं जिनका अभ्यास सभी कर सकते हैं। उनकी योग पद्धति अन्य योग पद्धतियों से भिन्न है। प्रायः विभिन्न योग पद्धतियों जगत् के प्रति निषेधात्मक अभिवृत्ति रखती हैं। उदाहरणार्थ पातंजलि योग में आत्म-अनात्म विवेक पर बल है किन्तु श्री अरविन्द के योग में आत्म रूप की पहचान पर बल है, आत्म-अनात्म भेद पर नहीं। इसी प्रकार विभिन्न योग पद्धतियाँ मानती हैं कि ईश्वर से एकत्व की प्राप्ति समाधि की अवस्था में, जब जाग्रतावस्था की चेतना पूर्णतया धूमिल हो जाती है तथा सांसारिकता से सम्पर्क टूट जाता है, किन्तु श्री अरविन्द मानते हैं कि पूर्ण एकत्व की प्राप्ति जाग्रतावस्था में जगत् से सम्पर्क तोड़े बिना भी सम्भव है।

अरविन्द के अनुसार योग का लक्ष्य मोक्ष तो है, किन्तु मात्र यही योग का लक्ष्य नहीं है। व्यक्ति का मोक्ष तो चरम लक्ष्य का एक अंग है। योग का लक्ष्य 'सर्वमुक्ति' तथा धरती पर 'दिव्य जीवन' को उतारना है।

श्री अरविन्द का समग्र योग इसमें योग के सभी रूपों का समन्वय है। अर्थात् योग का अर्थ दिव्य (ईश्वर) के साथ मिलना। यह पारलौकिक, सार्वभौमिक और वैयक्तिक स्तर पर हो सकता है। योग

दर्शन के विभिन्न विचारक योग के इन्हीं तीन विधाओं में से किसी एक का प्रतिपादन करते हैं। किन्तु अरविन्द के समग्र योग में ये तीनों विधाएं एक साथ जुड़ी हैं।

श्री अरविन्द के योग पद्धति में कुछ ऐसे अनुशासन भी समाविष्ट हैं जिनकी ओर अन्य योग दर्शनों ने ध्यान नहीं दिया था। जैसे राजयोग में मन के अनुशासन पर, हठयोग में शारीरिक अनुशासन पर बल है। ज्ञान योग, भक्ति योग एवं कर्मयोग में क्रमशः ज्ञान, भक्ति एवं कर्म पर बल है। इसके विपरीत समग्र योग में सर्वगीण विकास पर बल देता है। अरविन्द के योग में आत्म के सभी पक्षों (भौतिक, जैविक, मानसिक) का पूर्ण रूपान्तरण है। उनके योग में सभी प्रकार के रूपान्तरणों पर बल होने के कारण यह समग्र योग है।

संदर्भ ग्रन्थ—

1. The Life Deve-अरविन्द्र
2. श्री अरविन्द दर्शन की भूमिका—डा० अजंजी कुमार सिंह
3. समकालीन भारतीय दर्शन—प्रो० लक्ष्मी सक्सेना
4. समकालीन भारतीय दर्शन—प्रो० बसंत कुमार लाल
5. The Introduction to the Philosophy of Sri Aurvindo—प्रो० एस०के० मैत्र
6. भारतीय दर्शन समीक्षात्मक रूपरेखा—डा० आर०एम० पाठक

गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिन्दुस्तान : अपने अतीत का आख्यान

मारीषा

पीएच.डी. शोधछात्रा

हिंदी विभाग, महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, बिहार

हिन्दी कथा साहित्य के क्षेत्र में अपनी अदम्य साहस, जिजीविषा और अपनी संस्कृति को लेकर गहरा लगाव रखनेवाली समकालीन महिला कथाकारों में कृष्णा सोबती सबसे वरिष्ठ और अग्रिम हैं। मानवता की पैरोकार, संवैधानिक मूल्यों को लेकर सजग रहनेवाली प्रतिरोध की आवाज कृष्णा जी ने अपने उपन्यास 'गुजरात पकिस्तान से गुजरात हिन्दुस्तान' (वर्ष 2017 ई.) अपने जीवन के सबसे आखिरी पलों में लिखा है, जिसमें विभाजन और विभाजन द्वारा उपजी त्रासदी की अजीब दास्ताँ का बयां है। कृष्णा जी अपने आत्म-कथात्मक उपन्यास (गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिन्दुस्तान) के माध्यम से यह बताना चाहती है कि, भारत को आज़ादी तो मात्र राजनीतिक तौर पर ही मिली, लेकिन आज भी सांस्कृतिक और मानसिक तौर पर भारत गुलाम ही है।

सम्पूर्ण उपन्यास हमें विभाजन की त्रासदी से उपजे अपने दर्द को बयां करता है और इस बात की तरफ इशारा करता है कि हम अपने अतीत से मुँह नहीं मोड़ सकते, चाहे कहीं भी चले जाएं, हमारा अतीत हमारे सायें की तरह हमारे पीछे ज़िन्दगी भर चलता रहता है, यादें सिलवटें लेती रहती हैं और क्षेत्र विशेष अपनी मिट्टी और वतन से गहरा लगाव होता है।

भीष्म साहनी का 'तमस', यशपाल का 'झूठा-सच', कमलेश्वर का 'कितने पाकिस्तान' खुशवंत सिंह का 'ए ट्रेन टू पाकिस्तान', राही मासूम रज़ा का 'आधा गाँव' आदि उपन्यासों की एक लम्बी यात्रा के बाद कृष्णा जी का यह उपन्यास एक बार फिर से हमें बँटवारे के उस खून से सने अतीत में ले जाता है, जो जितना हिन्दुस्तान का है उतना ही पाकिस्तान का भी है। वास्तविक घटनाओं और पात्रों से बना यह उपन्यास विभाजन के बाद के समय के इर्द-गिर्द रचा गया है। तब अंगरेज चले तो गये थे लेकिन देश के रियासतों और राजा-रानियों का दौर पूरी-तरह खत्म नहीं हुआ था।

कृष्णाजी उपन्यास में जिस समय का जिक्र करती हैं, वह भारत में रियासतों के खत्म होने का दौर भी था। इस कारण रियासत के पहरेदारों में खलबली, तनाव और अफरातफरी का माहौल था। बँटवारे के बाद बना पाकिस्तान उस त्रासदी से पहले जिनके कदम विस्थापित शरणार्थियों के भेष में पड़े, यह उपन्यास उन उखड़े और दर-ब-दर लोगों की रूहों का अक्स है।

सच तो यह है कि कथाकार अपने उपन्यास में 'गुजरात पकिस्तान से गुजरात हिन्दुस्तान' में अपने आँखों देखा हाल को उन्होंने बखूबी बयां की है, उनका मानना था कि विभाजन से देश की सीमाओं का ही बटवारा नहीं हुआ था बल्कि समावेशी संस्कृति भी भिन्न-भिन्न हुई। यह एक सच्चाई है कि हिन्दुस्तान के बँटवारे के सत्तर साल बाद भी वे स्मृतियों में हमारे देश के कथाकारों के मन में इतने गहरी समाई है कि बँटवारे के सत्तर साल बाद भी वे स्मृतियाँ उनका पीछा नहीं छोड़ती, उन्हें बार-बार 'हांट' करती रहती हैं और किसी-न-किसी रूप में रचनात्मक स्तर पर व्यक्त होती हैं।

कृष्णा जी ने अपने आत्मकथात्मक उपन्यास 'गुजरात पकिस्तान से गुजरात हिन्दुस्तान' में विभाजन की पीड़ा और सांप्रदायिकता की त्रासदी से पाठक जगत को अवगत कराया गया है और हमें इस पीड़ा और त्रासदी के जिम्मेदारों और कारणों को समझने के लिए बाध्य भी किया गया है जिसके मूल में मनुष्य की यह अलगावादी दृष्टि और मानसिकता रही है, जिससे न केवल परिवार, समाज और देश को विभाजित किया है बल्कि मानवीय संबंधों को भी विभाजित किया है, जिससे आज मनुष्य को अकेलापन और संत्रास से पीड़ित त्रासदीपूर्ण जीवन जीने के लिए बाध्य भी किया गया है। इस विडंबना के मूल में मनुष्य की स्वार्थी दृष्टि और संकीर्ण मानसिकता, सक्रिय दिखाई देती है जिसने मनुष्य को धर्म, जाति, वर्ण, भाषा, क्षेत्रीयता आदि असंख्य आधारों पर अलगाए रखा है। आज भी मनुष्य विभिन्न स्तरों पर समाज विरोधी और राष्ट्र द्रोही जैसे कर्मों द्वारा मानवता को देश विभाजन और सांप्रदायिकता जैसी त्रासदी का शिकार बनाकर अलगावादी प्रवृत्तियों में लिप्त है इतना ही नहीं व्यक्तिगत जीवन के साथ – साथ पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन और मूल्यों को भिन्न – भिन्न कर दूसरों की लाशों पर पैर रखकर अपना विकाश करने और दूसरों के जीवन को मृत्यु का घास बनाकर अपना स्वार्थ साधने से बाज नहीं आते।

“तुरही नगाड़ा होइश्शा
ओ मेरे भाई होइश्शा
हुई कमाई होइश्शा
खून बहाया होइश्शा
हुए शहीद होइश्शा
तुरही नगाड़ा होइश्शा
अब राज मिलेगा होइश्शा
ताज मिलेगा होइश्शा”

कुछ इन पंक्तियों के साथ कृष्णा सोबती ने अपनी आत्मकथात्मक उपन्यास 'गुजरात पकिस्तान से गुजरात हिन्दुस्तान' की शुरुआत की है।

जब देश का विभाजन हुआ था और ब्रिटिश हुकूमत भारत को छोड़कर चले गये थे और जब दोनों मुल्कों ने आज़ादी का जश्न मनाया तब शायद उस वक़्त दोनों ही मुल्कों के लोगों को ये पता नहीं था कि गाँव किस देश में जाएगा। लाखों लोगों को भारी झटका लगा। प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने यह बताया है कि अब देश बँट चुका है और दो राष्ट्र बन चुके हैं – एक हिन्दुस्तान और दूसरा पाकिस्तान, एक गुजरात हिन्दुस्तान तो दूसरा गुजरात पाकिस्तान।

उपन्यास में प्रमुख पात्र के रूप में लेखिका स्वयं हैं और लेखिका अब आज़ाद भारत के सिरोही जो राजस्थान में है वहाँ अपनी पहली नौकरी शिशुशाला में पढ़ाने के लिए जाती है और वहाँ से शुरू होता है उनके ज़िन्दगी में उतार-चढ़ाव का ये सफ़र, जहाँ सिरोही पहुंचकर उन्हें तमाम तरह की राजनीतिक पेंचों की बारीकी समझ में आती है और वे उन्हें अपने आत्मकथा में इन सब बातों का जिक्र करती हैं। लेखिका अपने काम के सिलसिले में सिरोही तो आ चुकी है लेकिन वो अपनी पुरानी स्मृतियों में बारम्बार कौंधता रहता है। वे अब भी मानती है कि वतन जो था गुजरात था उसे भूलना भी मुश्किल है और याद करना भी मुश्किल है। नयी जगह आना और खुद को स्थापित करना ऐसे में थोड़ा वक़्त तो लगता ही है मन में भी अनमनी सी लगी रहती है। लेखिका के मन में कई तरह के सवाल चलते रहते हैं कि सिरोही तो आ चुकी हूँ लेकिन यहाँ तो न अपना घर है न कमरे। थोड़ा उँहापोह वाली स्थिति जरूर है उन्हें ठहरने के लिए गेस्ट-हाउस में एक कमरा तो मिल जाता है लेकिन लेखिका

को कमरा नहीं भाता है, एक भारी-भरकम पलंग पड़ा है, जो सस्ता सा जान पड़ता है, दीवारों की पुताई हुए बिना भी मानो वर्षों बीत गये हों। नीले रंगों की पुताई खिड़कियों के काँच की भी हालत बढ़िया नहीं जान पड़ती है और दरबाजे की लकड़ी भी सस्ते रंग-रोगन से बदरंग जान पड़ते हैं। यहाँ की भी हाल खस्ताहाल जान पड़ती है। इन सब हालातों को देखकर उन्हें बार-बार अपना घर याद आता है। परछाई की तरह पीछे छुट चुकी यादें पीछा करती हैं।

उनका ऐसा मानना था कि, “वतन जो था वो गुजरात पकिस्तान था और देश जो है वो गुजरात हिन्दुस्तान है। सब कुछ जैसे पीछे छुट चूका है। नेताओं ने अपने स्वार्थ के लिए मुल्क को भी बाँट दिया। धर्म के नाम पर देश को अलग – अलग बाँटकर दो मुल्क बना दिए”। आगे वे कहती हैं, “खुशहाली की नदियाँ, दरियाँ, नहरें सब बट चुके। विभाजन और तकसीम का नया आख्यान लिखा जा रहा है। एक नया दस्तावेज, मुल्क की आज़ादी का”।

स्वार्थी नेताओ ने अपने स्वार्थ के लिए देश को टुकड़ों – टुकड़ों में बाँट दिया। धर्म के आधार पर राजनीति ही की और अपना स्वार्थ ही सिद्ध किया। इस विभाजन की राजनीति को कृष्णा जी ने अपने उपन्यास में एक पात्र सिकंदर लाल के शब्दों में कहलवाया है –

“सिकंदरलाल कड़वे गले से बोले यह तवारीख का काला सपारा सियासत पर यूँ गाँलिब हुआ कि जिन्ना ने दौराए इस्लामी घोड़े और गाँधी जवाहर ने पोरसवाले हाथी, दिमागी घोड़े दौराकर उन्होंने मुल्क बना लिए और यह हाथियों का झुण्ड लिए अपने पेड़ की टहनियां तोड़ – तोड़ निचे फेंकते रहे, वही पुरानी तवारीख”¹।

गुजरात के पाकिस्तान से लेकर गुजरात के हिन्दुस्तान तक की अपनी एक साझी संस्कृति है? जो इस उपन्यास में विस्थापन के कारण खण्डित होती नज़र आती है। गुजरात पकिस्तान से आई हुई लेखिका के जहन में ये बात अब तक कौधती रहती है।

देश में अब राजसत्ता के बदले लोकसत्ता है। देश में लोकतंत्र स्थापित हो चुका है लेकिन जनमानस में तो अभी भी राजा – रानी बने रहने की प्रवृत्ति कायम है। कहने के लिए तो सिरोही में अब लोकतंत्र है लेकिन वहाँ के कुँवर सा कहलाते महाराज ही हैं, वे अभी पांच वर्ष के ही हैं। जन मानस के बीच राजा – रानी बने रहने की जो सोच है, वो आज भी बनी हुई है। गेस्ट हाउस का नाम भी ‘यूरोपियन गेस्ट हाउस’ रखा गया है, जबकि देशी नाम रखा जा सकता था। यही बात लेखिका अपने उपन्यास में बताने की कोशिश करती है कि अभी भी सही मायनों में लोकतंत्र के बदले सामंती ताकतें ही हैं। मंदिरों को लेकर भी दो राज्यों की आपस में ठनी हुई है, उधर गुजरात धुँआ उठा रहा है कि अम्बा जी का यह मंदिर राजस्थान के बदले गुजरात में होना चाहिए था।

इस उपन्यास में लेखिका यह बताने की कोशिश भी करती हैं कि देश में अब लोकतंत्र है। अब सब बराबर हैं, लेकिन देश अभी भी जात – पात के आधार पर बटा है। जातिवादी व्ययस्था आज भी कायम है। हमारी जनता को यह समझ नहीं है कि हमने आज़ादी किस मूल्यों पर प्राप्त की, खूनी हलचलों की कीमत पर आज़ादी मिली। दोनों ओर जो कुर्बान हुए, मर खप गये, वे तो वतन के लिए शहीद हुए वे अपने – अपने मुल्कों की बरकतों को माथे पर लगाए भोगे। इतना ही नहीं नानी माँ के अमृतसर पहुचने पर उन्होंने गांधी के दर्शन की इच्छा जाहिर करने पर कृष्णा जी ने कस्तूरी लाल के शब्दों में कहलवाया –

“भावों पगला गई हो क्या, जिसने मुल्क बाँटवा दिया, लाखों बन्दों को मरवा दिया भला उसके दर्शन करने चली हो!”

तद्युगीन जातिवादी गंध को भी उजागर करते हुए कृष्णा जी लिखती हैं कि लाहौर के उर्दू अखबार में काम करने वाले बलवंत हांडा ने अपने मोहतबिरी दिखलाने को कहा- सज्जनों असल बात तो कुछ और ही है। ब्राह्मणों की चिम्पांजी बिरादरी ने यह खूनी बखेड़ा शुरू किया है।

यह साजिश दरअसल गाँधी के खिलाफ नहीं थी बनियों को नीचा दिखाने की थी। उनके बर्दास्त के बहार था कि गाँधी महात्मा बनिया होकर ब्राह्मणों जैसा आदर पायें। खलकत उनको संतों, ऋषियों की तरह पूजे। इसके अलावा जातिवादी ज़हर के रूप को उजागर करते हुए उसकी समाप्ति की आशा को गुजराँवाले से उजड़े धनपत के माध्यम से व्यक्त किया है। अरे, यह जात - पात ब्राह्मण, बनियों का गुर्दा - गुब्बार झड़ने लगा।

कृष्णा जी ने अपने आत्मकथात्मक उपन्यास में 'गुजरात पकिस्तान से गुजरात हिन्दुस्तान' में दिखाया है कि पाकिस्तान के हिस्से वाले गुजरात में उखड़ कर हिन्दुस्तान के हिस्से वाले गुजरात की उनकी अनेक स्मृतियों के रूप में पाकिस्तान वाला गुजरात उनकी जड़ों को समेटने के वाबजूद अधिकतर उनकी स्मृतियों में ही सुरक्षित है। इन्हीं स्मृतियों के आधार पर विभाजन के दंश को बार - बार याद करती हुई हिन्दुओं और मुसलमानों में व्याप्त डर, परस्पर नफ़रत, अविश्वास को मार्मिकता के साथ व्यक्त करते हुए विभाजन जैसे राजनैतिक फैसलों पर सवाल खड़े करती हैं। कृष्णा जी ने न केवल याद रखने का खतरा उठाया अपितु अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाते हुए जिम्मेदारों से सवाल किया है और विभाजन की पृष्ठभूमि पर लिखे गये अपने उपन्यास में अपने अनुभवों को स्मृतियों का आधार प्रदान कर उसने मूलतः विभाजन की राजनीति, विभाजन की त्रासदी के कारण भड़की हिंसा में अमानवीयता, बेगुनाहों की मौत, बेघर होने की पीड़ा, अपने घरों से खदेरते जाना, घर - परिवार पीछे छूट जाना, अपनी जड़ों से उखड़ जाना, दंगो का शिकार हो जाना, अपनों से बिछड़ जाना, पागलों की तरह उनकी खोज करना और खोजते हुए पागल हो जाना शरणार्थियों की पीड़ा - वेदना और उनकी दुर्दशा शरणार्थी - शिविरों की ज़िन्दगी जीना अपना सब कुछ खोकर असहाय स्थिति में जीना और जीने के लिए अभिशप्त किया जाना आदि मौजूद है। यहाँ सोबती जी की बातों को आगे बढ़ाते हुए मैं मुक्तिबोध की कविता 'अंधेरे में' की इन पंक्तियाँ को जोड़ना चाहूँगी, "अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे/ उठाने ही होंगे।/तोड़ने होंगे मठ और गढ़ सब"।

लेखिका पुरानी यादों से इस कदर घिरी हुई है कि उसके सिवा उसके पास कुछ और बचा हुआ नहीं है। बची है तो केवल यादें जिन्हें वे बार - बार अपनी स्मृतियों में समेटती हैं। गुजरात की अपनी एक जातीय संस्कृति है जिसके टुकड़े - टुकड़े हो गये हैं। वे इन सब चीजों से उबड़ नहीं पाई हैं। वे कहती हैं कि पूरा देश उलझा हुआ है जातीय स्मृति की खलबली में,

“भरपूर फसलों वाले खेत! सदा - सदा हरियाली घटती न कभी पानी की, न धुँप की, न छाँह की। बस अब हमारा वतन है नहीं! मत देखो उधर! रह - रहकर वहाँ की बात मत सोचो। अब इस मोड़ से पीछे नहीं, आगे देखने का समय है। इस समय में खो गया है हमारा वो भूखंड, जिससे जुड़ा हमारा अतीत था, वजूद था। हमारी संज्ञा थी। उसे सियासत का भूचाल निगल गया है। जो ऊपर का है वह अब नीचे आ गया है, अब हम उस सीमांत के बाहर हैं; उस अनहोनी को अपने चित्तपट से मिटा दो। जाती सरकार ने सजा दी हमें और आती सरकार ने हमें से कर वसूली की”।²

हिन्दुस्तान जिंदाबाद!

पाकिस्तान पाएँदावाद!³

इसी तरह मुझे अरुंधती रॉय की हालिया उपन्यास 'AZADI FREEDOM . FASCISM . FICTION' में वो भारत के वर्तमान स्थिति को कुछ इस तरह बयां करती है - “The violence of inclusion and the

violence of exclusion are precursors of a convulsion that could alter the foundations of India and rearrange its meaning and its place in the world.”

संदर्भ सूची

- 1- गुजरात पकिस्तान से गुजरात हिन्दुस्तान , पृष्ठ सं .- १४
- 2- गुजरात पकिस्तान से गुजरात हिन्दुस्तान , कृष्णा सोबती , पृष्ठ सं .- १३४ , वही पृष्ठ सं .-१३५
- 3- आजकल, फरबरी, २०१९
- 4- आलोचना, त्रैमासिक, जनवरी - मार्च,२०१९
- 5- जुलाई - सितंबर. २०१९
- 6- कथादेश, मार्च, २०१९, कृष्णा सोबती विशेषांक
- 7- गुजरात पकिस्तान से गुजरात हिन्दुस्तान, कृष्णा सोबती
- 8- जनविकल्प -9, त्रिशुर, सितंबर - २०१९, कृष्णा सोबती विशेषांक
- 9- लेखक का जनतंत्र, कृष्णा सोबती
- 10- हंस, अप्रैल, २०१९, कृष्णा सोबती विशेषांक
- 11- FILMING THE LINE OF CONTROL, The INDO –PAK Relationship, The Cinematic lens Edited by- Meenakshi Bharat, Nirmal Kumar, Partition Dialogue: memories of a lost Home by Alok Bhatt Oxford India Paper back-P9
- 12- विभाजन - विकिपीडिया
- 13- विभाजन का गुनाहगार कौन ? - बीबीसी हिंदी
- 14- कृष्णा सोबती -जिन्होंने कभी अपने होने की माफी नहीं मांगी -बीबीसी हिंदी
- 15- कृष्णा सोबती इंटरव्यू, रेखता - पार्ट -१, २
- 16- THE WIRE
- 17- AZADI . FREEDOM . FASCISM . FICTION -ARUNDHATI ROY २०२१ Penguin Random House India

Macbeth : A Linguistic Tragedy

SHIKHA MISHRA

Research Scholar
Department of English

Reams have been written on the reasons behind the catastrophe of the tragic heroes, especially the Shakespearean ones. That Hamlet fell for his procrastination, Othello for his gullibility, Lear for his arrogance and Macbeth for his ambition is known to all. But in this paper I propose to prove that the setback of Macbeth is due to language. That is to say, it is a fatal linguistic miscalculation on the part of Macbeth that paves the way for his tragedy. Had Macbeth been a bit more sensible in dealing with language-both while speaking and spoken to he might have been able to avoid his doom. My paper seeks to explore how Macbeth falls prey to language.

Wherever a tragic hero falls we start hunting the reason behind it and if he is a Shakespearean one more intense the search is. Thus when Macbeth falls the more or less unanimous consensus is – Macbeth sinks for his ambition. But is it that simple? Ambition, even to a maximum level, is present in many, if not in all – do they all fall? There should not be any gainsaying that ambition, rather 'vaulting ambition' does play a crucial role in bringing about Macbeth's doom but what I propose to prove here is that the modus operandi of ambition in this play is language. That is to say, it is a fatal linguistic miscalculation on the part of Macbeth that paves the way for his tragic setback.

Linguistic miscalculation operates in two ways in the play. In the first case Macbeth misinterprets what is spoken to him by others [namely by the witches]. Secondly, he uses language as a means of deception. And apart from deceiving others, Macbeth's language acts as means of self-deception.

The very first scene of the play ends with the chorus of the three witches

Fair is foul , and foul is fair

Hover through the fog and filthy air

And it is from that we are hurled into a world into a world of linguistic to psychodrama. In this upside-down world the usual codes and meaning of language can, (as it will) at any moment, choke. Throughout the play often in his speeches "Macbeth finds his words leading him into unexpected areas . . . his syntax does not hold in check the confusion of his thoughts but generates new and disturbing thoughts. His words do not nail down single idea, but set up echoes and reverberations in which meaning slips away from the speaker or returns in new and unwelcome forms" (Mangan-194). Macbeth opens his lips for the first time saying:

So foul and 'fair' a day I have not seen

At his lips the day is 'fair' despite being 'foul', but at his heart it's all foul. What Macbeth brings for Duncan's own death. Macbeth, by this time, had already been fraught with the

murderous thought and this covert murder become overt only after a while when he gets startled at hearing that after the thane ship of Cawdor [2 with: All hail, Macbeth! hail to thee, Thane of Cawdor! (1.iii.51-52).

Whether or not Banquo knows it, we should not fail to perceive that Macbeth starts because at his heart he knows it full well that this fair he can achieve only through foul means. Thus even if the day is fair to Macbeth, it is fair only because of his foul thoughts- indeed foul is fair for him. This can be further proved if we relate this to those lines of Macbeth:

This supernatural soliciting
Cannot be ill cannot be good
If ill, why what it given meanest of success
If good why do I yield to that suggestion
Whose hurried image doth unfix my hair
Any make my seated heart knock at my ribs
Actually for Macbeth, good lies in bad, and
Nothing is but what is not
Just after this Macbeth says
If chance will have me king why chance
may crown me
without my stir

But this is half true even untrue. Though outwardly Macbeth preaches for no stirring, inwardly it is all stirring brainstorming about the murder. Again the witches, being snubbed by Banquo, prophesy about him.

1. Witch: Lesser than Macbeth, and greater
2. Witch: Not so happy yet much happier
3. Witch: Thou shalt get kings, though thou be none.

But Macbeth fails to see the inherent danger lurking for him in these lines. Rather, he believes what is most profitable for him to believe remaining blind to the other half of the prophecy which ultimately leads to his catastrophe. A few moments after Macbeth says to the witches

Stay you imperfect speakers, tell me more
By Sinel's death I know I am Thane of Glamis
But how of Cawdor. The thane of Cawdor lives,
A prosperous gentleman, and to be king
Stands not within the prospect of belief
No more than to be Cawdor

But this is also surface structure reality meant to hoodwink others (namely Banquo), and perhaps Macbeth himself also. May be one self of Macbeth is trying to hide his real motive from the other one. Actually, in the inmost cranny of his heart Macbeth has started very much believing the sayings of the witches and by these kinds of questions, rather ratiocinations, his real intention is to seek reinforcement for his purpose. Thus though in front of Banquo he calls the witches, imperfect speakers he wants them to be the most perfect ones. We may remember what Macbeth wrote to his wife in the letter.

They met me in the day of success, and I have learned by the perfect's report, they have more in them than mortal knowledge

And the tag, tell me more (stay, you imperfect speakers, tell me more) is crucial in this regard. The actual meaning of tell me more is tell something that will boost my (Macbeth's) thought of kingship. The real meaning of the prophecy becomes clear to Macbeth much later when he realizes that upon his head the witches placed a futile crown and put a useless scepter in his grasp which will be snatched away from his hand by Banquo's son. He comes to the shocking understanding that he has murdered noble Duncan and thereby bartered away his soul to the Devil only to make Banquo the progenitor of kings.

Upon my head they plac'd a fruitless crown

And put a barren sceptre in my gripe
Thence to be wrench'd with an unlineal hand
No son of mine succeeding. If't be so
For Banquo's issue have I fil'd my mind
For them the gracious Duncan have I murder'd
Put rancours in the vessel of my peace
Only for them and mine eternal Jewel
Given to the common Enemy of man,
To make them kings, the seed of Banquo Kings!

Again, typical is the place of language in this speech of Macbeth:

Had I but died an hour before this chance
I had liv'd a blessed time, for from this instant,
There's nothing serious in mortality;
All is but toys; renown, and grace, is dead;
The wine of life is drawn, and the mere lees
Is left this vault to brag of.

In the face value Macbeth uses language here to deceive others as observed by Bradley in his Shakespearean Tragedy that "this is meant to deceive" (p. 359). But at the same time he himself is deceived in the sense that he cannot perceive the real meaning of these words. And according to M. Murray, Macbeth here, "is become the instrument of, the equivocation of the fiend that lies like truth" (p. 332) In many a case what he says at the surface structure is constantly negated at the deep structure. After coming back from the front Macbeth says to Duncan:

our duties

Are to your throne and state, children and servants. Which do but what they should, by doing everything.

Safe toward your love and honor. (I. iv. 24-27)

All of us know what duty they (i.e. both Macbeth and lady Macbeth) did After a little while Macbeth says to Duncan.

Really, he did use it unusually well. Macbeth apologizes to Banquo for not being able to look after Duncan properly.

Being unprepared

Our will became the servant to defect. Which else should free have wrought.

Though in reality they were more than prepared. Again regarding the weird sisters he says to Banquo.

I think not of them:

Whether of not consciously. Macbeth's language caters to his innate evil. For example. in Act. I, Sc.viii Macbeth says to lady Macbeth.

We will proceed no further in this business.
He hath honour of me of late and I have bought
Golden opinion from all sorts of people.
Which would be worn now in their newest gloss.
Not cast aside so soon

Taken at face value it appears here that Macbeth becomes reluctant to murder Duncan for some reason or other. But in actually, through this kind of a speech, what he really wants is boost from his wife. Lady Macbeth has always performed the duty of the pacesetter for Macbeth and more importantly she has done so with the kind permission of Macbeth himself (for it is none but Macbeth who has given her occasion(s) for doing so). Thus we find her saying in reply.

Was the hope drunk
Wherein you dress yourself? Hath it slept since.
And wakes it now, to look so green and pale
At what it did so freely? From this time
Such I account they love. Art thou afraid
To be the same in thine own act and valour
As thou art in desire? Wouldst thou have that
Which thou esteems the moment of life
And live a coward in thine own esteem.
Letting I dare not wait upon I would
Like the poor cat I;th adage?
Or, a little later:
What beast was't then
That made you break this enterprise to me?
When you durst do it, then you were a man
And, to be more than what you were, you would
Be so much more the man. Nor time, nor place,
Did then adhere and yet you would make both
They have made themselves, and that their fitness
now
Does unmake you. I have given suck, and know
How tender tis to love the babe that milks me
I would, while it was smiling in my face,
Have pluck'd my nipple from his boneless gums,
And dash'd the brains out, had I so sworn
As you have done to his.
Still Macbeth says
If we should fail

In reality, what Macbeth wants from his wife in answer is the final assurance that they would never fail at any cost. Thus he gets from lady Macbeth.

screw your courage to the sticking place And we will not fail

Throughout the play rules of language are always at mess. Along with Macbeth, language poses a problem for others as well. 'Brave' Macbeth cannot pronounce 'murder' (before the perpetration of it) even to himself.

If twere done when tis done, then 'twere well
It were done quickly
Macbeth tries to manage it with it just after murdering Duncan he says
I have done the deed

or

To know my deed were best not know myself

Macduff also cannot utter murder – thus after his detection of Duncan's killing he seeks refuge in a sort of literalism.

O honor! horror! horror!
Tongue not heart cannot conceive nor name thee
Or, a little later when he says to Macbeth and Lennox.
Approach the chamber, and destroy your sight
With a new Gorgon – Do not do me speak
See, and then speak yourselves
Even the witches answer Macbeth that they do
A deed without a name

When Rosse breaks the news to Macduff the castle is 'surprised' and his wife and babes are savagely slaughtered he goes dumb with grief. Malcolm wants him to give his sorrow a tongue lest there is an emotional breakdown. Thus we find him persuading Macduff.

Merciful Heaven
What, man, never pull your hat upon your brows
Give sorrow words; the grief that does not speak
Whispers to your fraught heart and bids it break

Again when Rosse asks: Is't known, who did this more than bloody deed. Macduff answers. Those that Macbeth hath slain. In the face value it refers to the two guards of Duncan but actually it is Macbeth himself and by extension lady Macbeth as well whom Macbeth murders. We may remember those lines of Macbeth. Glamis hath murdered sleep, and therefore Cawdor/ Shall sleep no more, Macbeth shall sleep no more.

Even lady Macbeth, who emerges quite a defiant one, at least at the pre murder (that of Duncan) phase, does not name murder.

Or,
Had he not resembled
My father as he slept, I had done't
Or,
These deeds must not be thought
After these ways...
Or,
A little water clears us of this deed
Or,
Things without all remedy
Should be without regard: what's done is done

She doesn't even utter blood in her conscious moments.
Go get some water
And wash this filthy witness from your hand
Or,
My hands are of your colour, but I shame
To wear a heart so white

But this suppressed blood oozes out at the sleep walking scene when the consciousness is suspended.

Here's the smell of the blood still: all the perfumes of Arabia will not sweeten this little hand.

From the very outset of the play to make sense is the problem as far as language is concerned. Third witches greeting of Macbeth as the future king of Scotland [All hail, Macbeth. That shall be king hereafter (I,iii50)] first sets off the snowball rolling since it leaves a trail of blood being it. Construction remains Macbeth's Achilles' heel all through which ultimately paves the way for his fall. Some other instances in this regard that should not evade mentioning are the prophecies by the apparitions created by the witches. The second apparition, in the form of a bloody child, tells Macbeth; be bloody, bold and resolute laugh to scorn.

The power of man for none of woman born
Shall harm Macbeth

Macbeth ponders about none leaving aside harm while the line may also mean that somebody will harm Macbeth and he will not be woman born meaning harm will be there. Only a little later, the third apparition, that of a crowned child with a tree in his hand, says to Macbeth

Be lion mettled, proud and take no care
Who chafes, who frets, or where conspirers are
Macbeth shall never vanquished be until
Great Birnam wood to high Duns inane hill
Shall come against him.

Here also Macbeth is obsessed with never vanquished be ignoring until where it may also mean that Macbeth will definitely be vanquished until something happens – that is to say, his defeat is only subject to time and certain factors, but defeat will be there. Macbeth naturally taken these a some impossible propositions. How can one be not of woman born? Or how can a wood move? So he conclude.

That will never be

Thus we find Macbeth more than glad to believe that he will remain invincible till the end. But the treacherous language has traps that evade him and he comes to the ghastly understanding of them only when all is lost. He puts his trust in one interpretation of their words, and is killed by another. Actually the pulverization of meaning that starts at the very onset of the play fair is foul, and foul is fair

Tomorrow, and tomorrow, and tomorrow
Creeps in this petty pace from day to day
To the last syllable of recorded time
And all our yesterdays have lighted fools

The way to dusty death. Out out brief candle
Lives but a waling shadow a poor plays
That struts and frets his hour upon the stage
And then is ehard no more, it is a tale
Told by an idiot full or sound and fury
Signifying nothing

Infact for Macbeth all meaning is lost now. Throughout the play he has been seeking desperately to sense the predictions. But in vain. Meaning is, rather has, reduced him to naught so much so that life. Itself has become meaningless to him. Told by an idiot... Signifying nothing). Ascending the throne of Scotland by murdering Duncan, Macbeth was out to duild a 'tale' of his own but in the ultimate reality it became 'nothing' for him. When only after a little while it transpires that each soldier of Malcolm's army is moving towards Dunsinane castle with a cut bough in front of him, the real meaning of the prophecy becomes clear to Macbeth. This is how Birnam wood can move towards Dunsinane hill. In actuality, it is a masterly martial move on the part of Malcolm meant to 'shadow the numbers of his army and thereby make discovery err which is, in modern terminology known as camouflaging. Again, Macduff's birth by Caesarian section is referred to as his not being born of woman. Thus the apparition of Macduff in the form of a bloody child (the second apparition) merges with the naked new born babe of Macbeths that strides the blast and ultimately with in vladuff the instrument of revenge on Macbeth. The irony is, even if Macbeth understands the true import of the prophecies, it is too late, And the coincidence is also interesting – when Macbeth is musing on the meaninglessness of life, the meaning construed (through wrongly) by him out of the auguries, starts crumbling as it is at this instant that the messenger brings the news of the coming of Birman wood towards the Duns inane hill.

While showing the apparitions to Macbeth the witches do deliberately silence Macbeth. The first witch tells Macbeth: Hear his speech, but say thou naught. And all of them warn him: Listen, but speak not to Again we should not overlook that vital question of Macbeth to the witches tell me (if your art can tell so much) shall Banquo's issue ever Reign in this kingdom.

The unanimous answer to this question was:

Seek to know no more

As far as language is concerned this could well have been the last warning to Macbeth. Though there are many as five linguistic items in this answer, the upshot of this fine is simply naught as this is no answer at all. The witches deliberately deny any answer to Macbeth since his question demands a yes no type answer and no mystery could be created with them. But their silence is indeed more eloquent than tongue – still Macbeth fails to follow it. Thus, "looked at in one way, in fact, the entire action of the play is founded upon the slipperiness of language"

Last but not least, the main challenge before Macbeth is to solve the riddles thrown to him by the witches. Mention must be made of Hecate's censure to her subordinates.

How did you dare

To treaded and traffic with Macbeth

In riddles, and affairs of death...

Macbeth was to make sense of these riddles that are nothing if not linguistic puzzles. Buthe could not penetrate them and hence the calamity. Thus what emerges instrumental in Macbeth fall is language.

Works Cited

1. Bradley, A.C. Shakespearean Tragedy : Lectures on Hamlet, Othello, King Lear, Macbeth London: Macmillan & Co.Ltd. 1956
2. Mangan, Michael. A Preface to Shakespeare's Tragedies. 1991; Delhi: Pearson Education, First Indian Reprint, 2003.
3. Murry, John Middleton. Shakespeare. 1936
4. London: Jonathan Cape. 1959
5. Shakespeare, William. Macbeth. (Ed.) Kenneth Muir London: Methuen & Co. Ltd. 1951. Surrey: Thomas Nelson & Sons Ltd. 1997.

जल संकट और भारत

सत्य बहादुर सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर

मध्य/आधुनिक इतिहास विभाग

महात्मा गांधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय

फतेहपुर, उ०प्र०

सारांश :

जल की उपादेयता को ध्यान में रखकर यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम न सिर्फ जल का संरक्षण करें, बल्कि उसे प्रदूषित होने से बचाए। आबादी के लिहाज से विश्व का दूसरा सबसे बड़ा देश भारत भी जल संकट से जूझ रहा है। वर्तमान में 20 करोड़ भारतीयों को शुद्ध पेय जल नसीब नहीं हो पाता है। देश की आबादी प्रतिवर्ष 1.5 प्रतिशत बढ़ रही है। ऐसे में वर्ष 2050 तक भारत की जनसंख्या 150 से 180 करोड़ के बीच पहुंचने की सम्भावना है। अतः ऐसे में जल की उपलब्धता को सुनिश्चित करना कितना दुरुह होगा समझा जा सकता है। आंकड़े बयां करते हैं कि स्वतंत्रता के बाद प्रति व्यक्ति पानी की उपलब्धता में 60 प्रतिशत की कमी आई है।

जल संकट से निपटने के लिए कुछ सुझाव निम्न हैं :-

स्वच्छ जल का मौलिक अधिकार

जल से सम्बंधित जागरूक पहल -

- वर्ष 2003 को संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय स्वच्छ जल वर्ष घोषित किया गया था।
- वर्ष 1981-91 तक संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा यह अन्तर्राष्ट्रीय पेयजल आपूर्ति एवं स्वच्छ जल दशक घोषित किया गया था।?
- वर्ल्ड वॉटर फोरम के क्योटो महाधिवेशन में 21वीं सदी को जल शताब्दी के रूप में मनाने की घोषणा की गई।
- वर्ष 2013 अन्तर्राष्ट्रीय जल सहयोग वर्ष के रूप में मनाया जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र सहस्राब्दी विकास लक्ष्य के अनुरूप

विशेषज्ञों के अनुसार

वर्ष 2030 तक के ग्लेशियर काफी अधिक सिकुड़ सकते हैं। इस तरह हमें जल क्षति भी होगी पर्यावरण संरक्षण के लिये हमें वानिकी को नष्ट होने से बचाना होगा।

अतः हमें पानीके कुशल उपयोग पर ध्यान केन्द्रित करना होगा। जल वितरण में असमानता को दूर करने के लिये जल कानून बनाने होंगे। भू जल के दोहन को रोकने के लिये भी कानून बनाने होंगे।

प्रस्तावना

अप्सु अंतः अमृतं, अप्सु भेषजं।

ऋग्वेद में जल को अमृत के समतुल्य बताते हुए कहा गया है - आधारभूत पंचतत्वों में से एक है। जल हमारे जीवन का आधार है। जल के बिना जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। यदि जल न होता तो सृष्टि का निर्माण भी सम्भव न होगा। यही कारण है कि यह एक ऐसा प्राकृतिक

संसाधन है जिसका कोई मोल नहीं है। जीवन के लिये जल के महत्व को इसी से समझा जा सकता है कि बड़ी बड़ी सभ्यताएं नदियों के तट पर ही विकसित हुईं और अधिकांश प्राचीन नगर नदियों के तट पर ही बसे। जल की उपादेयता को ध्यान में रखकर यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम न सिर्फ जल का संरक्षण करें बल्कि उसे प्रदूषित होने से भी बचाएं इस सम्बंध में भारत में जल संरक्षण की एक समृद्ध परम्परा रही है और जीवन के बनाये रखने वाले कारक के रूपमें हमारे वेद शास्त्र जल की महिमा से भरे पडे है।

आबादी के लिहाज से विश्व का दूसरा सबसे बड़ा देश भारत जल संकट से जूझ रहा है। यहां जल संकट की समस्या विकराल हो रही है। न सिर्फ शहरी क्षेत्रों में बल्कि ग्रामीण अंचलों में भी जल संकट बढ़ा है। वर्तमानमें 20 करोड भारतीयों को शुद्ध पेय जल नसीब नहीं हो पाता है। उ०प्र०, म०प्र०, गुजरात, राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, तमिलनाडु और केरल राज्यों में जहां पानी की किल्लत बढी है। वहीं राज्यों के मध्य पानी से जुडे विवाद भी गहराए है। भूभीय जल का अधिक दोहन होने के कारण धरती की कोख सूख गई है। जहां मीठे पानी की प्रतिशत कम हुआ है। हवी जल की लवणीयता बढ़ने से भी समस्या बढी है। जल के अंधाधुंध दोहन से पारिस्थित की असन्तुलन भी बढा है। जल संसाधनों का कुप्रबन्धन इस देश की जलापूर्ति को बदतर करने में अहम योगदान दे रहा है। जलवायु परिवर्तन से यह संकट कई गुना ज्यादा बढ़ सकता है।

वृक्षों की बेरहमी से कटाई, वर्षा में भी कमी या असमान वर्षा, बढ़ता शहरीकरण और औद्योगीकरण अधिक उर्जा की मांग, कृषि में जल का अधिक इस्तेमाल भोगवादी जीवनशैली, जल जैसे महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधनों के प्रति हमारी संवेदनशीलता व स्वार्थी प्रवृत्ति भूगर्भीय जल का अनियंत्रित दोहन तथा इस पर बढ़ती हमारी निर्भरता पारम्परिक जल स्रोतों व जल तकनीकों की उपेक्षा जल संरक्षण और प्रबन्धन की उन्नत व उपयोगी तकनीकों का अभाव जल शिक्षा का अभाव भारतीय संविधान में जल के मुद्दे को राज्य सरकारों के अधिकार क्षेत्र में रखा जाना, निवेश की कमी, तथा सुनिश्चित योजनाओं का अभाव आदि अनेक ऐसे कारण है जिनकी वजह से भारत में जल संकट बढ़ा है।

भारत में जनसंख्या विस्फोट ने जहां अनेक समस्याएं पैदा की है वही पानी की किल्लत को भी बढ़ाया है मौजूदा समयमें देश की आबादी प्रतिवर्ष 1.5 प्रतिशत बढ़ रही है। ऐसे में वर्ष 2050 तक भारत की जनसंख्या 150 से 180 करोड के बीच पहुंचने की सम्भावना है। अतः ऐसे में जल की उपलब्धता को सुनिश्चित करना कितना दुरूह होगा समझा जा सकता है। आंकडे बयां करते है कि स्वतंत्रता के बाद प्रति व्यक्ति पानी की उपलब्धता में 60 प्रतिशत की कमी आई है।

भारतमें जल की उपलब्धता

समूचे विश्व में जल उपभोग में भारत का स्थान दूसरा है। पहले स्थान पर चीन है। भारत के लोग जल उपभोग के लिए वर्षा जल, भूगर्भीय जल, नदियों व जल के अन्य परम्परागत स्रोतों पर निर्भर रहते है। वर्षा जल और हिमपात जल भारत में जल के प्रमुख स्रोत है। सालाना सकल वर्षा जल 4000 अरब घन मीटर है। जहां चेरापूँजी में 11000 कि०मी० वार्षिक वर्षा होती है। वहीं राजस्थान के जैसलमेर जैसे क्षेत्रों में वर्षा का वार्षिक औसत मात्र 100 से 120 मिमी० के बीच रहता है। यह सच है कि मेघ वर्षा के रूप में हमें अच्छी मात्रा में जल राशि प्रदान करते है हमारे यहां अमेरिका की औसत वर्षा से छः गुना अधिक वर्षा होती है। तथापि इसके अनिश्चित वितरण और सही प्रबन्धन न हो पाने के कारण हमें जल संकट से जूझना पड़ता है। जो जल राशि हमें एक वर्ष में वर्षा से मिलती है। उसका मात्र 28 प्रतिशत ही हम इस्तेमाल कर पाते है। भारत में नदियां भी जल का प्रमुख स्रोत है किन्तु देश की 90 प्रतिशत से भी अधिक नदियों ऐसी है जिनमें बहाव रूपी जल की उपलब्धता 4 माह तक ही रहती है। देश में 15 मुख्य वेसिनों में जल के अप्रवाह का क्षेत्रफल 20,000 वर्ग किमी० से ज्यादा है। 45 मध्यम और 120 से भी ज्यादा ऐसी लघु नदी क्षेत्र है। जिनका जल प्रवाह क्षेत्रफल 2000 से 20000 वर्ग कि०मी० है। देश की 12 प्रमुख नदियों के जल ग्रहण क्षेत्र को यदि मिला दिया जाए तो यह लगभग 2528 लाख हेक्टेयर जल प्रवाह क्षेत्र हो सकता है।

केन्द्रीय जल आयोग के आंकड़ों के अनुसार भारत में प्राकृतिक जल संसाधन के रूप में नदियों का वार्षिक अप्रवाह तकरीबन 1869 घन किमी⁰ है। इससे 690 घन किमी⁰ जल का ही उपयोग हम कर पाते हैं। परम्परागत जल स्रोतों की उपेक्षा एवं उचित रख रखाव न होने के कारण भी दयरा सिकडा है। इसके बावजूद आज देश की 18.2 प्रतिशत आबादी जल के लिये कुआं पर व 1.2 प्रतिशत आबादी अन्य पारम्परिक जल स्रोतों पर निर्भर करती है। भारत में 19.2 करोड़ परिवारों में से 7.5 करोड़ परिवार ही ऐसे हैं जिन्हें घर के भीतर पेयजल उपलब्ध है। 8.5 करोड़ परिवारों को परिसर के निकट तथा 3.2 करोड़ परिवारों को दूर से पानी लाना पडता है। ग्रामीण क्षेत्रों में जहां यह दूरी 500 मीटर से भी अधिक है। वहीं शहरी क्षेत्रों में 1100 मीटर या उससे अधिक है।

हमारे देश में 170 करोड़ घन मीटर भू-जल का भण्डार है। भू जल पर हमारी निर्भरता कितनी अधिक बढ़ चुकी है इसका पता इसी से चलता है कि देश में 80 प्रतिशत से भी ज्यादा पानी की आपूर्ति इसी स्रोत से होती है। पूरे देश में उपलब्ध कुल भूजल की मात्रा 931.88 बिलियन क्यूबिक मीटर है। इसमें से 360.80 बिलियन क्यूबिक मीटर जल औद्योगिक तथा घरेलू उपयोगों के लिये सुरक्षित रखा जाता है। जल के अधिक दोहन से औसतन सालाना तीन या चार मीटर जल नीचे जा रहा है। जबकि पुर्नभरण का प्रतिशत दोहन की तुलना में बहुत कम है। जल संकट से जुझ रहे चीन जैसे कई विकासशील देशों की तुलना में हमारे देश में भूजल के लिये कोई विशेष कानून नहीं है। कोई भी जल का दोहन कर सकता है जब तक कि उसकी जमीन के नीचे से पानी निकलता रहे।

भारत में जल की खपत

एक भारतीय व्यक्ति प्रति वर्ष औसतन 470 घनमीटर जल का उपयोग करता है वर्ष 1955 में मीठे पानी की प्रति व्यक्ति वार्षिक उपलब्धता 5277 घन मीटर थी जो कि वर्ष 1990 में घटकर 2464 घनमीटर रहा गई। वर्तमान में यह प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष 2000 घन मीटर हो चुकी है। वर्ष 2025 तक हमारे देश में प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष जल की उपलब्धता घटकर 1000 घन मीटर होने की सम्भावना है। जिसे वैज्ञानिक भीषण जल संकट मान रहे हैं। जैसे दिल्ली में प्रतिदिन 650 करोड़ गैलन पानी की आवश्यकता होती है। किन्तु 400 करोड़ गैलन ही उपलब्ध हो पाता है। इसी तरह मुम्बई में रोजाना 750 करोड़ गैलन पानी की आवश्यकता होती है। किन्तु 530 करोड़ गैलन पानी ही उपलब्ध हो पाता है।

जल संरक्षण एवं संचय के उपाय

जल जीवन का आधार है और यदि हमें जीवन को बचाना है तो हमें जल संरक्षण और संचय के उपाय करने होंगे। जल की उपलब्धता घट रही है और मारामारी बढ़ रही है। ऐसे में जल संकट का सही समाधान खोजना प्रत्येक मनुष्य का दायित्व बनता है। यह हमारी राष्ट्रीय जिम्मेदारी भी बनती है और हम अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय से भी ऐसी ही जिम्मेदारी की अपेक्षा करते हैं। जल के स्रोत सीमित हैं। नये स्रोत हैं नहीं ऐसे में जल स्रोतों को संरक्षित रखकर एवं जल का संचय कर हम जल संकट का मुकाबला कर सकते हैं। वास्तव में यदि वर्षा जल का समुचित संग्रह हो सके और जल की प्रत्येक बूंद को अनमोल मानकर उसका संरक्षण किया जाय तो वैश्विक जल संकट का समाधान ढूंढा जा सकता है। जल संकट से निपटने के लिए कुछ सुझाव निम्न हैं।

राष्ट्रीय जल अभियान

भारत सरकार के केन्द्रीय मंत्रिमण्डल द्वारा 6 अप्रैल 2011 को राष्ट्रीय जल अभियान को मंजूरी दी गई थी। यह भारत का एक महत्वाकांक्षी अभियान है जिसके तहत मुख्य रूप में निम्नांकित 5 लक्ष्यों पर ध्यान केन्द्रित किया गया है—

- सार्वजनिक क्षेत्र में जल का एक व्यापक डाटा बेस तैयार करना।
- जल संसाधनों पर जलवायु परिवर्तन का आंकलन करना।
- आम जनता और राज्यों को जल संरक्षण के लिये प्रेरित व प्रोत्साहित करना।

- जल संवयन हेतु जलाशयों के स्तर को बढ़ाना।
- जल के उपयोग की प्रभाव क्षमता को 20 प्रतिशत तक बढ़ाना।

यह अभियान राष्ट्रीय जल मिशन, जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्य योजनाके अन्तर्गत कार्यान्वित होने वाले आठ अभियानों में से एक है।

स्वच्छ जल का मौलिक अधिकार

जल की उपलब्धता को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा स्वच्छ पेयजल और साफ सफाई को मौलिक अधिकार के तौर पर मान्यता देने सम्बंधी प्रस्ताव 28 जुलाई 2010 को पारित किया गया। इस प्रस्ताव में कहा गया कि स्वच्छ एवं सुरक्षित पेयजल और साफ सफाई बुनियादी मानवाधिकार है। जो जीवन के अधिकार का उपयोग करने के लिए जरूरी हैं यह प्रस्ताव वोलिविया द्वारा पेश किया गया था इसमें 33 अन्य देशों के भी हस्ताक्षर थे। 121 देशों के समर्थन से यह प्रस्ताव पारित हुआ।

जल वर्ष

जल सम्बंधी मुद्दों पर विशेष रूप से ध्यान देने और इनसे निपटने वाली नीतियों तथा कार्यक्रमों के सफल कार्यान्वयन तथा पूरे देश में व्यापक रूप से जागरूकता कार्यक्रम चलाने के उद्देश्य से वर्ष 2007 को जल वर्ष घोषित किया गया है।

- जल की हर बूंद से ज्यादा फसल और ज्यादा आय को बढ़ावा देने के लिये 5000 गांवों में कृषक सहभागिता कारवाई अनुसन्धान कार्यक्रम चलाया गया।
- इलेक्ट्रॉनिक प्रिन्ट मीडिया के माध्यम से पानी की इस्तेमाल कर्ताओं में जानकारी व्यापक प्रसार करना।
- जल सम्बंधी तकनीकी तथा प्रबन्ध व्यवस्था मुद्दों पर कार्यशालाओं सम्मेलनों का आयोजन।
- उत्सवों मेलों प्रशिक्षण कार्यक्रमों, जन जागरूकता कार्यक्रमों आदि का प्रचार करना।
- हर पानी पंचायत में जल संसाधनों से प्रशिक्षण तथा सर्वश्रेष्ठ पानीपंचायत के लिये पुरस्कार का गठन किया जाए।

वर्षा जल प्रबन्धन और मानसून प्रबन्धन को बढ़ावा दिया जाय ओर इससे जुड़े गोध कार्यो को प्रोत्साहित किया जाये। जल शिक्षा को अनिवार्य रूप से पाठ्यक्रम में जगह दी जायें। ऐसी विधियां व तकनीकें विकसित करना होगी जिनसे लवणीय और खारे पानी को मीठा बनाकर उपयोग में लाया जा सके। आवश्यकता को देखते हुये जल से सम्बंधित कुछ जागरूक पहल की जा सकती है।

जल से सम्बन्धित जागरूक पहल

22 मार्च को संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा विश्व जल दिवस मनाया जाता है। वर्ष 2003 के दिसंबर माह में संपन्न हुई राष्ट्र की 58 वीं महासभा में 2005 से 2015 के अन्तर्राष्ट्रीय दशक के लिये जीवन के लिये जल विषय पर सहमति बनी थी, जिसका श्रीगणेश वर्ष 2005 में जल दिवस के रूप में किया गया।

- वर्ष 2003 को संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय स्वच्छ जल वर्ष घोषित किया गया था।
- वर्ष 1981-91 तक संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा यह अन्तर्राष्ट्रीय पेयजल आपूर्ति एवं स्वच्छ जल दशक घोषित किया गया था।
- वर्ल्ड वॉटर फोरम के क्योटो महाधिवेशन में 21वीं सदी को जल शताब्दी के रूप में मनाने की घोषणा की गई।

- वर्ष 2003 अन्तर्राष्ट्रीय जल सहयोग वर्ष के रूप में मनाया जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र सहस्राब्दी विकास लक्ष्य के अनुरूप।

निष्कर्ष

जल संरक्षण के लिये पर्यावरण संरक्षण जरूरी है। जब पर्यावरण बचेगा तभी जल बचेगा। पर्यावरण असन्तुलन भी जल संकट का एक बड़ा कारण है। इसे इस उदाहरण से समझ सकते हैं। हिमालय के ग्लेशियर मीठे पानी के अच्छे स्रोत हैं ये बिगड़ते पर्यावरण के कारण सिकुड़ने लगे हैं।

अतः हमें पानी के कुशल उपयोग पर ध्यान केन्द्रित करना होगा। जल वितरण में असमानता को दूर करने के लिये जल कानून बनाने होंगे। भू जल के दोहन को रोकने के लिये भी कानून बनाने होंगे।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अमित कुमार— पर्यावरण अध्ययन विश्व भारतीय पब्लिकेशन, सन् 2006
2. डॉ० आलोक बंसल— 'पर्यावरण एवं पर्यावरणीय संरक्षण' सब लाइन पब्लिकेशन, सन् 2007
3. शुकदेव प्रसाद— 'पर्यावरण संरक्षण' साहित्य भण्डार, सन् 1995
4. दिलीप कुमार माकण्डेय— 'प्राकृतिक पर्यावरण प्रदूषण एवं नियंत्रण' धनकड पब्लिकेशन।
5. नीलिमा राजवंदा— 'पर्यावरण (प्रथम खण्ड)' ए०पी० एच० पब्लिकेशन कारपोरेशन।
6. सक्सेना, डॉ० हरिमोहन— 'पर्यावरण एवं परिस्थितियों' उ०प्र० हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ।
7. रघुवंशी डॉ० अरुण, डॉ० चन्द्रलेखा— 'पर्यावरण तथा प्रदूषण' हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल।
8. डॉ० रतन जोशी— 'पर्यावरण अध्ययन' साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
9. इराक भरुचा— 'पर्यावरण अध्ययन' (2010) ओरियन्ट लांगमैन प्राइवेट, 1124 आसफ अली रोड, नई दिल्ली।
10. Available at : bharat.gov.in/sectors environment./cil
11. Available at : in jagran.yahoo.com/news 5 june 2013/opinion/gene
12. Available at: india year book 2012.gov.in/sectors environment./cil

भारत में बालश्रम एक गंभीर समस्या

श्रीमती नेपाली

अस्सिस्टेन्ट प्रोफेसर

(Law Department)

श्रीवाण्य डिग्री कॉलेज, अलीगढ़

प्रस्तावना

बालश्रम क्या है जो बच्चे 14 वर्ष से कम आयु के होते हैं उनसे उनके बचपन की खुशियां छीनकर उन्हें काम में लगा कर मानसिक सामाजिक व शारीरिक रूप से प्रताड़ित कर बहुत कम मेहनताने पर काम पर लगाकर उनका शोषण करना और उनकी खुशियों को श्रमिक के रूप में बदल देना ही बालश्रम कहलाता है भारत के अनुच्छेद-24 के अनुसार 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों से मजदूरी जैसे-कारखाना, होटल, ढाबे, चाय की दुकान, घरेलू नौकर आदि के रूप में काम कराना बालश्रम की श्रेणी में आता है यदि कोई व्यक्ति 14 वर्ष से नीचे के बच्चों से काम करवाना पाया गया तो वह बालश्रम निवारण अधिनियम के तहत दंडित किया जाएगा क्योंकि आज की वर्तमान रिपोर्ट के आधार पर 35 मिलियन से भी ज्यादा बच्चे बालश्रम कर रहे हैं सबसे ज्यादा उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान में बालश्रम कर रहे हैं यह स्थिति देखकर बहुत निराशा महसूस होती है कि जहां इस कदर बालश्रम है उस देश का विकास क्या होगा यह बालश्रम भविष्य में एक गंभीर समस्या का रूप धारण कर लेगा यदि ऐसा ही चलता रहा। क्योंकि अधिनियम बनने के बावजूद भी कोई खास रोक थाम दिखाई नहीं दे रही है जो वास्तव में निराशा का भाव देती है। अब प्रश्न यह आता है कि बालश्रम के क्या कारण हैं 14 वर्ष से नीचे के बच्चे आखिर मजदूरी करने के लिए क्यों विवश है उसके मुख्य कारण निम्न प्रकार हैं।

1. गरीबी

बाल मजदूरी का मुख्य कारण गरीबी है जिन बच्चों के यहां पीढ़ी दर पीढ़ी गरीबी चलती आ रही है बच्चे भी बालश्रम करने को मजबूर हैं क्योंकि उनके दादा-दादी, माता-पिता के पास कोई साधन ऐसा नहीं है कि वे इस बालश्रम से निजात पा सकें। क्योंकि उनके माता-पिता के माता-पिता बालश्रम करते थे फिर उनके बच्चे करने लगे क्योंकि वे बच्चों का भरण पोषण करने में सक्षम नहीं है और इसी असक्षमता के कारण वह अपने बच्चों को भी बालश्रम में लगा देते हैं जिससे बच्चे भी बाल श्रम के अलावा अन्य कुछ भी सोचने की क्षमता नहीं जुटा पाते हैं सिर्फ और सिर्फ एक मजदूर का जीवन गुजारने के लिए विवश रहते हैं इसलिए इस बात को कहने में कोई शर्म की बात नहीं है कि बालश्रम देश के लिए एक गंभीर समस्या है।

2. अशिक्षा

अब बात आती है कि बालश्रम में शिक्षा भी एक दूसरा मुख्य कारण है क्योंकि जो व्यक्ति शिक्षित नहीं है वे मजदूरी के अलावा कुछ भी ना तो सोच पाता है और ना ही उसका नजरिया बदलता है शिक्षित न होने के कारण उसमें जागरूकता की कमी रहती है वह दो जून की रोटी के अलावा और कोई बात नहीं सोचता है जिस कारण वह न तो स्वयं मजदूरी से निकल पाता है और ना ही अपने बच्चों को बालश्रम से बचा पाता है बालश्रम को बढ़ाने में अहम कारण अशिक्षा है जो शिक्षित नहीं है उसके साथ गूंगे वाली कहावत ठीक प्रतीत होती है कि गूंगा आदमी क्या जाने गुड का स्वाद, गूंगा व्यक्ति स्वाद का वर्णन नहीं कर सकता है। ठीक इसी प्रकार अशिक्षित व्यक्ति का मानसिक विकास भी नहीं हो पाता है और अशिक्षा के कारण न तो वह स्वयं बालश्रम से निजात पाता है और न ही अपने बच्चों को शिक्षा दिलवा पाता है।

3. अत्यधिक जनसंख्या

बालश्रम का तीसरा मुख्य कारण अत्यधिक जनसंख्या भी है उसके पीछे एक कारण है यदि कोई चीज कम हो तो उसका आनंद कम व्यक्तियों को ही प्राप्त हो सकता है बाकी शेष व्यक्ति उस से महरूम रह जाते हैं इस तरह से जब बच्चे ज्यादा होंगे उनके भरण-पोषण में दिक्कत आएगी और उस दिक्कत को दूर करने के लिए बच्चों से बालश्रम करायेगा और यदि बच्चा बालश्रम नहीं करेगा तो उसे भोजन, कपड़ा आदि कुछ भी नहीं मिल पायेगा। वह भूखा वह नंगा ही मर जाएगा क्योंकि जिन माता पिता ने उसको जन्म दिया है वे मजदूर हैं और 5-6 बच्चे उनके द्वारा पैदा किये गये हैं। मजदूरी केवल 300/- रुपये रोज है तो ऐसी स्थिति में भरण-पोषण, दवाई आदि के खर्च का भी गुजारा होना संभव नहीं है। इस कारण यह बात सही है कि अत्यधिक जनसंख्या भी बालश्रम का मुख्यतः तीसरा कारण है जिसका असर आज देश में देखने को मिल भी रहा है।

4. वातावरण

जैसा कि हम वातावरण शब्द से सभी पूरी तरह से वाकिफ है वातावरण जैसा होता है वैसे ही दिल व दिमाग कार्य करना शुरू कर देता है आपने आम भाषा में यह कहते हुए सुना होगा कि इसकी तो संगत ही खराब थी तभी तो यह ऐसा हो गया इस तरह से जैसे परिवेश बच्चे माता-पिता के साथ देखते हैं वैसे ही सीखते हैं इसी तरह से जो बच्चे मजदूर माता-पिता के यहां पैदा होते हैं और वे अपने माता-पिता को मजदूरी करते देखते हैं तो वह भी केवल मजदूरी तक की सोचते हैं उससे ज्यादा उनका विकास नहीं हो पाता है यदि कोई बच्चा अलग सोचता है या माता-पिता बच्चे को कुछ अच्छा बनाना चाहते हैं तो वे भी बहुत काम मात्रा में पाए जाते हैं इसीलिए यह कहा जाता है कि इसका वातावरण रहन-सहन अच्छा नहीं रहा है वातावरण भी बहुत हद तक बालश्रम की सीमा को तय करता है।

5. बेरोजगारी

बालश्रम को बढ़ावा देने का एक कारण बेरोजगारी भी है क्योंकि जिन बच्चों के माता-पिता बेरोजगार होते हैं और बच्चों का बचपन अभाव व तंगी में गुजरता है तो वह बच्चे छोटे-छोटे रोजगारों में लिप्त होने लगते हैं और जब उनको छोटे कार्यों से रुपये मिलने लगते हैं तो फिर वे कभी भी उस बालश्रम को नहीं छोड़ पाते हैं इसलिए माता-पिता की बेरोजगारी के कारण भी बालश्रम बढ़ता है। आज वर्तमान में बेरोजगारी के बढ़ने के कारण बालश्रम को बढ़ावा मिल रहा है।

6. पिता का नशा करना जुआ आदि खेलना

पिता का नशा करना वह जुआ खेलना भी बालश्रम को बढ़ा रहा है जिन बच्चों के पिता नशा करते हैं या जुआ खेलते हैं वे पिता बच्चों व उनकी माताओं के साथ मारपीट करते हैं और उनका भरण पोषण भी नहीं करते हैं ऐसी स्थिति में बच्चे अपना पेट पालने के लिए कारखानों में, चाय की दुकानों पर, एवं घरों में कार्य करने पर व होटलों पर, ढाबों आदि पर कार्य करना शुरू कर देते हैं और बालश्रम में लग जाते हैं और बचपन के आनंद से सदैव के लिए वंचित रह जाते हैं इसलिए यह कहना बिल्कुल सही है कि जिन बच्चों का पिता नशा करता है और जुआ खेलता है वह बच्चे निश्चित रूप से बालश्रम करने को मजबूर हो जाते हैं इस तरह के पिता अपनी जिम्मेदारी से भागते हैं यह बच्चे बालश्रम के शिकार होते हैं उनका बचपन छिन जाता है और अभाव में अच्छा खाना, अच्छी शिक्षा, अच्छा पहनना ओढ़ना नहीं मिल पाता है। सिर्फ उपेक्षा का सामना करना पड़ता है।

7. संपन्न वर्ग/निर्धन वर्ग

इस समाज में संपन्न वर्ग वह निर्धन वर्ग दो तरह के वर्ग होते हैं एक वर्ग के बच्चे मौज करते हैं उधर निर्धन वर्ग के बच्चे बालश्रम करते हैं सम्पन्न वर्ग के व्यक्तिगण निर्धन वर्ग के बच्चे से बालश्रम करवाते हैं उनसे सिर्फ और सिर्फ बालश्रम करवाते हैं उन्हें ना तो शिक्षा पाने की प्रेरणा देते हैं और ना ही उनके साथ अच्छा व्यवहार करते हैं उन्हें एक बच्चा ना समझ कर उसे नौकर समझते हैं और कभी-कभी तो उस बच्चे के साथ उपीड़न व अमानवीय व्यवहार भी करते हैं ऐसी बहुत सारी घटनाएं सामने आती हैं

जो वर्तमान में तो नौकर रखने के लिए एजेंसी तक खुली हुई है वे एजेंसियां संपन्न वर्ग के व्यक्तियों के घर पर 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को बालश्रम करने के लिए भेजते हैं यदि कोई व्यक्ति शिकायत भी कर देता है तो संपन्न लोग मिलीभगत कर मामले को रफा-दफा करवा लेते हैं उनके खिलाफ कोई कार्यवाही नहीं हो पाती है और ना ही बच्चों के माता-पिता शिकायत करते हैं क्योंकि वह इतने निर्धन हैं कि वह उन्हीं बच्चों की मजदूरी से अपनी गुजर-बसर करते हैं इसलिए यह कहा जा सकता है कि समाज में लोगों की इस तरह की मानसिकता बन चुकी है कि संपन्न वर्ग के यहां निर्धन वर्ग का बच्चा बालश्रम करें तो कोई सोचने की बात नहीं है दोनों वर्गों की मानसिकता अपने अपने स्तर पर पूरी तरह से सेट है। एक वर्ग मजदूरी/बालश्रम करने को तैयार है और दूसरा वर्ग कराने को तैयार है।

8. भारत में वर्ण व्यवस्था में चौथे नंबर के बच्चे बालश्रम में ज्यादातर पाए जाते हैं

भारत में चार प्रकार के वर्ण पाए जाते हैं जिनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चारों वर्गों में से चौथे नंबर के वर्ग के बच्चे बालश्रम में ज्यादा पाए जाते हैं क्योंकि भारत में यह मानसिकता बनी हुई है कि शूद्र वर्ग के बच्चे बालश्रम मजदूरी के लिए ही पैदा होते हैं इसलिए यदि इस वर्ग के बच्चे बालश्रम करते हैं तो समाज के ऊपर के तीन वर्गों को कोई फर्क नहीं पड़ता है क्योंकि ऊपर के वर्गों के बच्चों को प्यार सम्मान व हर तरह से मौका मिलता है कि वे खूब अच्छा जीवन यापन करें शिक्षित हो और उन बच्चों का बचपन आनंदमय हो यहां भारत के ज्यादातर लोगों की मानसिकता बनी हुई है कि ये शूद्र वर्ग के व्यक्ति व उनके बच्चे मजदूरी के लिए ही पैदा होते हैं इसलिए यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि भारत की वर्ण व्यवस्था भी बाल श्रम को बढ़ावा देने में मुख्य भूमिका अदा कर रहा है। जो कि भारत के भविष्य के लिए एक खतरा साबित हो सकता है।

अब प्रश्न यह आता है कि जो व्यक्तिगण या जो माता-पिता अपने बच्चों से बालश्रम करवाते हैं क्या उन्हें दंडित किया जा सकता है।

हां यदि कोई माता-पिता अपने बच्चों को काम करने की अनुमति देते या उन्हें बालश्रम के लिए प्रेरित करते हैं यदि बच्चा 14 वर्ष की उम्र से कम का है तो उस स्थिति में ऐसे माता-पिता पर 10,000/- रुपये के जुर्माने से दंडित किया जा सकता है क्योंकि उन्हें एक भूल सुधारने का मौका दिया जाता है ताकि आगे से वह इस अपराध को पुनः ना दोहराएं और अन्य माता-पिता को भी सीख मिले। ये जुर्माने का दण्ड केवल एक बार की गलती के लिए दिया जाता है यदि बार-बार दोहराया गया तो जुर्माने के साथ-साथ सजा का भी प्रावधान है जो अमल में लाया जाएगा।

अब प्रश्न उठता है कि बालश्रम कब से शुरू हुआ:-

बालश्रम "औद्योगिक क्रान्ति" के साथ ही शुरू हो गया था। इस विषय पर "कार्लमार्क्स" ने अपने कम्युनिस्ट घोषणा पत्र में कहा था कि जो भी बच्चे कारखानों में कार्य कर रहे हैं। हम सभी बालश्रम का त्याग कर रहे हैं। हम सभी को बालश्रम का त्याग कर देना चाहिए। यूनीसेफ के एक अध्ययन में यह भी पाया गया कि 5000 से 7000 बच्चियाँ वेश्यावृत्ति में पायी गयी इसके अलावा सन् 1986 में बालश्रम निवारण अधिनियम 1986 लागू किया गया और इस अधिनियम के तहत बंगलादेश में जो बच्चे उद्योग में नौकरी कर रहे थे, उनको नौकरी से निकालने का आदेश दिया गया। इससे भी खतरनाक यह बात साबित हुई कि इस तरह के आदेश के बाद बहुत से लोग गलियों में धक्के खाने और वेश्यावृत्ति की ओर अग्रसर हुए परन्तु फिर भी यदि बालश्रम पर रोक नहीं लगेगी तो देश की आर्थिक सामाजिक एवं नैतिक स्तर गिरने की सम्भावना ज्यादा हो जायेगी। आज तक बहुत सारी एन0जी0ओ व सामाजिक कार्यकर्ता इस बालश्रम को समाप्त करने की तरफ कार्य करने के लिये कदम उठा रही है और जिसके परिणाम देखने को भी मिल रहे हैं।

बालश्रम पर कानून

14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को काम पर रखना गैर कानूनी है। यदि आप अपने आस पड़ोस में किसी बच्चे को कार्य करते देखते हैं और कानून का उल्लंघन होता दिखायी दे रहा है। तो उस स्थिति में आप पुलिस को 1200 नम्बर पर शिकायत कर सकते हैं। एवं इसकी शिकायत शहर के सिटी

मजिस्ट्रेट से भी कर सकते हैं। नहीं तो सामाजिक संस्थाओं के बारे में यदि जानकारी है तो सामाजिक संस्थाओं को भी सूचना दे सकते हैं और इसकी शिकायत बाल मजदूर इन्स्पेक्टर से भी कर सकते हैं। यह अपराध संज्ञेय अपराध में आता है। यदि इसका कोई उल्लंघन करता है तो पकड़े जाने पर वारंट व गिरफ्तारी भी की जा सकती है।

यदि कोई व्यक्ति 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को काम पर रखता है या 14 से 16 वर्ष तक के बच्चों को किसी खतरनाक कार्य पर रखता है तो उस व्यक्ति को 6 महीने से लेकर 2 वर्ष तक की सजा हो सकती है और साथ ही 20,000/- रुपये से लेकर 50,000/- रुपये तक का जुर्माना हो सकता है और जो व्यक्ति कारखाना चला रहा है यदि वह काम करने वाले व्यक्तियों का रजिस्टर नहीं रखता है और काम करने के घंटे तय नहीं करता है या अन्य सुविधायें जैसे हैल्थ सम्बन्धी बातों का उल्लंघन करता है। तो उस स्थिति में कारखाना मालिक/चालक को 1 माह की जेल एवं 10,000/- रुपये तक जुर्माना लगाया जा सकता है। इस कानून के अलावा अन्य भी ऐसे अधिनियम हैं जो बच्चों को काम पर रखने पर सजा का प्रावधान रखते हैं। जैसे फ़ैक्ट्री एक्ट, खान (माइन्स) अधिनियम आदि में भी सजा का प्रावधान है।

बच्चों के अधिकार

बच्चों का सर्वप्रथम मुख्य रूप से एक ही अधिकार है, जिस पर ध्यान देना चाहिए जैसे बच्चा स्कूल न जाकर यदि कहीं बालश्रम करने जाता है, तो इसको गैर कानूनी माना गया है। 1990 के दशक में दुनिया में प्रत्येक देश जैसे सोमालिया व संयुक्त राज्य अमेरिका को छोड़कर सभी देशों में बाल अधिकार सम्मेलन पर हस्ताक्षर किये थे। हालांकि कुछ देश गरीब हैं। जहाँ छिपकर बाल मजदूरी करायी जाती है। बच्चों को स्कूल नहीं भेजा जाता है और बच्चे भी ऐसे वातावरण में काम करने में आनन्द लेना शुरू कर देते हैं और स्कूल जाने से कतराने लगते हैं। परन्तु इस तरह की सहमति को गरीबी होने के बावजूद भी स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि 14 वर्ष से कम उम्र का बच्चा शारीरिक रूप से भी काम करने के योग्य नहीं होता है। बालश्रम के अर्थशास्त्र पर अमेरिका द्वारा आर्थिक समीक्षा की गयी उसमें मूल कारण एक पिता की गरीबी पायी गयी है। जबकि भारत में नीचे दिये गये कारण भी बालश्रम के आधार हैं। जिनका जिक्र मेरे द्वारा शुरू में भी किया गया है। परन्तु यहाँ दोबारा इनका जिक्र करना इसलिए जरूरी हो गया है क्योंकि अमेरिका द्वारा समीक्षा में केवल गरीबी ही एक मात्र कारण पाया गया परन्तु भारत में बालश्रम के निम्न कारण भी पाये गये हैं जैसे:-

1. गरीबी
2. अशिक्षा
3. अत्याधिक जनसंख्या
4. वातावरण
5. बेरोजगारी
6. वर्ग (सम्पन्न)/(निर्धन)
7. पिता का नशा करना, जुआ आदि खेलना
8. अपनी जिम्मेदारी से भागना
9. भारत में वर्ण व्यवस्था में चौथे नं० के बच्चों (ज्यादातर)

मुख्य कारण तो ये ही हैं। वैसे अन्य भी बहुत से कारण जो छिपे हुए हैं। परन्तु इन्हीं कारणों के इर्द-गिर्द ही कुछ अन्य कारण भी घूमते हैं। यदि इन कारणों का उपाय हो जाये तो बालश्रम समाप्त होने की सम्भावना अधिक से अधिक हो सकती है। क्योंकि हमारे देश में दो तरह के वर्ग हैं। एक सम्पन्न दूसरा निर्धन सम्पन्न वर्ग निर्धन वर्ग के बच्चों से बालश्रम करा रहा है। यदि गरीबी पर अंकुश हो जाये तो बालश्रम स्वयं ही थमने के करार पर आ सकता है। व्यंग्य चाय की दुकान पर बैठे हुये लोग

बालश्रम को लेकर बात करते हैं। लेकिन बीच-बीच में कहते हैं कि अरे छोटू दो कप चाय लाना, हमारे देश के ज्यादातर रेलवे स्टेशनों पर जितनी भी चाय की दुकानें हैं उनमें बालश्रम देखने को बखूबी मिलता है। इस सब को बढ़ावा देने में माँ-बाप का पढा लिखा न होना असुरक्षा व रिक्रीएशन को मद्दे नजर रखते हुये ज्यादा बच्चे पैदा करना, कम इन्कम का होना ज्यादा खर्चा होना एक बहुत बड़ा कारण है। सरकारी व गैर सरकारी ऑफिसों में चाय पानी पहुँचाने का काम भी 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चे ही करते हुये दिखाई देते हैं। नौकरी के बहाने कम उम्र के लडके-लडकियों को श्रम पर लगाया जाता है, ये सभी बच्चे दूर दराज के गाँवों से बड़े-बड़े शहरों में आते हैं। जो बैल्डिंग की दुकानों पर स्कूटर रिपेयर की दुकानों पर छोटे-छोटे ढाबों पर कार्य करते देखे जाते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि बाल श्रम को रोकने के लिए क्या क्या कदम उठाने आवश्यक हैं

1. जागरूकता को बढ़ावा देना

बालश्रम पर रोकथाम करने के लिए जागरूकता को फैलाना बहुत जरूरी है जागरूकता की कमी की वजह से बाल श्रम फैल रहा है क्योंकि ना तो निरक्षर माता-पिता को पता है कि हमें 14 वर्ष से नीचे की उम्र के बच्चे से बालश्रम नहीं करवाना है और ना ही उन्हें यह पता कि बच्चों को शिक्षित करना है उनमें जागरूकता लाने के लिए तरह-तरह के कैंप लगाकर जागरूकता पैदा करनी चाहिए और सरकार को भी तरह-तरह की संस्थाओं को प्रोत्साहन देना चाहिए जो संस्थाएँ बालश्रम को रोकने के लिए कार्य करने की इच्छुक हो।

2. बालश्रम को रोकने के लिए सरकार द्वारा बालश्रम निषेध अधिनियम 1986 का निर्माण

सरकार ने बालश्रम को रोकने के लिए उक्त अधिनियम का निर्माण भी किया है। बल्कि 23 दिसंबर 2016 को इस अधिनियम में संशोधन भी किए गये हैं उम्र में भी संशोधन किया है जैसे 14 से 18 वर्ष के बीच की उम्र वाले बच्चों को यदि खतरनाक कार्यों में कार्य करते पाया जाता है तो उनकी उम्र 14 से 18 तक संशोधित कर दी गई है और जुर्माना भी 50,000/- रुपये तक कर दिया है ताकि आर्थिक दंड अधिक होने से जो लोग बच्चों से बालश्रम करा रहे हैं उन पर अंकुश लगाया जा सके। अंकुश लगाने के लिए ही सजा में भी परिवर्तन कर दिया है अब 2 वर्ष तक की सजा का उपबंध कर दिया है और संशोधित अधिनियम के अनुसार बालश्रम के दायरे में टीवी उद्योग व विज्ञापन आदि में कार्य करने वाले बच्चों को बालश्रम की श्रेणी में नहीं रखा जाएगा। परंतु यहां प्रश्न यह उठता है कि सरकार द्वारा अधिनियम बनाया गया है बस उस पर सख्ती से अमल करने की आवश्यकता है ताकि बालश्रम को रोका जा सके और जो व्यक्ति बालश्रम करवाता हुआ पकड़ा जाए उस पर तुरंत कार्यवाही की जाए ताकि दूसरों में भी भय पैदा हो सके और बालश्रम का स्तर नीचे आ सके।

3. बच्चों को ज्यादा से ज्यादा संख्या में स्कूल भेजना चाहिए

बाल श्रम रोकने का एक उपाय यह भी है कि बच्चों को ज्यादा से ज्यादा संख्या में स्कूल भेजना चाहिए जब बच्चे स्कूल जाएंगे तो उनका मन स्कूल में लगेगा अन्य बातों से उनका मन हट जाएगा बालश्रम को तोड़ने की एक कड़ी बच्चों को ज्यादा संख्या में स्कूल भेजना भी है इससे दोस्ताना माहौल पैदा होता है बच्चों को स्कूल भेजना का फायदा यह भी है कि झुग्गी-झोंपड़ी (सलम्स) गंदी बस्तियाँ आदि भी कम मात्रा में बढ़ेंगे। स्कूलों में लाइब्रेरी कंप्यूटर आदि की व्यवस्था भी की जानी चाहिए ताकि बच्चों का ज्यादा से ज्यादा मन स्कूल के कैम्पस में लगे और एक परिवारिक माहौल भी पैदा करना चाहिए ताकि बच्चे अपने आप को सुरक्षित महसूस करें।

4. लोगों को बच्चों को नौकरी पर रखने से स्वयं मना करना चाहिए

जो भी लोग भारत में व्यापार में लगे हुए हैं उन्हें स्वयं भी बच्चों को कार्य पर रखने में अंकुश लगाना चाहिए और जो भी हमारी एन जी ओ बालश्रम को समाप्त करने में लगी हुई है उन्हें और भी जोर शोर से इस बुराई को समाप्त करना चाहिए क्योंकि जो भी संस्थाएं इस कार्य में लगी हुई है उनका श्रेय बहुत ज्यादा है। क्योंकि ये संस्थाएँ सरकार से भी ज्यादा इस बुराई को मिटाने में लगी हुई है हमारे देश में जितना भी आईटी0मार्केट है उन्होंने बालश्रम को सबसे ज्यादा समाप्त किया है। उन्होंने अपने

व्यापार में बच्चों को कहीं भी शामिल नहीं किया है और आईटी मार्केट ने अपने सदस्यों को मिलाकर ही एनजीओ का निर्माण किया है जिसके माध्यम से बच्चों को मुफ्त पढ़ने व बालश्रम से निजात मिली है। इसका परिणाम हम सभी देश के अन्दर देख रहे हैं। इस बात को नकारा नहीं जा सकता है।

5. एनजीओ को बच्चों को सुरक्षित रखने में सपोर्ट करना चाहिए

अब बात आती है कि एनजीओ ने बालश्रम को समाप्त करने व उनको सुरक्षित रखने में महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं जहां भी एनजीओ ने बच्चों को बालश्रम करते पाया है उन्होंने तुरंत कार्यवाही करवाई है और उस बच्चे को वहां से निजात दिला कर उसे मुफ्त शिक्षा दिलाने के लिए स्कूल में भर्ती कराया है और उसके साथ रहने खाने व सुरक्षा की पूरी जिम्मेदारी ली है एनजीओ ने 9337 बच्चों को बाल श्रम से निजात दिलाई है उन्होंने इस को एक मिशन के रूप में ग्रहण किया तब कहीं जाकर इतनी बड़ी संख्या में बच्चों को बालश्रम से बचाया है वर्तमान में 120 देश इस मिशन में लगे हुए हैं जो बालश्रम से पीड़ित बच्चों को बालश्रम से बचाने व उनकी शिक्षा पर फोकस किये हुए हैं और करोड़ों बच्चों को एक नया जीवन दिया है एनजीओ राष्ट्रीय व राज्य स्तर दोनों स्तर पर कार्य कर रही है उसमें पुलिस विभाग का महत्वपूर्ण योगदान रहा है राज्य स्तर पर पुलिस विभाग बच्चों के शोषण को रोकने का महत्वपूर्ण काम कर रही है इसमें पंजाब पुलिस, दिल्ली पुलिस, बिहार पुलिस, जम्मू कश्मीर पुलिस, झारखंड पुलिस, वेस्ट बंगाल पुलिस, असम पुलिस, का महत्वपूर्ण योगदान रहा है क्योंकि इन राज्यों में बालश्रम अधिक मात्रा में पाया गया है पुलिस के विशेष कदम उठाने पर इस तरह के व्यक्तियों के खिलाफ शीघ्रता से कार्रवाई करने पर जो बालश्रम करवा रहे हैं पुलिस ने काफी रोकथाम की है जिसका परिणाम सामने आया है और आ रहा है यदि एनजीओ का महत्व बालश्रम को रोकने में महत्वपूर्ण है तो पुलिस के सहयोग को भी नकारा नहीं जा सकता है दोनों का महत्वपूर्ण सहयोग बाल श्रम को समाप्त करने में रहा है और आज भी वर्तमान में लगातार चल रहा है।

6. प्राथमिक विद्यालयों का निर्माण

कुछ बालकर्ताओं ने कहा है कि हमारे तर्क के अनुसार जो बच्चे बालश्रमी हैं जो स्कूल नहीं जाते हैं चाहे काम करते हो या नहीं क्योंकि जो उनके स्कूल जाने की व पढ़ने की उम्र व मौज मस्ती की उम्र है उसमें यदि वे स्कूल नहीं जाते हैं तो भी बालश्रम में ही गिने जाएंगे लेकिन इसमें एक कार्य करें प्राथमिक विद्यालयों का निर्माण अधिक से अधिक किया जाना चाहिए जो आज की वर्तमान स्थिति में हो भी रहा है आज भारत के हर इलाके में प्राइमरी स्कूल बनाए गए हैं ताकि हर गांव व शहर में बच्चा पढ़ सकें और बालश्रम से बच सकें और सरकार ने 23 दिसम्बर सन 1986 में चाइल्ड लेबर प्रोहिबिशन एंड रेगुलेट एक्ट 1986 लागू किया। जिसमें साफ तौर से यह स्पष्ट हुआ कि 14 वर्ष से नीचे के बच्चे यदि कहीं भी बालश्रम करते पाए गए तो जिस व्यक्ति के यहां वह काम कर रही हैं या कर रहे हैं उसे दंडित किया जाएगा ताकि आगे से बाल श्रम पर रोक लग सके और यदि कोई व्यक्ति समझने के बावजूद भी नहीं मान रहा है तो 112 नंबर पर पुलिस को फोन कर सूचित कर सकते हैं और पुलिस उन पर मुकदमा कायम कराएगी जिसमें जुर्माना व सजा दोनों का प्रावधान कायम है।

7. किशोर न्याय देखभाल और संरक्षण अधिनियम 2015 का निर्माण

बच्चों को बालश्रम से रोकने के लिए उपरोक्त अधिनियम का निर्माण 2015 में बनाया गया इस कानून ने इसे अपराध बना दिया किसी के लिए भी एक बच्चे को रोजगार के उद्देश्य से बंधन में रखना जेल की सजा के साथ दंडनीय है इस अधिनियम से भी बालश्रम में कमी आई है इसका असर भारत के हर क्षेत्र में देखने को मिल रहा है

8. बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार 2009

इस अधिनियम के अनुसार 6 वर्ष 14 वर्ष के सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान रखा गया है इस कानून ने यह भी अनिवार्य किया कि प्रत्येक निजी स्कूल में 25: सीटें आर्थिक रूप से वंचित समूह के बच्चों के लिए आयोजित की जानी चाहिए भारत ने 1987 में बालश्रम पर राष्ट्रीय नीति तैयार की है इस नीति ने खतरनाक व्यवसायों में काम करने वाले बच्चों के पुनर्वास पर ध्यान देने के साथ

क्रमिक दृष्टिकोण अपनाने का प्रयास किया है। सन् 1988 में इसने राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना की शुरुआत की यह कानूनी रूप से विकास की पहल जारी है भारत में बालश्रम को समाप्त करना एक चुनौती भरा कार्य है क्योंकि यदि बालश्रम का सफाया नहीं हुआ तो देश में विकसित होने की भावना महसूस नहीं होती है क्योंकि जिस देश का शिक्षा स्तर बेहतर होता है उस देश की सभी स्थितियों को भी बेहतर देखा जा सकता है क्योंकि किसी भी देश का भविष्य बच्चों पर ही निर्भर करता है तभी तो कहा गया कि बच्चे देश का भविष्य हैं इस बात को नकारा नहीं जा सकता है।

9. बिगगेरी और मेहरोत्रा के अनुसार आर्थिक कारकों पर रोक बाल श्रम में कमी

अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन ने भी अपनी रिपोर्ट में यह स्पष्ट किया है कि बालश्रम का सबसे बड़ा कारण आर्थिक तंगी है इसीलिए यहां यह कहना उचित है कि आर्थिक तंगी को दूर करने का प्रयास करना चाहिए इसमें सरकार के सहयोग की बहुत ज्यादा आवश्यकता है। बिगगेरी मेहरोत्रा ने बालश्रम को प्रोत्साहित करने वाले व्यापक आर्थिक कारणों का अध्ययन किया है जिसमें भारत, पाकिस्तान, इंडोनेशिया, थाईलैंड, फिलीपींस यह देश बालश्रम से ग्रस्त पाए गए हैं।

10. बंधुआ मजदूरी प्रणाली अधिनियम 1976

बालश्रम को रोकने में बंधुआ मजदूरी प्रणाली अधिनियम 1976 का भी सहयोग रहा है और न्यूनतम मजदूरी संबंधित एक्ट 1948 बनाया गया इसमें समितियों ने भी काफी सहयोग किया है और बालश्रम व बंधुआ मजदूरी में काफी गिरावट आयी है।

अब सवाल उठता है कि बालश्रम के क्या परिणाम हैं उनका वर्णन निम्न प्रकार है

1. आर्थिक कल्याण की दृष्टि से बालश्रम एक गंभीर मुद्दा

आर्थिक कल्याण की दृष्टि से बालश्रम एक गंभीर मुद्दा है क्योंकि काम करने वाले बच्चे आवश्यक शिक्षा प्राप्त करने में असफल रह जाते हैं उनका शारीरिक बौद्धिक व मानसिक विकास नहीं हो पाता है इस तरह से वे जिस समुदाय में रहते हैं वहाँ भी वे योगदान प्रदान नहीं कर पाते हैं और बालश्रम का भारत पर दीर्घकालिक प्रतिकूल प्रभाव पड़ता दिखायी देता है।

2. बाल श्रम का भारत पर लंबे समय में प्रतिकूल प्रभाव

बालश्रम का भारत पर लंबे समय में प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है क्योंकि लंबे समय पर उनमें निरसता आ जाती है वह हर तरह से कमजोर हो जाते हैं वे बीमार भी रहने लगते हैं। यदि देश की आने वाली पीढ़ी स्वस्थ नहीं रहेगी तो देश का भविष्य खतरे में आ जाएगा।

3. व्यापार बंद होने के आसार

व्यापार बन्द होने के आसार इसलिए हो जाते हैं क्योंकि जो बच्चे बालश्रम में लगे हुए हैं अनपढ़ हैं और यदि कोई कार्य टैक्निकल तरह का आ जाएगा तो व्यापार की स्पीड कम होनी शुरू हो जाएगी और इसका परिणाम यह होगा कि व्यापार बन्द होने के कगार पर आ जाएगा इस कारण यह कहा जा सकता है कि बालश्रम व्यापार के लिए भी एक गलत दिशा देता है

4. साक्षरता में कमी

बालश्रम का परिणाम यह भी सामने आया है कि जहां बालश्रम ज्यादा होगा वहाँ निश्चित रूप से साक्षरता में कमी आई है जो देश के विकास के लिए एक खतरा साबित हो सकता है इसलिए बालश्रम का सफाया होना आवश्यक है।

5. मजदूर वर्ग में बढ़ोतरी

बालश्रम के कारण देश में मजदूर वर्ग में बढ़ोतरी आई है इसलिए बालश्रम का खत्म किया जाना देशहित में अति आवश्यक है क्योंकि जब कोई बच्चा किसी कार्य में लग जाता है और शिक्षा लेने से महरूम हो जाता है तो वह मजदूर बन जाता है और एक मजदूर अपनी आने वाली पीढ़ी को क्या

सिखाएगा जब उसका ही कोई विकास नहीं हुआ है इसलिए इस बात से नकारा नहीं जा सकता कि बालश्रम मजदूर वर्ग में बढ़ोतरी कर रहा है।

6. 2005 भारत सरकार एन0जी0ओ0 की रिपोर्ट

सन 2005 की रिपोर्ट (राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन) के आधार पर यह रिपोर्ट सामने आई है कि भारत में बालश्रम की घटनाएं मुस्लिम समाज में ज्यादा पाई गई हैं हिंदुओं की तुलना में 40: ज्यादा पाया गया है बालश्रम के खिलाफ एक अभियान के अध्ययन के अनुसार भारत में लगभग 12666377 बाल मजदूर हैं उत्तर प्रदेश में 1927997 बालश्रम मजदूर है भारत की राजधानी दिल्ली में 10 लाख से ज्यादा मजदूर हैं बिहार महाराष्ट्र राजस्थान मध्य प्रदेश भी इसमें शामिल है।

7. देश के विकास में बालश्रम एक बाधा

जैसे कि एनएसओ की रिपोर्ट के आधार पर हमें पता चला है कि बालश्रम में कितने बच्चे शामिल पाए गए हैं और किन-किन राज्यों में ज्यादा बच्चे बालश्रम में पाए गए हैं वैसे भी यदि गौर फरमाएं तो उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, बिहार आदि की स्थिति किसी भी क्षेत्र में ज्यादा अच्छी नहीं है ना ही उस तरह का विकास पाया गया है जैसा विकास होना चाहिए इसके पीछे सिर्फ एक ही कारण है वह सिर्फ और सिर्फ बालश्रम है

8. बालश्रम बाल अपराध को पनपाता है

यह बात भी सही है जहाँ बालश्रम ज्यादा होता है वहाँ बाल अपराध को भी बढ़ावा मिलता है छोटे बच्चे जल्दी ही छोटे-छोटे अपराधों में लिप्त होने लगते हैं वह बड़ों जैसी हरकतें करने की कोशिश करने लगते हैं और उस होड़ में वे कई बार बड़ी-बड़ी घटनाओं को भी अंजाम दे जाते हैं इसलिए इस बात से मना नहीं किया जा सकता कि बालश्रम बाल अपराध को भी पैदा करने में सहयोग करता है।

निष्कर्ष

बालश्रम से संबंधित सभी कारकों के बारे में विचार करने के बाद व अध्ययन करने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि भारत में व अन्य कुछ देशों में बालश्रम काफी संख्या में दिखाई देता है परंतु बालश्रम समाप्त करने के लिए शिक्षित समाज सरकार के साथ मिलकर राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय निकायों के साथ बालश्रम के खिलाफ बच्चों के अधिकारों को मजबूत करने के लिए एक मुहिम चला रहा है वहीं सरकार ने व निकायों ने मजबूती के साथ मिलकर बालश्रम को मिटाने के लिए नई नई नीतियों का निर्माण किया है जिससे कि बालश्रम व कुपोषण पर रोकथाम हो सके और वहीं एन0जी0ओ0 व पुलिस विभाग ने भी बालश्रम को समाप्त करने के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं और जिनका परिणाम हमें देखने को मिल रहा है बालश्रम घटा है और बच्चों की शिक्षा का स्तर भी बढ़ता दिखाई दे रहा है सरकार ने व एन0जी0ओ0 ने मुक्त शिक्षा देने का अभियान भी जारी किया है परंतु सभी पहलुओं पर विचार करने के बाद निर्णय यह निकला है कि गरीबी ही बालश्रम का मुख्य कारण सामने आया है और ये भी कहा जा सकता है कि निरक्षरता की कमी, बेरोजगारी, अधिक जनसंख्या, आदि के कारण बच्चे बालश्रम के लिए मजबूर हैं यदि इन सभी कमियों पर अंकुश लगा दिया जाए तो बालश्रम को काफी हद तक रोका जा सकता है जैसा कि मैंने पहले भी जिक्र किया है कि एन0जी0ओ0 व पुलिस विभाग व हमारी सरकार मिलकर इन सभी कमियों को दूर करने में प्रयासरत है और उसी प्रयास के कारण बालश्रम में कमी आई है दूसरा सरकार ने बालश्रम को रोकने के लिए बालश्रम निषेध विनियम अधिनियम 1986 का निर्माण किया है और सन् 2016 में हमारे स्व0 राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी द्वारा भी 1986 के अधिनियम में संशोधन किया है उस संशोधन से भी बालश्रम में काफी कमी आई है इस तरह से कारखाना अधिनियम बनाया गया यह अधिनियम भी 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को कारखाने में काम करने पर रोक लगाता है खान (माइन्स) अधिनियम 1952 भी 18 वर्ष से कम उम्र के बच्चों द्वारा कार्य करने पर रोक लगाता है। इसी तरह से किशोर न्याय (देखभाल संरक्षण) बाल अधिनियम 2015 बनाया गया। इस तरह सरकार ने काफी योगदान बालश्रम को रोकने में दिया है। बालश्रम के उपाय एवं रोकथाम के लिये सरकार ने सन् 1986 में Child Labour (Prohibition and Regulation

Act) 1986 लागू किया उसके बाद सन् 2016 में Amendment भी किया गया और स्पष्ट यह लिखा गया कि An Act to Prohibit the engagement of children in all occupations and to adolescents in hazardous occupation and processes and the matters connected therewith or incidental thereto] सरकार अपनी तरफ से भरसक प्रयास कर रही है। परन्तु उसके बावजूद भी हमें स्वयं भी बालश्रम को रोकने के प्रयास करने चाहिए। उसके लिये सबसे महत्वपूर्ण प्रयास एक ही है कि देश का प्रत्येक माता पिता अपने बच्चों को शिक्षित करने का प्रयास करे और अपने आचरण में सुधार करे और यदि पढ़ाने में असक्षम है, तो उस स्थिति में जो हमारी सामाजिक संस्थायें हैं। सामाजिक कार्यकर्ता हैं, उनसे सम्पर्क कीजिये एवं स्वयं भी किसी बच्चे से बालश्रम ने कराये एवं दूसरों को भी रोके न रूकने पर उसकी सूचना पुलिस व मजिस्ट्रेट व सामाजिक संस्थाओं को देने का कष्ट करें।

References

1. Table 2.8, WDI 2005, The World Bank
2. Age Data C13 Table (India/States/UTs)
Final Population -2011 (Census of India)
3. Child Labour – ILO, ILO, United Nations 2011
4. India Child Labour (Prohibition and Regulation) Amendment Act, 2016 of India.
5. Children and Work (Annual Report 2009) (PDF), Census 2011, 2008 p.108
6. Constitution of India, Vakilno1.com. Government of India.
7. “India- The big picture” UNICEF. Retrieved 19 October 2009.
8. “THE STATE OF THE WORLD’S CHILDREN-2011” (PDF), UNICEF.2012,
9. Madslie, Jorn (4 February2004) “ILO: ‘Child Labour prevents is ver’ BBC NEWS. Retrieved 20 September 2011.
10. “Facts on Child Labour-2010” (PDF), ILO, Geneva,2011.
11. “Agriculture Accounts for 70 percent of child labour worldwide” FAO, United Nations 2006.

कॉलरिज की काव्य सम्बन्धी मान्यतायें?

डॉ० कमलेश सिंह

सहायक आचार्य—हिन्दी

धर्म समाज महाविद्यालय, अलीगढ़ उ०प्र०

कॉलरिज कविता को व्यक्त भाषा की कला कहते हैं। कॉलरिज कवि तथा कविता का अन्तर प्रायः नहीं मानते हैं और कभी-कभी तो कवि का वर्णन करके ही कविता की परिभाषा देना चाहते हैं। अतः हमारे लिये यह जानना अपेक्षित होगा कि कॉलरिज कवि में कौन-कौन से गुणों की अपेक्षा रखता है। कॉलरिज कवि के लिए प्रतिभा सम्पन्न होना अनिवार्य मानते हैं। जिन अन्य गुणों को उसने कवि में आवश्यक माना है वे हैं — पद्य माधुरी, मूर्तिविधान, विचार की गहराई, भावुकता, विवेक, निर्णयशक्ति, कल्पना, मानवता, साथ में वह कवि के लिए तत्वेता एवं दार्शनिक होना भी आवश्यक मानता है। वह कवि से आशा करता है कि वह निर्वैक्तिक तथा वस्तुपरक रहकर विश्व को समझने तथा वर्णन करने का प्रयत्न करेगा। लेकिन कॉलरिज ने कवि के लिए जिन उपेक्षित गुणों का उल्लेख किया है उसमें विरोध है। जैसे एक ओर कॉलरिज कवि को सचेतन कलाकार कहता है तो दूसरी तरफ मानता है कि काव्य रचना अचेतन होना चाहिए। एक तरफ कवि को दार्शनिक मानता है दूसरी तरफ भावुक। यह विरोध उसकी दृष्टि में विरोध नहीं है क्योंकि कवि में सभी विरोधी गुणों का समंजन हो जाता है।

जैसा कि ऊपर मैंने बताया कि कविता क्या है? यह पूछना असल में यह पूछना है कि कवि क्या है? एक सवाल का उत्तर दूसरे पर निर्भर है क्योंकि कवि तथा कविता की विलक्षणता असल में कवि की जीनियस से उत्पन्न होती है। यह जीनियस ही कवि के मन में विम्बों, विचारों तथा भावनाओं की साधती है। चिड़िया को मरते सब देखते हैं लेकिन बाल्मीकि लाखों में एक होता है। यह कवि के जीनियस के कारण होता है। अर्थात् कविता की उचित परिभाषा तभी संभव है जबकि वह परिभाषा कवि जीनियस की अवधारणा पर ध्यान दें। उसका कारण यह है कि इसी जीनियस के कारण कवि संवेगों को धारण कर पाता है, उन्हें कविता के अनूकूल बनाता है। विचारों और चित्रणों को कविता में ला पाता है।

कॉलरिज ने कविता की परिभाषा इस प्रकार दी है— “कविता सौन्दर्य के माध्यम से तात्कालिक आनन्दोद्रेक के लिए भावों को उद्वेलित करती है।” वह काव्य को एक विशिष्ट रचना मानता है जो विज्ञान से भिन्न है क्योंकि उसका उद्देश्य साक्षात् आनन्दोद्रेक करना होता है। सत्य की उपलब्धि नहीं जो विज्ञान का उद्देश्य है। कॉलरिज काव्य में बुद्धि तथा हृदय का सम्मिलन चाहता है। जो हृदय को बुद्धि की वेदी पर बलिदान कर देते हैं वे सच्चे कवि नहीं हैं। सच्चे कविता की कसौटी यह है कि पाठक उसे एक बार पढ़कर सन्तुष्ट न हो जाय, अपितु, बार-बार पढ़े तथा जितनी बार पढ़े उसमें अभिनव आनन्द प्राप्त हो। कॉलरिज कविता में भाव तथा भावावेग पर बल देता है क्योंकि तीव्र-भावावेग के समय उत्तम कविता की रचना हो सकती है। इससे ज्यादा कॉलरिज इस पर बल देते हैं। कि पाठक के अन्दर भावावेग उत्पन्न करें, लेकिन यहाँ पर शंका यह है कि निर्वैक्तिक तथा वस्तुपरक काव्य लिखने का समर्थन कॉलरिज भावावेग के सिद्धान्त को कैसे मानता होगा क्योंकि दोनों परस्पर विरोधी बातें हैं। पर इसका समाधान हो जाता है क्योंकि कॉलरिज काव्यागत भावावेग को सामान्यतः भावुकता से भिन्न मानता है तथा भावावेग को वह कवि का अनिवार्य व्यक्तिगत गुण मानता है।

सच्ची कविता वही है जिसमें विभिन्न भाग परस्पर अनुपात में छन्दों विधान के साथ समंजस हो तथा उसके उद्देश्य एवं ज्ञात प्रभावों का उन्नयन करें। उसका स्पष्ट मत है कि मन को अभिभूत कर लेने वाली पंक्तियों या श्लोकों की ऐसी श्रृंखला को सच्ची कविता नहीं कहा जा सकता जिनमें प्रत्येक

पाठक का पूर्ण ध्यान अपने में तो केन्द्रित कर ले उसे संदर्भ से विछिन कर दे। कॉलरिज चाहते हैं कि प्रत्येक पंक्ति सम्पूर्ण कविता का सामांजस्यकारी अंग हो न कि स्वतः पूर्ण कृति। दूसरी ओर वह ऐसी कविता को उतना नहीं मानता जिसके घटक-अवयवों में आकर्षण नहीं है। कॉलरिज की दृष्टि में कविता का पथ इतना सुरम्य हो कि पाठक पग-पग पर बनकर उसका रसास्वाद करे जो कविता केवल उत्सुकता के यांत्रिक आवेग की प्रेरणा से पाठक को आगे बढ़ाये, वह कविता उत्तम नहीं कही जा सकती। इसी सन्दर्भ में कॉलरिज ने सर्प की गति का रूपक प्रस्तुत किया तथा कहा कि जिस प्रकार सर्प हर कदम रुककर आधा पोधे को चलकर उस प्रतिवर्ती से पुनः आगे चलने की शक्ति संचय करता है, उसी प्रकार पाठक प्रत्येक अंश पर दम कर रसास्वादन करता है। कॉलरिज के कहने का मतलब यह है कि सच्ची कविता वही होगी जिसके विभिन्न अंश एक दूसरे को बल प्रदान करते हैं। एक-दूसरे की व्याख्या करते हैं तथा अपने अनुपात में उस छन्दोपद्य व्यवस्था के ज्ञात प्रभावों तथा उद्देश्यों के बीच सन्तुलन स्थापित करते हैं। जैसे – राम की शक्ति पूजा। उच्चतम कोटि की कविता छन्द के बिना या कविता के अन्य लक्षणों के बिना सम्भव है। एजाया का पहला चैप्टर शब्द के सबसे सटीक अर्थ में कविता है। लेकिन ये नहीं कहा जा सकता है कि उस मसीहा का लक्ष्य सत्य नहीं आनन्द था। संक्षेप में बकौल डा0 पुरुषोत्तम अग्रवाल के अनुसार किसी भी आकार का कोई कविता सारी की सारी काव्यमय न तो होती है तथा न उसका ऐसा होना जरूरी है।

कवि मानव की समूची आत्मा को सक्रिय कर देता है। वह मानव मन की क्षमताओं उनकी महत्वता एवं गरिमा के अनुरूप संयोजित करता है। वह एकता की भावना तथा उसका स्वर उत्पन्न करता है। कॉलरिज के अनुसार ऐसी एकता उत्पन्न करने वाली समग्रतापरक एवं जादुई पंक्ति के लिए मैं कल्पना शब्द का प्रयोग करता हूँ। रामायण में ईर्ष्या, प्रेम आदि सब हैं। यही कविता की समग्रता है यानि कॉलरिज के अनुसार जीवन के विसंगतियों के बीच मानव आत्मा की समग्रता को दिखाना उत्तम कविता है। कविता का रूप – “Poetry is the best words in their best order” सर्वोत्तम शब्दों का अर्थ? यह कविता के प्रसंग पर निर्भर करता है। भावों तथा अनुभावों का जो संदर्भ हो उससे अलग के शब्द आये तो पंडिताउपन होगा। सामान्य जनजीवन की कविता में गूढ़ अर्थ वाले शब्द क्यों? शास्त्र की भाषा में जीवन की कविता। मैथिलीशरण गुप्त के यहाँ शास्त्र के शब्द बहुत मिलते हैं लेकिन पंडिताउपन नहीं है क्योंकि प्रसंग ठीक है। लेकिन हरिऔध में पंडिताउपन है। कहने का मतलब यह है कि कॉलरिज ने शास्त्र के शब्दों के जनजीवन की कविता और दार्शनिक विषयों के सरस्ते शब्दों, दोनों को पंडिताउपन है। कविता में भी वे तत्व होते हैं जो गद्य-रचना में। अन्तर तत्वों के मिश्रण में ही होता, जिसका कारण यह है कि उसका प्रस्तावित प्रयोजन भिन्न होता है। कॉलरिज के अनुसार गद्य रचनाओं भी छन्द तथा तुक में ढाला जा सकता है लेकिन विरोधाभास यह है कि उपन्यासों को भी पद्य में परिवर्तित किया जा सकता है। पर क्या इतने भाव से वे काव्य कहलाने के अधिकारी होंगे? *Prose is words in their best order. Poetry is the best words in their best order.* लेकिन इस उक्ति द्वारा कॉलरिज कविता तथा गद्य के अन्तर को समझा नहीं पाए लेकिन कॉलरिज के अनुसार जिन रचनाओं में सत्य की अभिव्यक्ति प्रधान हो वे गद्य कहलाती हैं तथा जिनका आनन्दोद्रेक करना हो, वे कविता कहलाती है।

मेथड कॉलरिज का अनवरत बीज शब्द है। इसी के कारण सारे ज्ञान के वर्गीकरण तथा कोशों के प्रति कॉलरिज की गहरी रुचि है। रिचर्ड्स की थ्योरी का पूर्वाभास कॉलरिज में मिलता है। (रेने वेलेक) कॉलरिज के अनुसार कविता जिस आत्मा की अभिव्यक्ति है, वह कवि से भिन्न आत्मा है। कॉलरिज मेथड का अर्थ है— उद्विकास के साथ एकता का अन्तर्भाव। कविता में *Unity with progression* व *Progression with Unity* दोनों का सम्बन्ध है। जिसे कॉलरिज मेथड कहते हैं उसका बड़ा हिस्सा सर्जनात्मक कल्पना है। रेने वेलेक ने जीनियस एवं आवेग (*Passion*) की कड़ी आलोचना की है तथा कहा कि कॉलरिज कविता की परिभाषा में असफल रहे। रेने वेलेक के अनुसार एक ओर कॉलरिज कविता की संरचना पर ध्यान देते हैं तथा दूसरी तरफ वे उस तरह की *Emotional theory* को बढ़ावा देते हैं कि आनन्द से पैदा होती है जीनियस में कोई ऐसी चीज नहीं है जिसे आब्जेक्टिव प्रतिमानों पर नापा तथा परखा जा सके। कॉलरिज की यह बात सही है कि कविता छन्द से प्रमाणित नहीं होती किन्तु यह कोई नयी बात नहीं है। किसी ने यह नहीं कहा कि कविता के लिए छन्द

आवश्यक है। किन्तु एक दृष्टि से सही छन्द से ही कविता को क्या अलग किया जा सकता है। भाषा के अन्य सर्वनात्मक प्रयोगों से कविता को अलग करने वाली पहली चीज छन्द ही है। कॉलरिज के अनुसार कविता में हर अंश विशिष्ट होता है तथा सचेत ढंग से आनन्द की सृष्टि करता है। कविता का महत्तम पूरी कविता के आनन्द के अनूकूल होना चाहिए। किन्तु यह गद्य पर भी लागू होता है। आज कैसे कह सकते हैं कि गद्य में सचेत आनन्द पैदा करने की प्रकृति नहीं है।

रेने वेलेक ने कॉलरिज की कविता की परिभाषा में अति व्याप्ति दोष बताया। क्या कॉलरिज यह कहना चाहता है कि बेहतर ढंग से संघटन से कविता बन जाती है। "कविता विचारों से नहीं बल्कि शब्दों से रची जाती है।" इससे यह आशय निकलता है कि केवल श्रेष्ठ विचारों से आप कवि नहीं बन सकते। रेने वेलेक और आरोप लगाते हैं— क्या सचमुच शब्दों से संघटनमात्र से कविता बन जाती है। जब कविता में शब्दों में बेहतर संघटन पर जोर दिया जाता है तो इसमें भी व्याप्ति दोष होता है। Poetry is the best words in best order. श्रेष्ठ पद्य वह है जहाँ शब्दों का श्रेष्ठ क्रम होता है। गद्य लेखन में शब्दचयन का ध्यान नहीं है जितना पद्य में यह गलत है। वह गद्य हमें अधिक प्रभावित करता है। जिसमें शब्द चयन पर ध्यान दिया जाता है। जब हम कहते हैं कि कोई गद्य काव्यात्मक है तो इसलिए कि वह अधिक सघन है। कॉलरिज की परिभाषा से यह अर्थ निकलता है कि प्रत्येक कविता गद्य से श्रेष्ठ होती है। कॉलरिज न अपने सैद्धान्तिक प्रस्थान को कभी कविता की आलोचना लिखने के क्रम में व्यवहारिक उपयोग नहीं किया। इसी कारण इन्हें न सैद्धान्तिक आलोचक करते हैं तथा न व्यवहारिक। यह कॉलरिज की सबसे बड़ी सीमा है। डा० देवेन्द्रनाथ के अनुसार कॉलरिज की समालोचना बीजीय है उन्होंने उद्भावना तो अनेक धारणाओं की लेकिन उन्हें बीज या संकेत रूप में छोड़ दिया। किसी का सम्यक् विकास नहीं किया। विकासवाद के विद्वानों ने किया। इसी प्रकार कविता से सम्बन्धित सर्जन प्रक्रिया और अवैयक्तिकता के संकेतों के विस्तार इलियट में पाया जाता है।

कॉलरिज में उपर्युक्त विरोधाभास देख कर ही रेनवेलेक ने कहा था कि कॉलरिज कविता की परिभाषा करने में असफल है। पर कुछ त्रुटियाँ होते हुए भी कॉलरिज का महत्व कम नहीं है क्योंकि काव्य के अनेक पहलुओं का इतना तात्विक व्याख्यान अन्यत्र दुर्बल है। मौलिकता एवं गंभीरता तथा की दृष्टि से पाश्चात्य काव्यशास्त्र के इतिहास में कॉलरिज का स्थान मूर्धन्य है।

सन्दर्भ ग्रन्थः—

1. 'पाश्चात्य काव्यशास्त्र का इतिहास' — डॉ० तारकनाथ बाली।
2. 'साहित्य सिद्धान्त और समालोचना' — डॉ० देवी प्रसाद गुप्त।
3. 'पाश्चात्य काव्यशास्त्र' — डॉ० शान्ति स्वरूप गुप्त।
4. 'आलोचना के तीन आयाम' — डा० रामचन्द्र तिवारी।
5. 'पाश्चात्य काव्य शास्त्र' — अनिल राय।

हिन्दी आलोचना

यशवंत सिंह वर्मा

सहायक अध्यापक (हिन्दी)
राजकीय हाई स्कूल, टाण्डा सादात,
नवाबगंज, बरेली

रीतियुग पर संस्कृत के काव्यशास्त्र की जो छाया पड़ती है, उसे रीतिकार आचार्य तत्कालीन भाषा में अनूदित कर प्रस्तुत करते हैं। उनके इस प्रस्तुतीकरण में हिन्दी आलोचना का बीज प्रस्फुटित होता है। यह तथ्य समझने के लिए रीतिकालीन कवियों/आचार्यों ने किन परिस्थितियों 'रीति' का परिपालन किया। इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि रीति युगीन परिस्थितियों ने इन आचार्यों/कवियों को 'रीति' के पालन के लिए प्रेरित किया।

जैसा कि हम जानते हैं कि भाषा-साहित्य के निर्माण पर युगीन वातावरण का प्रभाव पड़ता है। युगीन वातावरण राजनीति, समाज, संस्कृति, साहित्य तथा कला के मूल्यों द्वारा निर्मित होता है। युगीन वातावरण के निर्माण में राजनीतिक अवस्था, सामाजिक अवस्था तथा सांस्कृतिक अवस्था का विशेष हाथ होता है।

राजनीतिक अवस्था :- इस काल में मुगलों का चरमोत्कर्ष तथा झ्रस दोनों होता है। शाहजहाँ के समय मुगल वैभव चरम पर था इस काल में ताजमहल तथा मयूर सिंहासन का निर्माण हुआ। शाहजहाँ के पुत्रों में संघर्ष हुआ उनमें औरंगजेब विजयी हुआ। औरंगजेब की नीति दमनकारी थी। परिणामतः अव्यवस्था और अशान्ति बढ़ी। मुगलों के अलावा उस समय इस देश में छोटे-छोटे राजवाड़े थे। अवध, राजस्थान, बुंदेलखंड रियासतों की स्थिति कारुणिक थी।

सामाजिक अवस्था :- सामाजिक स्थिति में अधःपतन था। सामंतवाद का बोलबाला था। इनका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव जनसामान्य पर पड़ता था। सामाजिक व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु बादशाह था, उसके अधीन मनसबदार थे। शासित वर्ग में एक ओर कृषक थे दूसरी ओर सेठ और साहूकार। कृषक और श्रमजीवी शोषण के शिकार थे। सामन्त और राजा अकर्मण्यता के कारण विलासी हो गये थे।

सांस्कृतिक अवस्था :- सामाजिक अवस्था की भाँति सांस्कृतिक अवस्था सोचनीय थी। अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ उदार नीति के थे इसलिए संतों और सूफियों के उपदेश के कारण हिन्दू और मुसलमानों को निकट आने का अवसर मिला। हिन्दी भाषा क्षेत्रों में वैष्णवों का प्रभाव था, अहिन्दी प्रान्तों में संतों का प्रभाव था। सम्पन्न वर्ग का झुकाव विलासिता की ओर था। साहित्य और कलाओं का सम्मान के प्रमाण मुगल राजाओं के पुस्तकालय थे। इन पुस्तकालयों के ग्रन्थों के अध्ययन से यह पता चलता है कि श्रृंगार रस के ग्रन्थ अधिक हैं, इसके साथ ही वीर रस तथा भक्ति भावना के ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ मानव के विचारों को प्रभावित करती हैं। इस काल में जो पढ़ा-लिखा वर्ग था वह सामन्तों, राजाओं तथा मुगल दरबारों में धनार्जन के लक्ष्य से जाता था। राजाओं और सामन्तों के पास विलासिता तथा तद्विषयक विचारों को सुनने का पर्याप्त समय था। इन दरबारों में रहने वाले कवि प्रायः श्रृंगारी कविताएँ लिखते थे। इनमें कुछ ऐसे आचार्य कवि थे जो कविता के साथ रीति के प्रेमी थे। इन्हीं आचार्य कवियों एवं कवियों की रचनाओं से रीति युग में काव्यशास्त्र अनूदित होकर हिन्दी की काव्यशास्त्रीय पृष्ठभूमि बना।

रीति कवियों के वर्ग

रीतिकालीन आचार्यों तथा कवियों द्वारा काव्य-शास्त्र का विवेचन किस प्रकार किया गया है, इसी का रेखांकन है। इस काल के काव्य-शास्त्रीय निरूपण को रीति निरूपण कहा गया है। रीति-निरूपण करने वाले कवियों का वर्गीकरण निम्नांकित प्रकार किया गया है : रीति निरूपण करने वाले कवियों को दो वर्गों में विभक्त किया गया है—1. सर्वांग निरूपक, 2. विशिष्टांग निरूपक।

सर्वांग निरूपक वे कवि हैं जिन्होंने काव्य के समस्त अंगों — काव्य लक्षण, काव्य हेतु, काव्य प्रयोजन, काव्य भेद काव्य की आत्मा (रस-ध्वनि) शब्द शक्ति, गुण, दोष, रीति, अलंकार और छंद का विवेचन अपने ग्रन्थों में किया है। चिन्तामणि, कुलपति, सूरत मिश्र, श्रीपति, देव, दास आदि ऐसे आचार्य हैं। इन्होंने एक अथवा अनेक ग्रंथों के भीतर इन सभी अंगों का विवेचन किया है। विशिष्टांग निरूपक आचार्यों ने काव्य के सभी अंगों को अपने विवेचन का विषय न बनाकर उसके तीन महत्वपूर्ण अंगों, रस, अलंकार और छंद में से एक, दो, अथवा तीनों का निरूपण एक अथवा अनेक ग्रन्थों में किया है।

जहाँ तक काव्य-शास्त्रीय विवेचन का प्रश्न है। सर्वांग निरूपक कवियों का विशेष महत्व है।

सर्वांग निरूपक कवि :- इस वर्ग में आने वाले कवियों की संख्या अधिक नहीं है तथापि विषय की व्यापकता, विस्तृत शास्त्रीय आधार, गंभीर चिंतन, मौलिक उद्भावना प्रवृत्ति आदि बातें ऐसी हैं जो इन रीति निरूपक कवियों को सहज ही ऊंचे स्थान पर स्थापित कर देती हैं। यद्यपि इनका लक्ष्य सामान्य पाठक को विभिन्न काव्यांगों का साधारण ज्ञान मात्र कराना था तथापि इन्होंने रस, ध्वनि अथवा रस ध्वनि को इन्होंने काव्य के जीव के रूप में स्वीकार किया है। इन कवियों पर मम्मट, विश्वनाथ का व्यापक प्रभाव सक्रिय रहा।

इन आचार्य कवियों में कुछ महत्वपूर्ण कवियों पर विचार प्रस्तुत है :-

उदाहरण के लिए चिन्तामणि, आचार्य कवियों में इनका नाम सबसे पहले लिया जाता है। इनका जन्म काटन 1600 ई0 है तथा मृत्यु काल 80-85 के आस-पास है। इन्होंने अपने ग्रन्थ रस विलास में रस का विवेचन किया है। ये भानुदत्त की रस मंजरी, रसतरंगिणी के अतिरिक्त धनंजय के दशरूपक तथा विश्वनाथ के साहित्य दर्पण का आश्रय ग्रहण किया है।

इन्होंने रीति निरूपण को अत्यन्त गंभीरता और निष्ठा के साथ ग्रहण किया है। ये अपने विवेचन में लक्षण देने के पूर्व सभी आधार ग्रंथों में दिये गये लक्षणों को तोलकर देखते हैं, जो उनमें ठीक जंचता है, उसे ग्रहण कर लेते हैं। आवश्यकता के अनुसार फेर बदल भी करते हैं। व्यापक दृष्टि होते हुए भी ये मौलिक योगदान नहीं कर सके हैं। सामान्यतः लक्षण ग्रन्थों के लक्षणों का ब्रजभाषा में अनुवाद किया है। वैसे इनका विवेचन स्वच्छ है। लक्षणों और उदाहरणों के लिए ब्रजभाषा की वृत्ति का भी प्रयोग किया है। रीति निरूपक आचार्यों में जिन्होंने सर्वांग निरूपण किया है, उनमें देव विशेष उल्लेखनीय है।

देव : इनके विवेचन में गुण और दोष दोनों ही स्पष्ट हैं। गुणों में लक्षणों की सुबोधता, स्पष्टता और संक्षिप्तता तथा उदाहरणों को तद्नुरूपता एवं सरसता के साथ अतिरिक्त सबसे महत्वपूर्ण है। ये अपने मत को प्रबल शब्दों में आत्म विश्वास के साथ व्यक्त करते हैं।

इनके चिन्तन में यत्र-तत्र मौलिकता के दर्शन होते हैं। जैसे चित्र काव्य के विषय में व्यक्त यह कथन कितना मौलिक है— 'दधि, घृत, मधु, पावस तजि वायस चाम चबात। इसी प्रकार श्रृंगाराभास में 'प्रेमहीनत्रिय वेश्या है' कहकर मौलिकता का परिचय दिया है। इन्होंने निरस, उदास आदि सात दोषों का वर्णन किया है। वामन ने सम्मत भेदों के आधार पर रीति के भेदों का निरूपण किया है। वीभत्स, शान्त रसों के भेदों आदि की कल्पना, कतिपय नवीन छन्दों का आविष्कार इनके अवदान के रूप में स्वीकार किये जा सकते हैं।

जहाँ तक इनके विवेचन में दोष का प्रश्न है। इनके लक्षणों, उदाहरणों, अस्पष्टता और भ्रान्ति है, इसके साथ ही अव्यवस्था, अशास्त्रीयता एवं असामंजस्य भी है।

उदाहरण के लिए¹ रस विवेचन में एक स्थान पर श्रृंगार वीर और शांत को मुख्य तथा हास्य और भयानक, रौद्र और करुण तथा अद्भुत और वीभत्स को मुख्य तथा क्रमशः हास्य, अद्भुत, करुण और भयानक को इनके आश्रित कहने में जहाँ असामंजस्य दिखाई देता है, वहीं अलंकार विवेचन में कतिपय अलंकारों के लक्षणों में परस्पर भिन्नता अव्यवस्था की परिचायक है। सत्व, वातादि प्रवृत्तियों के आधार पर नायिकाओं के भेदों का आविष्कार अशास्त्रीय है।

इन्होंने रस को महत्व देते हुए अलंकारों एवं नायिका का वर्गीकरण किया है। इसमें दोष आये हैं किन्तु सिद्धान्तों के व्यावहारिक प्रयोग में कुशलता है। अपने रीति निरूपण में सिद्धान्त से रसवादी होने का परिचय जिस प्रकार से दिया है काव्य में उसका निर्वाह अत्यन्त मनोयोग के साथ किया है

देव मैं सीस, बसायो सनेह के भाल मुहम्मद बिंदु के भाख्यौ
कंचुकि में चुपरयो करि चोबा लगाय लियो उरसो अभिलाख्यौ ।।
कै मखतूल गहे गहने रस मूरतियत सिंगार के चाख्यो।
सॉवरे लाल को सॉवरे रूप में नयनन में कजरा करि राख्यो ।।

पीछे उद्धृत पंक्तियों को देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि 'देव रस सिद्धान्त के प्रचल समर्थक हैं। रीतिकालीन जिन आचार्यों ने काव्य शास्त्रीय सिद्धान्तों का निरूपण किया है उनमें दास का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

भिखारीदास : रीति निरूपण के क्षेत्र में आलोचक दृष्टि एवं मौलिक चिन्तन इनके विवेचन की महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं। रीतिकाल में ये सबसे पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने संस्कृत काव्य-शास्त्र के प्रकाश में अपने पूर्ववर्ती हिन्दी काव्य का सम्यक् अध्ययन कर उनमें तदनु रूप उदाहरणों के चयन

द्वारा अपनी आलोचक दृष्टि का केवल परिचय नहीं दिया, अपितु आधुनिक आलोचना का शिलान्यास किया।

काव्य के प्रयोजनों के प्रसंग में प्रत्येक के भीतर आने वाली हिन्दी विशिष्ट रचनाओं के रचयिताओं का नामोल्लेख किया। विभिन्न काव्य दोषों के लिए हिन्दी कवियों की रचनाओं का उदाहरण चयन कर प्रस्तुत किया। इन्होंने 91 अर्थालंकारों, 12 मूल अलंकारों के आधार पर वर्गीकरण किया। वामन सम्मत 10 गुणों का चार वर्गों में विभाजन किया। अवस्थानुसार नायिकाओं के स्वाधीन पति का आठ भेदों को दो वर्गों में विभक्त किया, इतना ही नहीं श्रृंगार के सम और मिश्रित, सामान्य और संयोग तथा नायक और नायिका जन्य के नाम से नये ढंग से भेद प्रस्तुत कर अपने ज्ञान की गहराई का परिचय दिया है। ब्रज भाषा काव्य की सबसे बड़ी विशेषता तुक को सर्वप्रथम काव्यांग के रूप में ग्रहण कर उसका विवेचन किया। इन्होंने नवीन छंद का निरूपण किया। हाँ, इनकी सारी बातों का समर्थन नहीं किया जा सकता। इनके विवेचन में परम्परा उल्लंघन के साथ अव्यवस्था भी दिखाई देती है।

इनके काव्य-शास्त्रीय विवेचन के कतिपय उदाहरण नीचे प्रस्तुत किये जाते हैं –

इनके ख्याति का कारण काव्य निर्णय ग्रन्थ है, इस ग्रन्थ में काव्य प्रयोजन को इन्होंने इस प्रकार व्यक्त किया है² –

एक लहै तप पुंजन के फल ज्यो तुलसी अरु सूर गोसाईं।
एक लती बहु संपत्ति केशव भूषन ज्यों बनबीर बडाई
एकन्ह को जस हीं सो प्रयोजन है, रस खानि रहीम की नाई।
दास कवितन्ह की चरचा बुधिवन्तन को सुख दैसब ठाई ।।

काव्य निर्णय ग्रंथ में 25 उल्लास है और 1210 पद्य। पहले उल्लास में मंगलाचरण, आश्रय दाता की प्रशंसा के अतिरिक्त अपने पूर्ववर्ती संस्कृत और हिन्दी काव्य-शास्त्रियों का नामोल्लेख किया है। 10वें पद्य से वास्तविक ग्रन्थ का आरंभ होता है। 10वें पद्य से 13वें पद्य तक काव्य प्रयोजन काव्य कारण तथा काव्य के विभिन्न अंगों का उल्लेख किया गया है।

दूसरे उल्लास में शब्द शक्ति का निरूपण है। तीसरे उल्लास का नाम 'अलंकार मूल वर्णन' है। यहाँ मूल का अर्थ आधार है। चौथे में रस भाव आदि का वर्णन है। पाँचवें उल्लास में 'रसवत' आदि सात अलंकारों का छठें और सातवें उल्लास में क्रमशः ध्वनि और गुणीभूत व्यंग्य का निरूपण है। आठवें से इक्कीसवें उल्लास तक अलंकारों का विस्तृत विवेचन है। इसी के अन्तर्गत गुण प्रकरण का भी उल्लेख है। बाइसवें उल्लास का नाम तुक वर्णन है। अन्तिम तीन उल्लासों में दोष प्रकरण है। इसके बाद रामनाम की महिमा का वर्णन है।

काव्य निर्णय के ग्रंथों में दास ने मम्मट, विश्वनाथ और अप्पय दीक्षित और से जयदेव के ग्रंथों से सहायता ली है। इस क्रम में केशव तथा चिन्तामणि से ली गई सहायता भी उल्लेखनीय है। दास अपने छंदार्णव ग्रन्थ में छन्दः विस्तृत विवेचना करते हैं, इसमें पन्द्रह तरंगे हैं। छंद शास्त्रीय ग्रंथों में इसका विशिष्ट स्थान है।

इन सारी रचनाधर्मिताओं के साथ ये उच्च कोटि कवि भी हैं। इनका मुख्य विषय शृंगार है।

समग्रतः भिखारीदास की काव्यशास्त्रीय मान्यताएँ हिन्दी कवियों के लिए नई आधारभूमि तैयार करती हैं।

सर्वांग निरूपक कवियों के अतिरिक्त के कवियों का एक ऐसा वर्ग भी है, जो रस, अलंकार और छंद में किसी एक, दो या तीनों का निरूपण करते हैं। ये विशिष्टांग निरूपक कहे जाते हैं। यहाँ उल्लेखनीय है कि इन कवियों ने रस में शृंगार को विशेष महत्व दिया है। शृंगार रस निरूपक कवि के रूप में मतिराम विशेष उल्लेखनीय हैं, उनकी निम्न पंक्तियों में शृंगार रस का बोध स्पष्ट हो जायेगा³ –

कुन्दन को रंग फीको लगे झलकै अति अंगन चारु गोरार्ई ।
आँखिन में अलसानि चितौनि में मंजु विलासन की सरसार्ई ॥
को बिन मोल विकारत नहीं, मतिराम लहै मुसकानि मिठार्ई ।
ज्यों ज्यों निहारिये नेरे हवै नैनन, त्यो त्यो खरी निकरै सो निकार्ई ॥

अलंकार वर्णन वाले कवियों के केन्द्र में नारी सौन्दर्य आधार रहा है। नायिका वर्णन में कवि अलंकार का वर्णन करते हैं। जसवंत सिंह, पद्माकर, विहारी, श्रमण इस सन्दर्भ में विशेष उल्लेखनीय है।

इसके अतिरिक्त छन्द निरूपण का कार्य भी इस युग में हुआ है। छन्दों के निरूपक कवियों में मुरलीधर, भूषण, सुखदेव मतिराम, रामसहाय आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

तत्त्वतः यहाँ रीति युगीन सारी बातों के विवेचन का अवसर नहीं है। यहाँ केवल इतना ही बताना है कि रीति युग में संस्कृत काव्यशास्त्र का किस प्रकार अनुशरण करने का प्रयास किया गया। रीतिकालीन आचार्यों ने रस, अलंकार, नायिका भेद, छंद निरूपण जो कार्य किया उसमें किन बातों का प्रभाव आधुनिक आलोचना पर पड़ा।

समीक्षा :-

काव्यशास्त्र के क्षेत्र में मौलिकता की दो कोटियाँ हैं: एक के अन्तर्गत नवीन सिद्धान्तों की उद्भावना और दूसरी के अन्तर्गत प्राचीन सिद्धान्तों का पुनराख्यान आता है। हिन्दी के रीति आचार्य निश्चय ही किसी नवीन सिद्धान्त का आविष्कार नहीं कर सके। किसी ऐसे व्यापक आधारभूत सिद्धान्त का प्रतिपादन जो काव्य चिन्तन को नवीन दिशा प्रदान करता, सम्पूर्ण रीतिकाल में संभव नहीं हुआ।

इन कवियों ने काव्य के सूक्ष्म अवयवों के वर्णन में कहीं-कहीं नवीनता का प्रदर्शन किया है, परन्तु इन उद्भावनाओं का आधार स्रोत किसी न किसी संस्कृत ग्रंथ में मिल जाता है। यहाँ नवीनता प्रदर्शन विस्तार मोह में हुआ है। संस्कृत काव्यशास्त्र में स्वयं ही विस्तार हो चुका था। सिद्धान्त विवेचन के लिए यहाँ अवकाश था। कवि के वाह्य कर्म का विवेचन हो चुका था। उसके आन्तरिक कर्म के विवेचन के लिए अवकाश था, किन्तु इस क्षेत्र में कुछ नहीं किया गया। लक्षणों के लिए इन आचार्यों ने

संस्कृत काव्यशास्त्र का सहारा लिया। उदाहरण अपने दिये। इनका विवेचन उलझा हुआ था। इनका ज्ञान विषय में निर्भ्रान्त नहीं था इसलिए साहित्य के प्रश्नों को सूक्ष्म समाधान संभव नहीं था।

इन कमियों के लिए इस काल की परिस्थितियां भी उत्तरदायी थीं। एक तो संस्कृत काव्य-शास्त्र की परम्परा इस काल तक आते-आते निर्जीव हो चुकी थी। उस समय तक पण्डित राज जगन्नाथ को छोड़कर कोई मौलिक आचार्य नहीं रह गया था। उस युग में कवि शिक्षा का ही प्रचार अधिक रह गया था। यह प्रचार भी रसिकों को काव्य शिक्षा देने के लिए था। यह प्रचार जिस वातावरण में विकसित हो रहा था, उसमें रसिकता का ही प्रधान्य था। रसिक श्रीमत्तों को अपने ज्ञान व्यक्तित्व के परिष्कार के लिए केवल सामान्य अपेक्षित था।

गहन प्रश्नों पर विचार करने की उनमें शक्ति न थी। गहन प्रश्नों पर विचार करने की न उनमें शक्ति थी न धैर्य। इसके अतिरिक्त विचार विश्लेषण के लिए गद्य का सम्यक विकास नहीं हुआ था। ब्रजभाषा का गद्य इतना विकसित नहीं था, जिसमें चिन्तन एवं विश्लेषण सम्यक रूप से किया जा सकता था। इस पृष्ठभूमि में ही इन आचार्यों का मूल्यांकन करना समीचीन है।

काव्यशास्त्र के क्षेत्र में आचार्यों के तीन वर्ग माने गये हैं—

1. एक उद्भावक आचार्य जिन्हें मौलिक सिद्धान्त प्रतिपादन का श्रेय प्राप्त है। जैसे भरत, वामन, आनन्दवर्द्धन, भट्टनायक, अभिनवगुप्त, कुन्तक आदि।
2. व्याख्या आचार्य जो नवीन सिद्धान्तों की उद्भावना न कर प्राचीन सिद्धान्तों का आख्यान करते हैं। इनका कर्म मूल सिद्धान्तों को स्पष्ट और विशद करना है। इन आचार्यों में मम्मट, विश्वनाथ और पंडितराज जगन्नाथ उल्लेखनीय हैं।
3. तीसरा वर्ग उन कवि शिक्षकों का है, जिनका लक्ष्य अपने स्वच्छ व्यावहारिक ज्ञान के आधार पर सरस सुबोध, पाठ्य ग्रन्थ प्रस्तुत करना रहा है। ये आचार्य मौलिक उद्भावना अथवा शास्त्र के गहन चिन्तन के आकांक्षी नहीं हैं। जयदेव, अप्पय दीक्षित, केशव मिश्र, भानुदत्त आदि इस श्रेणी के आचार्य हैं।

हिन्दी के रीतिकालीन आचार्य प्रथम श्रेणी में नहीं आते, उन्होंने किसी व्यापक आधारभूत काव्य सिद्धान्त का प्रवर्तन नहीं किया। ये आचार्य संस्कृत आचार्यों की भाँति प्रतिभाशाली नहीं थे। दूसरी श्रेणी में सर्वांग रूपक आचार्यों की गणना की जा सकती थी, किन्तु खण्डन मंडन तथा स्पष्ट एवं विशद व्याख्यान के अभाव में संक्षिप्त निरूपण के आधार पर ये इस स्थान के भी अधिकारी नहीं हैं, अंततः इन्हें तृतीय वर्ग के अन्तर्गत ही स्थान दिया जा सकता है।

वे न तो शास्त्रकार हैं न तो शास्त्र भाष्यकार उनका लक्ष्य तो शास्त्र की परम्परा को सरस रूप में हिन्दी में अवतरित करना था इसमें वे बहुत अंशों तक सफल थे।

इस प्रकार हिन्दी के रीति आचार्यों का अवदान काव्यशास्त्र की परम्परा को हिन्दी में सरस रूप में अवतरित करने का है। इस प्रकार हिन्दी में भारतीय काव्य शास्त्र की सरस परम्परा का आगमन हुआ। इसमें दोष हो सकता है, किन्तु हिन्दी को ही यह परम्परा प्राप्त हुई।

इस परम्परा का प्रभाव हिन्दी आलोचना पर पड़ा। अन्य भाषाओं में जहाँ संस्कृत आलोचना से वर्तमान आलोचना का सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाता है। वहाँ हिन्दी और मराठी में यह सूत्र विद्यमान है। इस प्रकार हमारी वर्तमान आलोचना की समृद्धि में रीतिकारों का योगदान उल्लेखनीय है। बौद्धिक हास के अंधकार युग में काव्य के बुद्धि पक्ष को यह अवदान निश्चित रूप से मूल्यवान है।

इस सन्दर्भ में यह तथ्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है। काव्य-शास्त्र की परम्परा में रस के ऊपर जो ध्वनि का प्रभुत्व था। इस युग में उससे मुक्ति मिली। काव्यशास्त्र के इतिहास से प्रमाणित होता है कि ध्वनिवाद सर्वमान्य सिद्धान्त के रूप में प्रतिष्ठित रहा है। हिन्दी के रीतिकार आचार्यों ने रस को परतंत्रता से मुक्त किया। रसरज श्रृंगार की एक ऐसी अविच्छिन्न धारा प्रवाहित की जो श्रृंगारवाद रूप में प्रतिष्ठित हो गयी। इन आचार्यों ने आनन्द की पुनः प्रतिष्ठा की।

इस प्रकार रीति युगीन काव्य शास्त्रीय परम्परा से हिन्दी के आचार्यों को प्रेरणा मिली तथा हिन्दी आलोचना की प्रतिष्ठा में वह अमोघ प्रेरणा बनी।

संदर्भ सूची :

1. डॉ० नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 299
2. सं० डॉ० नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, षष्ठ भाग, पृ० 273
3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 194 प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली, सं० 2015 ई०

प्राचीन नगरी काशी का सांस्कृतिक और धार्मिक महत्व

चंद्रकला राय

शोध छात्रा

इतिहास विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर

सारांश:

काशी जिसे वर्तमान में 'वाराणसी' अथवा 'बनारस' के नाम से जाना जाता है। यह प्राचीन जीवन्त नगरों में से एक है, जिसकी सांस्कृतिक गरिमा आज भी अखण्ड रूप में विद्यमान है। गंगा के बाएँ तट पर स्थित घाटों से युक्त यह नगरी अपनी सांस्कृतिक चेतना का प्रतिनिधित्व करती हुई दिखाई देती है। इसके स्वरूप की विशिष्टता प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक दोनों रूपों में जीवित है। सांस्कृतिक धरोहर के रूप में प्रतिष्ठित इस नगर के पूजन स्थलों, देवालयों उनसे सम्बन्ध भवनों व स्मारकों, प्रदक्षिणा मार्ग एवं तीर्थयात्राओं के पथ और यहाँ पर मनाये जाने वाले व्रत या त्यौहार इसकी पहचान हैं। हिन्दू परंपरा में उच्च स्थान से अभिसिंचित इस नगर ने इतिहास के अनेक झंझावतों के बावजूद अपने सांस्कृतिक परम्परा को अक्षुण्ण रखा। वाराणसी अथवा काशी के बारे में अनेक विद्वानों ने समय-समय पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। इस प्रसंग में मार्कट्वेन का कहना है कि बनारस इतिहास, परम्पराओं, दन्त कथाओं से भी प्राचीन है। इस नगर के राजघाट के पुरातात्विक उत्खनन से प्राप्त प्राचीनतम अधिवासों का अस्तित्व 800 ईसा पूर्व एवं पंच क्रोशी मार्ग के बाएँ तट पर अवस्थित वर्तमान पहड़िया मण्डी के करीब अकथा नामक पुरास्थल के पुरातात्विक उत्खनन के प्रथम सांस्कृतिक काल से प्राप्त रेडियो कार्बन तिथि ईसा पूर्व 1750 तथा 1450 ईसा पूर्व का पाया जाना ट्वेन के कथन की पुष्टि करता है। वैज्ञानिक अन्वेषणों ने इसे विश्व के प्राचीनतम और निरन्तर जीवन्त बने रहे नगर के रूप में सिद्ध किया है। यह नगर हिन्दू, बौद्ध, जैन एवं अन्य धर्मों का केन्द्र रहा है। यह अपने अन्दर भारतीय संस्कृति को संजोये हुए है। काशी का भारतीय संस्कृति में महान योगदान एवं महत्व है।

काशी का महत्व :

भारत की प्राचीनतम एवं पवित्र नगरी काशी भारतीय संस्कृति, साधना, साहित्य, धर्म तथा विद्वता के साथ-साथ मोक्षदायिनी नगरी के रूप में प्रसिद्ध है। काशी परम्परा और इतिहास दोनों ही दृष्टियों से विश्व की प्राचीनतम नगरियों में से एक है। मोटे तौर पर देखा जाय तो यहाँ वैदिक काल से आज तक भारतीय संस्कृति के समन्वयात्मक स्वरूप की झँकी का निदर्शन प्राप्त होता है। काशी को वाराणसी और बाद में बनारस नाम से भी जाना गया। वस्तुतः काशी और वाराणसी एक दूसरे के पर्यायवाची रूप से प्रयुक्त हुए हैं। महाकाव्यों, बौद्ध जातकों एवं जैन ग्रन्थों में वाराणसी के अनेकशः उल्लेख हुए हैं। इनमें वाराणसी का स्वतंत्र और काशी की राजधानी दोनों ही रूपों में उल्लेख हुआ है। गंगा के बाएँ तट पर स्थित यह नगर प्राचीन काल से ही सर्वधर्म समन्वय की स्थली रही है जिसे यहाँ की धार्मिक और सांस्कृतिक परम्परा तथा मंदिरों एवं मूर्तियों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। ब्राह्मण, बौद्ध एवं जैन धर्मों से सम्बन्धित कलात्मक अवशेष सारनाथ, राजघाट, अकथा एवं कन्दवा (कर्दमेश्वर मन्दिर) तथा वाराणसी के विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त हुए हैं। बुद्ध की प्रथम उपदेश स्थली सारनाथ से मौर्यशासक अशोक (300 ई0पू0) के काल से 12वीं 13वीं ई0 के बीच की ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित मूर्तियाँ भी उपलब्ध हुई हैं। वहीं राजघाट के पुरातात्विक उत्खनन से 800 ईसा पूर्व से 13वीं शती ई0 मध्य के पुरावशेष प्राप्त हुए हैं। यहाँ से शुंगकालीन यक्ष मूर्ति तथा गुप्तकालीन शिव-पार्वती की मृणमूर्तियाँ तथा छठी से आठवीं

शती ई० के मध्य की अजितनाथ, नेमिनाथ और महावीर तीर्थकरों की लांछन और यक्ष-यक्षी युगलों से युक्त मूर्तियाँ उल्लेखनीय है।

काशी में शिव की प्रधानता के कारण ही यहाँ 17वीं से 20वीं शती ई० के मध्य अनेक छोटे बड़े शिव मन्दिरों को निर्मित किया गया, जिनके गर्भगृह में मुख्यतः शिवलिंग प्रतिष्ठित है जबकि उनकी भित्तियों पर चारों ओर क्रमशः शक्ति (महिषमर्दिनी या अन्नपूर्णा) विष्णु, लक्ष्मीनारायण, सूर्य (चतुर्भुज एवं आदित्य रूप में) एवं गणेश (सामान्य एवं नृत्य) की मूर्तियों का अंकन है जो काशी में पंचायतन पूजन या पंचोपासना की लोकप्रियता को प्रमाणित करते हैं।

ब्राह्मण धर्म के विभिन्न देवों की निवासस्थली के प्रमाण में स्कन्दपुराण के काशीखण्ड की उस कथा का उल्लेख किया जा सकता है, जिसके अनुसार किसी समय शिव तथा अन्य देवता दिवोदास को काशी का राज्य सौंपकर यहाँ से हाबर चले गये। किन्तु शिव का काशी के प्रति लगाव पूर्ववत् बना रहा और यहाँ पुनः आने के लिए तथा दिवोदास को धर्मच्युत करने के उद्देश्य से देवियों (64 योगिनियों), सूर्य, ब्रह्मा, गणेश और विष्णु को अलग-अलग काशी भेजा। विष्णु के पूर्व काशी आने वाले सभी देवता आफल होकर काशी में ही बस गये। अन्त में विष्णु इस कार्य में सफल हुए, तत्पश्चात् शिव काशी लौटे। इस कथा में वर्णित देवताओं में ब्रह्मा को छोड़कर अन्य सारे देवता पंचोपासना के अन्तर्गत आते हैं।

लोकधर्म से सम्बन्धित यक्ष, नाग तथा वृक्ष पूजन की परम्परा भी प्राचीन काल से समृद्ध रही है जिसे आज भी काशी की सांस्कृतिक परम्परा में देखी जा सकती है। काशी की धार्मिक एवं सांस्कृतिक समन्वय की अनुपम झाँकी आदिकेशव से अस्सी तक फैले हुए लगभग 79 घाटों की श्रृंखला में भी देखी जा सकती है। इन घाटों का निर्माण मुख्यतः 17वीं से 19वीं शती ई. के मध्य किया गया है जिसमें सम्पूर्ण भारत वर्ष के शासक वर्गों का सहयोग रहा है जिसके फलस्वरूप इन घाटों के मन्दिरों, मठों में पूरे भारतवर्ष का धार्मिक और सांस्कृतिक स्वरूप विद्यमान है।

उपर्युक्त वर्णित तथ्यों के आलोक में यह कहा जा सकता है कि अपने धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्वरूप के कारण ही काशी में सम्पूर्ण जगत ही सूक्ष्म रूप में उपस्थित है, पारम्परिक मान्यता के अनुसार भारत के सभी पवित्र स्थल और नदियों तथा देवगण काशी में निवास करते हैं। मत्स्यपुराण में काशी को अविमुक्त क्षेत्र कहा गया है जिसे शिव कभी नहीं छोड़ते। भारत की सांस्कृतिक राजधानी काशी के महात्म्य का विस्तृत विवेचन पुराणों में हुआ है। स्कन्दपुराण के काशीखण्ड, ब्रह्मवैवर्त पुराण के काशी रहस्य के अतिरिक्त कृत्यकल्पतरु, विविध तीर्थकल्प, कल्पप्रदीप, प्रबन्धकोश और नारायण भट्ट कृत त्रिस्थली सेतु एवं वरदराज के गीर्वाणपदमंजरी से महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। काशी की धार्मिक और सांस्कृतिक महत्ता ने प्राचीन काल से ही विभिन्न धर्माचार्यों एवं मनीषियों द्वारा काशी की धर्म यात्रा ध्यान एवं चिन्तन मनन के लिए प्रेरित किया।

काशी के धार्मिक और सांस्कृतिक महत्त्व के कारण ही लगभग 10वीं से 12वीं शती ई. के मध्य कई ऐसे शिलापट्ट भी निर्मित किये गये जिन्हें वाराणसी के बाहर वाराणसी शिलापट्ट के रूप में स्थापित किया गया।

ग्वालियर, झाँसी एवं लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित तथा काशी से प्राप्त कुछ वाराणसी शिलापट्टों पर मध्य में गंगा और वाराणसी देवी तथा अन्य भाग पर योनिपीठ से युक्त शिवलिंग आदित्य, केशव, शक्ति तथा शिव के कुछ विशिष्ट स्वरूपों एवं पंच विनायकों की आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं। वाराणसी से बाहर स्थापित शिलापट्ट और उनका पूजन काशी यात्रा का फल प्रदान करता था। नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी ने इस प्रकार के शिलापट्टों का अध्ययन कर वाराणसी के बाहर के लोगों की दृष्टि में काशी के धार्मिक महत्त्व को उजागर किया है। वाराणसी शिलापट्टों के निर्माण की इस परम्परा का उल्लेख 13वीं शताब्दी में भुवनदेव कृत अपराजितपृच्छ4 से भी समर्थित है। इसके अनुसार वाराणसी शिलापट्ट पर 14 शिवलिंग, एकादशरुद्र द्वादश आदित्य, द्वादश गणपति, नवदुर्गा, पाँच लोकपाल, तीन अग्नि, दिकपाल, आठ मातृका, चार समुद्र गंगा और मध्य में पद्मासन में विराजमान वाराणसी देवी को उत्कीर्ण करने का विधान है। इस ग्रन्थ में यह भी उल्लेख है कि वाराणसी पट्टों के दर्शन से वाराणसी

वास का पुण्य मिलता है। साथ ही इसके पूजन से नित्य गंगा स्नान और पूजन का फल तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है। जैन साहित्य में काशी में यक्ष आयतन के भी सन्दर्भ मिलते हैं। उतराध्ययन निर्युक्ति में गंडितिंदुक नामक यक्ष का उल्लेख मिलता है। मत्स्यपुराण में हरिकेश यक्ष एवं महायक्ष कुबेर के संदर्भ मिलते हैं।

बुद्ध के समय काशी वाणिज्य एवं व्यापार का भी एक प्रमुख केन्द्र था। यह नगर स्थल तथा जल मार्गों द्वारा भारत के अन्य नगरों से जुड़ा था। बौद्ध ग्रन्थों में काशी से वैशाली और राजगृह जाने वाले मार्गों का उल्लेख हुआ है। काशी के व्यापारियों के समुद्र पार जाने के उल्लेख प्राप्त होते हैं। महावग्ग में शक्ति सम्पन्न काशिराज वृहद्रथ को विपुल धन का स्वामी, भोग विलास की सामग्री से परिपूर्ण और बहुत बड़ी सेना का स्वामी बताया गया है। बुद्ध के समय काशी अपने सुन्दर और बहुमूल्य वस्त्रों के लिए विख्यात थी। जातकों में काशी के बने वस्त्रों को 'काशिकत्तम' तथा 'कासीय' कहा गया है। वाराणसी का वस्त्र इतना प्रसिद्ध था कि बुद्ध का मृत शरीर यहाँ से निर्मित कपड़े में लपेटा गया था। काशी में सुगन्धित द्रव्यों का भी व्यापार होता था। जातकों में काशिकचन्दन का नाम आया है। काशी विलेपन जैसे शब्द से किसी इत्र जैसे द्रव्य का ज्ञान होता है। जातकों से पता चलता है कि काशी काष्ठ व्यवसाय के लिए भी प्रसिद्ध था। एक जातक में ऐसा उल्लेख हुआ है कि ब्रह्मदत्त के शासन काल में बनारस से थोड़ी ही दूर पर बढईयों का एक गाँव था जिसमें पाँच सौ परिवार रहता था। यहाँ के बढई एक दो या कई मंजिलों वाले भवन बनाने में निपुण थे। वाराणसी में हाथी दांत का व्यापार भी उन्नत अवस्था में था। जातकों के ज्ञात होता है कि नगर में दन्तकार वीथिका थी जहाँ दन्तकार चूड़ी इत्यादि का निर्माण करते थे। वाराणसी के निवासी उत्सवप्रिय थे। महाजनपद युग में दीपावली एक प्रमुख त्यौहार था। एक जातक में ऐसा उल्लेख है कि इस अवसर पर लोग विशेषकर स्त्रियाँ केसरिया रंग के वस्त्र पहनकर बाहर निकलती थीं। छत्र मंगल दिवस यहाँ का दूसरा त्यौहार था। इस अवसर पर नगर को खूब सजाया जाता था और राजा की सवारी निकलती थी। हस्तिमंगल वाराणसी का प्रसिद्ध त्यौहार था। इस उत्सव में ब्राह्मण हस्ति सूत्र का पाठ करते थे और शुभ दाँतों वाले सौ हाथी इस उत्सव में भाग लेते थे। इसके अतिरिक्त मंदिरोत्सव भी मनाया जाता था जिसमें सुरापान की व्यवस्था होती थी।

बौद्ध, शैव एवं जैन धर्मों के साथ-साथ काशी में जनसाधारण में प्रचलित लोकधर्म के अन्तर्गत यक्ष, नाग एवं वीर पूजा का भी प्रचलन था जिसके प्रमाण आज भी स्थानों के नामों के सन्दर्भ एवं यत्र-तत्र बिखरे हुए भग्नावशेष में प्राप्त हैं। राजघाट से प्राप्त त्रिमुख यक्ष आकृतियों से युक्त पहली शती ई.पू. का स्तम्भ भी प्राप्त हुआ है। इस काल में वाराणसी के क्षेत्रपाल के रूप में महाकाल का उल्लेख मिलता है। राजघाट से प्राप्त कुषाणकालीन बलराम की आकृति वैष्णव धर्म की उपस्थिति पर प्रकाश डालती है।

गुप्तकाल में सारनाथ कला एवं धर्म के क्षेत्र में चरमोत्कर्ष पर पहुँचा। परमभागवत की उपाधि धारण करने वाले वैष्णव धर्मावलम्बी गुप्त शासकों के काल में ब्राह्मण धर्म का भी पुनरुत्थान हुआ। फलस्वरूप वाराणसी में पर्याप्त संख्या में ब्राह्मण देवमूर्तियाँ बनीं। इनमें शिव दक्षिणामूर्ति, अर्द्धनारीश्वर, गोवर्द्धनधारी कृष्ण एवं कार्तिकेय की ओजपूर्ण मूर्तियाँ निर्मित हुईं। तत्कालीन सारनाथ का वर्णन चीनी यात्री फाहियान ने किया है। सारनाथ में मुख्यतः बौद्ध तथा वाराणसी के अन्य क्षेत्रों से ब्राह्मण एवं जैन धर्मों से सम्बन्धित गुप्तकालीन मूर्तियाँ मिली हैं जो गुप्त शासकों के धर्मसहिष्णु होने की परिचायक हैं। राजघाट से प्राप्त गुप्तकालीन मृण्मुद्राओं से यह ज्ञान होता है कि उस समय बौद्ध एवं शैव दोनों ही धर्मों का विकास हो रहा था। स्कन्दगुप्त का वाराणसी जनपद से काफी सम्बन्ध मालूम पड़ता है क्योंकि उसके राज्यकाल में निर्मित विष्णु मंदिर के अवशेष गाजीपुर के निकट भीतरी नामक ग्राम से प्राप्त हुआ है। इस मन्दिर की व्यवस्था हेतु एक गाँव दान में दिया गया था।

काशी में आज भी प्राचीन धर्म, संस्कृति एवं कला का समन्वय मिलता है। संस्कृति की परम्परा यहां आज भी जीवंत है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विश्व के प्राचीनतम नगर काशी का धार्मिक एवं सांस्कृतिक रूप से महत्वपूर्ण स्थान है।

संदर्भसूची :

1. हॉजेज : ट्वेन इन इण्डियाय फास्टरय ए जर्नी फ्राम बंगाल टु इंग्लैण्ड थ्रू द नार्थन पार्ट आफ इण्डिया
2. मार्क ट्वेन : 1898 फ्लोइंग द दक्वटे र : अ जर्नी उराउण्ड द वर्ल्ड, दि अमेरिकन पब्लिकेशन कम्पनी
3. नरायन ए.के. एवं टी.एन. रायय 1976, एक्सकवशेन्स एटे राजघाट, (1958-1960-1965) भाग-1 दि कटिंग स्ट्रोटिफिकेशन एण्ड स्ट्रक्चर्स, पृ. 191
4. जायसवाल विदुला : 2009 "एन्शाएण्ट वाराणसी एने आकियोलॉजिकल पर्सपेक्टिव" (एक्सकवशेन्स एट अकथा) नई दिल्ली, पृ. 2-31
5. सिंह प्रतिभा, शिव काशी पौराणिक परिप्रेक्ष्य एवं वर्तमान संदर्भ, पृ. 105
6. एक. डायना एल. 1983, बनारस दि सिटी ऑफ लाइट, पेग्विन इण्डिया, नई दिल्ली, पृ. 387
7. स्कन्दपुराण, काशी खण्ड, 26६7
8. स्कन्दपुराण, काशी खण्ड, 26६7
9. आप्टेय संस्कृत हिन्दी कोश, पृ. 274
10. रामकृष्णदास एवं अन्य, काशी प्रदर्शन, पृ. 1
11. कनिधम, एशिआण्ट जियोग्राफी, पृ. 499
12. मोतीचन्द्र काशी का इतिहास, पृ. 4
13. महाभारत 6/10-3
14. पद्मपुराण, काशी महात्म्यय 17.5, मत्स्यपुराणय पृ. 39
15. मोतीचन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. 4
16. वही पृ. 4
17. संक्षिप्त स्कन्दपुराण, पृ. 795 (काशी खण्ड) मत्स्य पुराण, अ. 183 श्लोक 62
18. जाबालोपनिषद्, खण्ड-2
19. स्कन्दपुराण, काशी खण्ड, 26६7
20. लिंगपुराण, 93६45-46
21. मत्स्य पुराण, अ. 189 श्लोक 13-14
22. काशी खण्ड, 30६104
23. पद्मपुराण, 1६33-14
24. संक्षिप्त स्कन्दपुराण, पृ.766
25. मुकुल्लिनी, 4.15
26. जातक सं. 5६54, 6.165
27. वही, 3६39
28. अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काँची, अवन्तिका । पुरी, इरावती, चौव सप्तैता मोक्षदायिका ।
29. सिंह रामलोचन, बनारस ए स्टडी इन अर्बन ज्योग्राफी, पृ. 141
30. महाभाष्य, भाग-2 पृ. 413, अष्टध्यायी 5, 3, 38
31. पतंजलि महाभाष्य, 4, 3, 72
32. महाभारत, अनुशासन पर्व, 13, 39. 18 वनपर्व, 8.39
33. जातक भाग-1, सं. 63
34. जातक भाग-2, सं. 124
35. जातक भाग-3, सं. 451, 434

डा. रवीन्द्र उपाध्याय के गीतों में राग-विराग

देवीदत्त मालवीय

शोधार्थी (हिन्दी)

भीमराव अम्बेदकर बिहार वि.वि., मुजफ्फरपुर

जब व्यक्ति भावावेशित होता है तब अपने उदगारों को काव्य की भाषा में प्रकट करता है फिर गीत का जन्म होता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व और उसकी आंतरिक अनुभूतियों तथा भावों का जीवंत भाषा में व्यक्त करने की क्षमता गीति काव्य की विशिष्टता है। गीतकार की अनुभूतियों की तीव्रता और व्यक्तिगत भाव , गीत में रागात्मकता के तत्व भर देते हैं। संवेदनाओं को झंकृत करने वाले गीत दीर्घकाल तक मानस पटल पर झंनकृतियाँ छोड़ जाती हैं और कभी-कभी तो एक गीत व्यक्ति के संपूर्ण जीवन में ही परिवर्तन ला देता है। यही कारण है कि सूर , तुलसी और मीरा द्वारा रचित भक्ति परक गीत आज भी मानव जीवन के उदास विचार तथा सुकोमल संवेदनाओं को प्रभावित किए हुए हैं । समय के साथ जीवन मूल्य बदलते हैं , गीतकार का नजरिया बदलता है मानवीय संवेदनाओं के स्तर परिवर्तित होते हैं और इन सब में बदलाव के कारण रसिक श्रोताओं एवं पाठकों की मानसिक अवधारणाएँ भी बदल जाती हैं।¹

सच्चा गीतकार वही होता है , जो समाज का पथ प्रदर्शक बन समाज में नया स्वर भर दे, नई चेतना जगा दे। हारे थके उदास जानों में नये प्राण भर दे। गीतकार डॉ.रवीन्द्र उपाध्याय भी एक पथ प्रदर्शक गीतकार हैं। इन्होंने मानवीय जीवन में आने वाले सुख और दुःख दोनों को अंगीकार करते हुए जीत में सुख और दुःख दोनों ही के बारे में लिखा है। केवल सुख के बारे में नहीं केवल दुःख के बारे में नहीं। समकालीन गीतकारों में डॉ रवीन्द्र उपाध्याय की अपनी एक अलग पहचान है। ओज का प्राकट्य उनके गीतों की विशेषता है ।उन्होंने गीतों में नवाचारो का प्रयोग करते हुए भारतीय दर्शन से उसे जोड़ा है। गीतों में नये-नये आयामों का बोध कराते हुए गीतों को ऊंचाई दी है। इनके गीतों में संयोग -वियोग , धूप - छांव की रागात्मक अनुभूतियाँ परिलक्षित होती हैं। उनके गीतों में प्रकृति नये रंग -रूप , नई उमंग के साथ दिखाई देती है। उपाध्याय जी के गीतों में आत्मविश्वास एवं दर्द के प्रति पूरी सहानुभूति तो दिखाई देती है , साथ ही गीतों के भावो को अनुभव के ताजगी से पूरे उमंग के साथ प्रस्तुत किया है और यही कारण है कि इनके गीत पाठकों को आकृष्ट तथा श्रोताओं को वाह,वाह करने पर मजबूर कर देते हैं।

डॉ रवीन्द्र उपाध्याय के अधिकांश गीत संवेदना के धरातल पर विभिन्न भावानुभूतियों पर स्थापित होकर भी एक समानता रखते हैं। इन गीतों में सामाजिक संदर्भ का विस्तृत समायोजन है, जो गीतों में यथार्थ स्थापित करने का यथेष्ट प्रयास करता है। भावना में रचे-पके के गीतों का रिश्ता अधिक अर्थों में व्यक्ति के दुःख-दर्द, उसकी निराशा-हताशा से होता है, और इन गीतों में जो सौंदर्य है, यह स्थितियों का सूक्ष्म अभिनव सौंदर्य है। उपाध्याय जी के गीत इतने संवेदनशील हैं कि यह समय, परिस्थिति के किसी तात्कालिक परिवर्तन के प्रभावी क्षण को अपनी लय में तुरंत ग्रहण कर लेते हैं।

डॉ रवीन्द्र उपाध्याय के गीत संग्रह 'धूप लिखेंगे- छांव लिखेंगे' में पूर्ण रूप से गीति तत्वों का समावेश है जीवन के प्रत्येक पहलुओं को बड़ी सजगता के साथ आप गीत-संग्रह में प्रस्तुत करते हैं। जीवन में आने वाले झंझावातों से टकराते हुए गीतकार निरंतर मस्ती के साथ जीवन पथ पर अग्रसर होते दिखाई देते हैं-

" सच हुआ नहीं सपना
सच क्या होगा
सपना है ।
चाहा करना सच स्वप्न
यही क्या कम है?
आहत, मर्माहत हुआ
नहीं कुछ गम है
कुंदन बनने के लिए
सदा कंचन को
तपना है ।"²

व्यक्तिनिष्ठ, सामाजिक चेतनानुभूतिमय रागात्मकता के साथ बौद्धिक निष्पत्ति का अद्भुत मणिकांचन योग जहां उनके गीतों में मिलता है, वही इस त्रासद जीवन में सुख-दुःख, कुंठा, टुटन, घुटन आदि के काले बादल हमेशा छाए हुए हैं, बावजूद इसके गीतकार प्रबल जीजिविषा, मस्ती, उल्लास एवं उत्साह के साथ सब को अपने जीवन में अंगीकार करते हुए आगे बढ़ते हैं-

" जिंदगी के इस सफर में
धूप भी है- छांव भी ।
कंटको की सेज सोना
खवाब फूलों के संजोना
मुस्कुराना आंसुओं में
हर्ष में पलकें भंगिमा
इस कदम पर 'वाह' है तो

उस कदम पर 'आह' भी।
लुभाते बंधन सुनहले
मुक्ति की है चाह भी।"³

डॉ रवींद्र उपाध्याय के गीतों में जीवन का यथार्थ चित्रण है। इनके गीतों में कहीं उबाल या खलबलाहट, शोर-शराबा नहीं है। श्री गोपेश्वर सिंह लिखते हैं - "कविता को राष्ट्रीय अंतरराष्ट्रीय -क्षितिज पर प्रतिष्ठित करने के लिए हलकान रहने वाले कवियों से रवीन्द्र उपाध्याय भिन्न हैं। उनमें हिंदी -कविता की उस परंपरा से जुड़ने की ललक है, जिसमें राग-विराग दोनों ही भावों के प्रति समान आकर्षण है। अनहद संगीत से स्पंदित इस जीवन - जगत में लय की खोज तथा मनुष्य के प्रति अकम्प आस्था उनके गीतों और गजलों का सहज धर्म है।"⁴

आज के समकालीन हिंदी गीत का मुख्य संबंध मनुष्य की अपनी सामाजिक बिडम्बना, विसंगतियों और उसको जख्मी रागात्मकता से है। यही जख्मी रागात्मकता मनुष्य के सामूहिक जीवन बांध का एक अंग है, जिसमें सदियों के उहापोह से जूझते हुए उसे मानव बनाया है। सभ्यता के नाम पर बँटे हुए लोग, मानव के गौरव को हानि पहुंचा रहे हैं। मानव पाश्चात्य सभ्यता के मोह-जाल में इतना फंसता जा रहा है कि उसकी अपनी पहचान, उसका अपना वजूद भी आज नष्ट होने के कगार पर है। दोहरे चरित्र को धारण किया हुआ मानव - संवेदना, करुणा, दया से अपने को अलग रखा हुआ है -

"किस मिजाज की चली हवा
बुरी तरह बँटे हुए लोग
आंखों में शक -छलक रहा
चेहरे पर भय झलक रहा
सुविधा के पांव -परस को
तोपी मन भी ललक रहा
भीतर है भेद भयानक
ऊपर से सटे हुए लोग।"⁵

रवींद्र उपाध्याय के सामने जैसी भी जीवन अनुभूतियां आई हैं, उन्हें गीत के माध्यम से सामने रख दिया-

"धूप लिखेंगे -छांव लिखेंगे
मंजिल वाली राह लिखेंगे
खुशियों के कोलाहल में जो
दबी -दबी है आह, लिखेंगे।
बे-मकसद जीना क्या जीना!
बिना पाल जिस तरह सफीना

हर हताश को हाथ बांटना
पडे ना क्यों खुद आंसू पीना
मायूसी के मस्तक पर भी
पल-पल का उत्साह लिखेंगे।"⁶

गीतकार अपने गीतों में आज के मूल्यहीन मानवीय जीवन का चित्रण करते हुए बताता है कि यहां भी जाल, प्रपंच और झूठ का ही बसेरा है। स्वार्थपरता और भ्रष्टाचार की कोढ़ में सत्य छुप गया है। फैले हुए अंधेरो के बीच सारे सार्थक प्रसंग उलट-पुलट गए हैं -

"सुखियाँ ढो रही वहशत
प्रीत खातिर हाशिये है
मेमनों के मुखोटे में
घूमते अब भेड़िए हैं।
स्याही शतरंज की है
बिछ गई हर सू बिसाते
पेंचवाली चाल गहरी
दाँव शाति, घाघ- घाटों
आज भी जीता शकुनी है
युधिष्ठिर हारा किये हैं।"⁷

डॉ. ताराचरण खवाडे ने लिखा -"रवीन्द्र उपाध्याय मस्ती, फक्कड़पन- सादगी और सच्चाई के साथ नैतिक बोध के तलख गीतों के गायक हैं। इनके गीत सार्थक संवाद के लिए आमंत्रित करते हैं।"⁸

रवींद्र उपाध्याय के गीत हृदयाभिव्यक्ति तक सीमित नहीं रह कर, समाज को दिशा निर्देश भी देते हैं और मार्ग के अवरोधों को हटाने का प्रयत्न भी करते हैं। गीतकार ने व्यवस्था के खिलाफ विरोध केवल विरोध के लिए नहीं किया है, बल्कि विरोध के लिए कुछ खास मुद्दों को लेकर वे गलत संदर्भों को उजागर भी करते हैं। उपाध्याय जी के गीतों में ऐसे स्वर बिना किसी पूर्वाग्रह के संपूर्ण अर्थवता के साथ प्रस्तुत हुए हैं। वर्तमान को गलत करार देते हुए और सत्य को बहुत नजदीक पाते हुए लिखा -

"चांदनी पर लिखो -चर्चा में रहोगे
घाम पर जो लिख रहा- गुमनाम है
झुलसती धरती, मगर जलधार लिखना
राजपथ के ठुठ को छतनार लिखना
लाभकर है- कुर्सियों के कसीदे लिख
विरोधी स्वर का बुरा अंजाम है।"⁹

इन गीतों में सृजनशीलता के अंतर्विरोध को कवि ने व्यक्त किया है। इन अंतर्विरोध में सत्ता के खिलाफ वास्तव में खड़ा होना मुश्किल काम है ,और जो मुश्किलों का सामना नहीं कर सकते तथा साहित्य को भी लाभकर बनाना चाहते हैं उन को ध्यान में रखकर कभी कहता है -

"उत्सवों में पुरोहित हुए
गर्दिश में तिरोहित हुए
मतलय में वक्त झुक गए
सधा काम लोहित हुए
भीतर है भेद भयानक
ऊपर से सटे हुए लोग
बुरी तरह बँटे हुए लोग ।"¹⁰

अवसरवादी चरित्र के लोगों की जीवन- गति यही है। ऐसे लोगों की चेतना और चरित्र को एक साथ उलझता हुआ दिखाया है कवि ने । इसी भाव को कवि ने और कई गीतों में अलग -अलग तरह से व्यक्त किया है। कवि ऐसे चरित्र के लोगों का भाव- स्थिति को कुछ यूँ चित्रित किया है-

"बाहर है सब भरा-भरा
अंतर्घट रीता का रीता
मुंडे की जगह मुखौटा है
कद से भी आदमी छोटा है
सारे रिश्ते ज्यों लाल मिर्च
लाली उपर,भीतर तीता।"¹¹

रवींद्र उपाध्याय ने अपने गीतों में तीखे अनुभवों को गूथ कर पाठकों एवं श्रोताओं को भिन्न रचनात्मक ताजगी का एहसास कराया है। गीतकार ने जीवन की विकलता और प्रतिकूलता से लड़ते हुए उस पर विजय पाने की सिर्फ चाह ही नहीं रखता, अपितु वह इसके लिए अपने को निरंतर संघर्षरत रखता है। वह धारा से संघर्ष करता है , जीवन की प्रतिकूलता को अनुकूलता में बदलने के लिए-

"है हवा प्रतिकूल, विस्तृत पाट, धारा भँवरवाली
बधिर बाधाएं- करें हम प्रार्थना या बकें गाली
रेत का ही घरोंदा फिर -फिर बनाना है
कि साथी, पार जाना है ?
किनारे ही बैठ केवल कुलबुलाना हैं
कि साथ,पार जाना है?"¹²

इस गीत में कवि ने भावनाशीलता के साथ- साथ विवेकशीलता और भाषिक रचनात्मकता का समन्वय किया है।

प्रकृति के अनुभव पर भी आधारित डॉ. उपाध्याय के ऐसे गीत हैं ,जो सहसा पाठकों का ध्यान अपनी तरफ खींच लेते हैं । इनके प्रकृति गीतों में छायावादी रचनाओं की विशेषता अलग-अलग रूपों में झांकने की कोशिश करते हैं और कुछ इसी तरह के रूप को लिए हुए हैं , उपाध्याय जी के प्रकृति गीत।

" चंदनगंधी हवा चली
मधुमास आ गया!
धूसर,अपत डालियों पर
शत -सुमन खिल गये
ठिठुरे- ठहरे सपनों को
जो पंख मिल गये।
फूली सरसों मनहर
कंचन हास छा गया!
स्मृति में परदेशी
कितने पास आ गया।"¹³

उपाध्याय जी ऐसे गीतकार हैं , जो चुन-चुन कर शब्द टाँकते नहीं हैं ,बल्कि गीत को बड़े फक्कड़पन से संवेदना में डूबा कर रवानी देते हैं। इनके गीतों में अलग मस्ती तथा रस-गंध दिखाई देते हैं ,जो सरलता एवं सादगी से लवरेज हैं । ग्रामीण सभ्यता व संस्कृति को गीतकार ने हमेशा महत्व दिया है , जिस संस्कृति में पलने- बढ़ने वाले लोग सुख-दुःख को आपस में साझा करते हैं । आकांक्षाओं पर बजारी , शहरी संस्कृति हावी न हो , इसकी चिंता गीतकार को है । इनके गीतों में जन -आकांक्षाओं को बचाने की बेचैनी स्पष्ट परिलक्षित होती है-

" बादल भैया, बादल भैया -पानी दो!
इसी धरा का प्रक्षेपण तुम गगन हुए हो
हम सबके सिर चढ़े, नाचते मग्न हुए हो
लू- लपटों से व्याकुल धरती
इसको छाँह हिमानी दो
सूखा ताल- तलैया ,ध्वनि बाबू -दइया की
खुद के साथ-साथ चिंता बछड़ा- गइया की
मेंढक की मायूसी देखो
रिमझिम बरखा -रानी दो
बादल भैया, बादल भैया- पानी दो।"¹⁴

युगसापेक्ष गीत, गीत परंपरा को मजबूती देते हुए चिरकाल तक समाज में जीवित रहते हैं। गीतकार के गीतों में चिंतन के अनेक व्यापक फलक हमें दृष्टिगत होते हैं , साथ ही संवेदना का मर्मांतक स्पर्श भी हमारे अंतः स्थल को हिला देने वाले है ।

समकालीन हिंदी गीतकारों में डॉ रवींद्र उपाध्याय एक ऐसे गीतकार हैं , जिनके गीतों में समसामयिकता होने के साथ-साथ सुख-दुःख , राग -विराग , इत्यादि भावों के राग हैं ,जिनमें समय से टकराने की इच्छा है और कहीं-कहीं धारा के प्रतिकूल चलने की आकांक्षा भी है। इनके गीत इस मामले में भी बेजोड़ हैं क्योंकि गीतों की उन्मुक्त गलियों में बसेरा करते गीतकार बड़े ही निश्चल और स्वाभाविक लगते हैं ।

संदर्भ-

1. हिंदी साहित्य ज्ञानकोष (सं .विजय एस.सोजिन्ना) संस्करण -2013 ,पृष्ठ संख्या -107, 111
2. धूप लिखेंगे- छांव लिखेंगे, पृष्ठ -13
3. वही, पृष्ठ -21
4. गीत विहंगम विहार(सं. रंजीत पटेल) संस्करण 2014 पृष्ठ -197
5. धूप लिखेंगे- छांव लिखेंगे, पृष्ठ -17
6. वही, पृष्ठ- 19 ।
7. वही, पृष्ठ- 25 ।
8. संताल परगना के साहित्यकार एवं अन्य निबंध(सं. डॉ ताराचरण खवाड़े) संस्करण- 2010, पृष्ठ 60
9. धूप लिखेंगे- छांव लिखेंगे ,पृष्ठ-06
10. वही, पृष्ठ- 17
11. वही, पृष्ठ- 23
12. वही,पृष्ठ- 26
13. वही, पृष्ठ- 25
14. वही, पृष्ठ- 31

कविवर डॉ. गोरख प्रसाद मस्ताना के कविताओं में प्रकृति चित्रण

डॉ० विकास कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
श्री वाष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश
सम्पादक— International Literary Quest एवं World Translation

संपूर्ण जीव जगत या समस्त चराचर जिस अलौकिक सत्ता के अधीन होते हैं , वही प्रकृति है। प्रकृति के विस्तृत आंचल में सूरज, चांद, सितारे, पर्वत, पहाड़, जंगल से चिल्लाती धूप खिलखिलाते पुष्प, चांदनी गंध लुटाती हवा , रजत रश्मियों वाली ज्योत्सना , संगीत का स्वर साधती नदियां, सब के सब बहुत सलीके से उपस्थित हैं। प्रकृति के कोमल स्वरूप , अनुपम सौंदर्य और अनन्य छवि का चित्रण कर , कवियों में सुमित्रानंदन पंत प्रकृति के सुकुमार कवि कहलाए तो गोपाल सिंह नेपाली, प्रकृति के चितेरा कहे गये। वैसे साहित्यकारों के एक बड़े वर्ग के लेखन में प्रकृति अपनी समस्त विविधताओं के साथ देखी जा सकती है। कालिदास के मेघदूत से लेकर तुलसीदास के रामचरितमानस में प्रकृति के प्रांजल स्वरूप की मनमोहक छवि का अत्यंत उत्कृष्ट चित्रण पाया जाता है ,जहां पाठक स्वयं को अल्पकाल के लिए प्राकृतिक सुषमा में सुवासित होते महसूस करता है। कल- कल,छल- छल बहती नदियां झर- झर झरते झरने, कलरव करते खग विहग, रेशम की तारों वाली स्वर्ण किरणें हों या लालिमा लुटाता प्रत्यूष, हरीतिमा से लदे वन उपवन हों या बर्फीली छटाओं से युक्त चोटियों वाला नागराज, बदलते मौसम की कोमल थपकियां हों या बसंत का बहुरंगी स्वरूप सब कुछ प्रकृति के उपादान ही तो हैं।

डॉ. गोरख मस्ताना हिंदी साहित्य के सृजन कारों में एक ऐसा ही नाम है , जिनके गीति काव्य में प्रकृति अपनी वैविध्यता के साथ उपस्थित है।

डा मस्ताना ने प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों को अपने गीतिकाव्यों में बहुत मनोरम ढंग से पिरोया है। उनकी दृष्टि प्रकृति और मानव के बीच मधुर संबंधों के साथ प्रकृति के मनमोहक चित्रों में और अधिक मुखरित होती है। मानवीकरण वह अलंकार है जिसका कविता या गीतों में निर्वहन एक विशिष्ट कला समझी जाती है। डा मस्ताना के गीतों में प्रकृति के विभिन्न रूपों का मानवीकरण बहुत ही सहज रूप से हुआ है। बसंत का मानवीकरण एक गीत में प्रस्तुत है-

"फूलों से छलका पराग, मधुपों ने राग सुनाया।

मंजरियों का स्नेह लिए ऋतुराज आज इतराया पल्लव की पलकों से कुछ ,मधुसार चुराता है

बसंत है, वसुधा का कुछ उपहार चुराता है ।"¹

प्रकृति को बादलों ने अपनी मनोहर छवियों से सजाने संवारने का कार्य किया है। धरती जब तप्त हो जाती है , प्रकृति का आनन मुझाने लगता है तो इसका प्रभाव मानव जीवन पर भी पड़ता है। आकुल व्याकुल जन मन धरा की तपिश को शांत करने हेतु बादलों का आवाहन करने लगता है। न दिन चैन न रात। ताप के संताप से ग्रस्त , धरती वासी खग विहग, सब के सब त्रस्त लगते हैं , तब वे बादलों को निहारते हुए आग्रह करते हैं , इस स्थिति का बड़ा ही मनोरम चित्रण करते हुए डॉ. मस्ताना लिखते हैं-

" धरती की सूखी अधरों को सरस बनाने आ बादल
नए छंद नव ताल से रिमझिम का स्वर गाने आ बादल
सदा सुहागन सरिताओं का शोणित पीती धूप
मलिन हुआ सौंदर्य धरा का मुझाया है रूप
पीत गात पर अवनी के हरीतिमा बिछाने आ बादल।"²

प्रकृति का एक महत्वपूर्ण अंग सूर्य भी है। वसुधा पर जीवन का पर्याय है सूर्य , दिवस रात के मधुर मिलन का आधार है सूर्य, समस्त प्राणी जगत में ऊर्जा का सूत्र धार है सूर्य।सूर्य के बिना क्या मानव , क्या अन्य प्राणी या वन उपवन , नदी,झील, झरने, लहराती हुई फसलें, हरियाली से आच्छादित वसुंधरा, किसी की कल्पना नहीं की जा सकती, गीत- कवि डा मस्ताना ने अपनी रचनाओं में अनेक स्थानों पर सूर्य के विभिन्न स्वरूप का वर्णन किया है , कवि कहता है कि-

" सूर्य दिन की पुतलियों पर नाचता है
धूप के दोहे अनोखे बांचता है।
खग बिहग के कंठ में नव सुर सजाता
ताल का पानी सोनहुला है बनाता
विहंसना थम जाए ना इस धरा का
तमस का षण्यंत्र दिन भर काटता है।"³

पुष्प, पुहुप, सुमन, फूल जो भी कहें, प्रकृति में फूलों का वही महत्व है जो शरीर में हृदय का। फूलों की कोमलता और हृदय की कोमलता का संबंध प्राणों को आनंदित करने के ही साधन हैं। धरा पर फूलों की उत्पत्ति का अर्थ है संस्कारों की सुगंध का बिखरना , संपूर्ण वातावरण को रसमय कर देना, जिन्हें देखकर ही मन उल्लास से भर जाए। हृदय नयेपन का अनुभव करने लगे तो यहीं पर फूलों का सौंदर्य और निखर उठता है। इसलिए कवि डा मस्ताना प्रकृति और फूलों के संबंधको महत्वपूर्ण मानते हैं, फिर वे लिखते हैं-

"चल करें फूलों की खेती सुगंधित मन प्राण हो सुवासित कण-कण धरा सबके लिए वरदान हो।"⁴

प्रकृति और पुष्प के संबंधों में केवल सौंदर्य या सुगंध ही नहीं है , संवेदना भी है।सुमन सभी को सुवासित या हर्षित ही नहीं करते , तन मन की पीड़ाएं भी हरते हैं इस संदर्भ में कवि डा मस्ताना की एक अभिव्यक्ति बड़ी ही मार्मिक बन पड़ी है-

"किसने पढ़ी सुमन की पीड़ा कितने घाव सहे उसने
मुझे डाल मत शोषक शव पर, सौ सौ बार कहा उसने
उसकी अकथ वेदना को कंटक ही कहते ढोंग यहां।"⁵

कोई स्थान विशेष प्रकृति की कृपा से कितना महत्वपूर्ण हो सकता है यह प्रकृति ही जानती है । प्रकृति ही आदिशक्ति है,असीम अभिव्यक्ति है। चिंतन और चैतन्य की आत्मा है प्रकृति। उसके पर्वत उसकी घाटियां , किसी भी स्थान को ऐतिहासिक बना देते हैं। वह कभी-कभी तीर्थ बन जाता है। इसी प्रकृति ने राजगीर को ऐतिहासिक महत्व प्रदान कर दिया। तब , जब करुणानिधान बुद्ध ने यहां तपस्या की।

"राजगृह को मिला हुआ था प्रकृति का वरदान
पावन पांच पर्वतों से आवृत भू शोभामान
यही पे है वैभार,विपुलगिरि यहीं तपोवन पावन
शैल गिरि व गृधकुट पर्वत पांचों मनभावन
सधन वनों से आच्छादित वसुधा हरीतिमा लुटाती
इस पवित्र स्थल पर हवा, मनोरम सुर में गाती
शुरू हुई गौतम की इसी धरा, पर घोर तपस्या
यद्यपि यहां खड़ी थी ऋतुओं की प्रतिकूल समस्या।"⁶

सूर्योदय के पूर्वकाल को भोर कहें या प्रत्यूष , प्रकृति के आंगन में इनका आगमन , दिवस के आगमन का ही संकेत है।शीतल शुभ्र समय शांति और कांक्षित का मिलन। चिड़ियों का मधुरिम कलरव आर्थिक मन मानस में आनंद संचरित करने का समय , सब उल्लसित प्रफुल्लित या यूं कहें कि प्रकृति द्वारा प्रदत्त वह उपहार जिस में क्या मानव , क्या खग बिहग, मुस्कुराते पुष्प , सब अलौकिक उत्साह से भर जाते हैं।डा गोरख प्रसाद मस्ताना ने प्रकृति के भोर वाले स्वरूप का अपनी एक रचना में बड़ी कोमलता से चित्रित किया है-

झिलमिल किरणों के साथ
विहग वृंदों के कलरव पर सवार/भोर
परियों की भांति धवल वस्त्र धारण किए
थाली में स्वर्णिम रश्मियों को लिए/उपहार
उतरता है लेकर नया विहान
प्राणियों का जीवन,फूलों का प्राण
मोतियों का बिटोर,फूलचुभी चिड़ियों का शोर
रेशमी डोर/ भोर।⁷

प्रकृति का स्वरूप सर्वदा सुखद ही नहीं होता प्रकृति कभी कभी उदास भी हो जाती है जब पर्यावरण प्रदूषित होने लगता है , प्रकृति की वेदना को आज के स्वार्थी आदमी ने समझने का यत्न करना ही छोड़ दिया , प्रदूषण के विष भरे तीर जब प्रकृति को घायल करते हैं तो उनसे उत्पन्न व्यथा को कोई पढ़ता ही कब है। यद्यपि प्रकृति की पीड़ा प्राकारांत से, मनुष्य की पीड़ा ही होती है पर भ्रम में पड़ा मनुष्य इसे समझ नहीं पाता , असह्य वेदना झेलती है प्रकृति और पीड़ित होता है मानवाडा मस्ताना ने इसी वेदना को व्यक्त करते हुए लिखा है-

वर्षा की सौंधी सुगन्ध/कलेवा बन गई
नालियों के बजबजाहट की
दिवस की शांति को निगल गया
लाउडस्पीकर का शोर
आदमी कहां जाए?
झरें हुए पत्तों के बाद ठूठ तरु
कौन बने इनका मित्र।⁸

प्रकृति विभिन्न ऋतुओं के वैभव से सालों भर सजी रहती है , प्रत्येक ऋतु की अपनी विशेषता है, ऋतुओं में रानी कहलाने का सौभाग्य वर्षा को ही प्राप्त है जिसका सहचर है सावन। सावन की रिमझिम और वर्षा का सुखमय चित्र हरियाली बांटने का मौसम है। गृष्म के ताप से मुक्ति देने वाली ऋतु वर्षा और उसका समय सब मिलकर प्रकृति की सुषमा को समृद्ध ही नहीं करते बल्कि नीरसता में सरसता भरने का पुन्य भी प्राप्त करते हैं। सावन की उसी विशेषता का चित्रण कवि मस्ताना अपने एक गीति काव्य में करते हैं-

दादुर मोर पपीहा बोले अंतर मन के कोने से
कौन बचा है भला यहां,सावन के जादू टोने से
अम्बु सुधा वसुधा को सावन देने लगा निरंतर
प्यासी मिट्टी के कण कण का तृप्त हुआ अभयंतर
सावन के झूलों पर कजरी गायन लगे सलोने से।⁹

इस तरह प्रकृति को हरीतिमा प्रदान करने वाले सावन का बहुत ही सुंदर चित्र उभर कर आया है। प्रकृति में हर्ष विषाद का मिलन ही मानव जीवन की संपूर्णता का द्योतक है , जैसा कि कवि सुमित्रानंदन पंत ने लिखा है -

यह सांझ ऊषा का आंगन,
आलिंगन विरह मिलन का
चिर हास अश्रुमय आनन,रे इस मानव जीवन का।¹⁰

दूसरी ओर कवि की दृष्टि सावन के सौंदर्य की व्यापकता की ओर जब जाती है तो उसे धरती से अम्बर तक प्रकृति में उल्लास और सम्मोहन ही दिखाती देता है फिर वह गा उठता है-

सावन का सौंदर्य ओढ़ते क्या अवनी क्या अंबर
वसुधा लगे सुहागिन हर्षित पल छिन लगता सुखकर
रूप निहारे स्वयं प्रकृति, हर ताल सरोवर दर्पण है
आज धरा के कण कण में उल्लास और सम्मोहन है।¹¹

डा मस्ताना प्रकृति के सौंदर्य पर कुछ अधिक ही आकृष्ट लगते हैं तभी तो वे उसके अलौकिक सौंदर्य में स्वयं को घुला मिला पाते हैं तब वे गुनगुना उठते हैं-

सुरमयी संध्या सुरीली तान में
सुधाकर की रश्मियों के गान में
लालिमा सिंदूरी प्रातः ने बिखरे
तुम नहीं आए!¹²

छिति जल पावक गगन समीरा , प्रकृति के पांच तत्वों में जल का महत्वपूर्ण स्थान है तभी तो जल को जीवन कहा गया है अमृत कहा गया है। लेकिन आज वह उदास है तो उसका कारण धरती पर पेयजल की कमी है।। कवि मस्ताना प्रकृति के इस दुख से स्वयं को दुखद महसूस कर लिखते हैं-

जंगल का अपहरण हो रहा
लता वृक्ष का मरण हो रहा
प्रलय प्रकृति का बोल रहा है
भेद मृत्यु का खोल रहा है।¹³

प्रकृति की चिंता को पढ़े कौन , कहीं जल युद्ध में दुनिया का विनाश ही न हो जाय कवि चिंतित लगता है।

इस तरह डॉ. गोरख प्रसाद मस्ताना के गीति काव्य में प्रकृति के प्रति व्यक्त भाव बड़े ही मधुरमय बन पड़े हैं। उनकी रचना में प्रकृति के प्रति प्रेम और उसकी वेदना के साथ जुड़ने का सबल संकेत है। रचनाओं में बहुत ही प्रांजल और विशिष्ट भाव का सम्मिश्रण दिखाई पड़ता है जो प्रकृति के प्रति उनकी चिंता का ही प्रतीक है।

कवि प्रकृति की चिंता करते करते मिट्टी तक पहुंच जाता है और कह उठता है-

कभी गायन है ये माटी
कभी क्रंदन है ये माटी
कभी धूल धूल यह पग रज है ,
कभी चंदन है ये माटी।¹⁴

इस तरह ही कवि डॉ. गोरख प्रसाद मस्ताना के गीतों में प्रकृति का का विभिन्न स्वरूप अपनी अनेकानेक विशिष्टताओं के साथ उपस्थित लगता है।

संदर्भ :-

1. मधुसार चुरा लूं मैं, गीत मरते नहीं, हिंदी गीत, शारदा पुस्तक मंदिर, दिल्ली, 2014, पृष्ठ-66
2. आ बादल, गीत मरते नहीं, हिंदी गीत, शारदा पुस्तक मंदिर, दिल्ली, 2014 पृष्ठ-63
3. 'सूरज', अक्षर अक्षर बोलेगा (साझा काव्य संग्रह) संपादक डॉ गोरख प्रसाद मस्ताना नवजागरण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृष्ठ- 30
4. खेती फूलों की, अक्षर अक्षर बोलेगा (साझा काव्य संग्रह) संपादक डॉ गोरख प्रसाद मस्ताना नवजागरण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृष्ठ 27
5. धुंधला वर्तमान, अक्षर अक्षर बोलेगा (साझा काव्य संग्रह) संपादक डॉ गोरख प्रसाद मस्ताना नवजागरण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृष्ठ 25
6. सर्ग-4, महाभिनिष्क्रमण, 'तथागत' नवजागरण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ 64
7. भोर, बिंदु से सिंधु तक, जेबीएस पब्लिकेशन इंडिया, नई दिल्ली, वर्ष, 2017 पृष्ठ 64
8. आदमी कहां जाए, बिंदु से सिंधु तक, जेबीएस पब्लिकेशन इंडिया, नई दिल्ली, वर्ष, 2017, पृष्ठ 85
9. सावन, गीत मरते नहीं, शारदा पुस्तक मंदिर, दिल्ली, 2014, पृष्ठ 107
10. आया सावन, रेत में फुहार, जेबीएस पब्लिकेशन इंडिया, नई दिल्ली, वर्ष, 2017, पृष्ठ 83
11. तथैव
12. प्रतीक्षा, गीत मरते नहीं, शारदा पुस्तक मंदिर, दिल्ली, 2014, पृष्ठ - 97
13. जल युद्ध, गीत मरते नहीं, शारदा पुस्तक मंदिर, दिल्ली, 2014, पृष्ठ 88
14. चंदन है माटी, गीत मरते नहीं, शारदा पुस्तक मंदिर, दिल्ली, 2014 पृष्ठ 48

भारत में संगीत का विकास



डॉ० पूर्वी निमगांवकर

(शास्त्रीय गायिका)

सहायक प्राध्यापक

माता जीजाबाई शासकीय (स्वशासी) स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय,
मोती तबेला, इन्दौर

भारत सदियों से विस्तृत भौगोलिक पृष्ठभूमि धारण किए हुए रहा। इसकी सीमाएँ अरब देशों जैसे काबुल, अफगानिस्तान तक फैली हुई थी, परंतु समय-समय पर विभिन्न आक्रमणों और राजनीति के समीकरणों के फैली स्वरूप के साथ जो प्राचीन हिन्दुस्तान यानि कई देशों के समायोजन से हिन्दु राज्य कहलाता था, टुकड़ों में बंटकर नए स्वतंत्र छोटे देशों में बंट गया और प्रत्येक देश अपनी स्वतंत्रता को कायम रखने के लिए तत्पर होकर अपना सांस्कृतिक धरोहर की वैशिष्ट्यता को अपने ढंग से प्रदर्शित करने लगा। इस प्रकार जब हिन्दु राज्यों की भौगोलिकता अपना विशेष महत्व दिखाने लगी भारत की भौगोलिक परिस्थिति सिमट कर विभिन्न राज्यों में परिवर्तित होकर एक भारत बना जो अपनी अलग ही विशिष्ट संस्कृति से समृद्ध हुआ। संस्कृति के विभिन्न अंग जिसमें रंग, वेशभूषा रूप तथा लोक संस्कृति में कला का विशिष्ट महत्व रहा है, इन कलाओं में विभिन्न लोक कलाएं, लोक शैलियां तथा, लोक संस्कृति में संगीत का एक विशेष स्थान और महत्व रहा है, जो सर्वप्रथम उन बीते समय की याद दिलाता है, जो सदियों और युगों से निरंतर व्याप्त है। लोक संगीत जो लोगों द्वारा गाया जाने वाला संगीत है, वही देशी संगीत कहलाता है। यहां पर यह कहना सर्वथा उचित होगा कि संगीत का तत्व मनुष्य जाति में पाया जाता है तभी उसकी अभिव्यक्ति जन साधारण से होना यह एक नैसर्गिक गुण है, मनुष्य का।

संगीत के प्राचीन इतिहास को दृष्टिगत किया जाये तो भारतीय संगीत पौराणिक गाथाओं तथा मान्यताओं को दर्शाता है। संगीत का जन्म ही ईश्वर की उपासना से हुआ। ब्रम्हाजी ने सृष्टि में सर्वप्रथम ऊँकार की रचना की। ब्रम्हाजी के मुख से सरस्वती निकलकर स्वर्ग लोक में पधारी है, जो अपने हाथ में श्वेत वस्त्र लिये और वीणा को धारण करते हुए हंस पर विराजित हुई ऐसी मान्यता है, स्वर्ग में सर्वप्रथम गंधर्वों का संगीत हुआ, देवी देवताओं ने सरस्वती की आराधना कर संगीत की साधना की, उन्हें प्रसन्न किया। इस प्रकार पृथ्वी लोक पर भी संगीत सर्वप्रथम ऋषि मुनि और वेदों के पाठ और साधना से उत्पन्न हुआ यहाँ चार वेदों सामवेद, ऋग्वेद, अथर्ववेद, यजुर्वेदका उल्लेख मिलता है, जिसमें सामवेद को संगीतोपयोगी और सबसे महत्वपूर्ण माना गया है, जिसमें सा, म, प इन स्वरों का गायन होता था। संगीत के उत्पन्न होने के विभिन्न दृष्टिकोण हैं जिनमें ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, प्राकृतिक, धार्मिक दृष्टिकोणों में विभिन्न प्रकार से संगीत की उत्पत्ति को दर्शाया गया है। मनोवैज्ञानिक आधार पर जब मनुष्य के अपने भावों को व्यक्त करने की आवश्यकता प्रतीत हुई, तब इसे ध्वनि का सहारा लेना पड़ा। इसे डॉ० कर्ट सर्च ने कहा भावाभिव्यक्ति की सहायता से संगीत का जन्म हुआ। अर्थात् संगीत के उत्पन्न होने के कई बड़े और अलग-अलग कारण ग्रंथकारों और संगीतज्ञों ने व्यक्तिगत दृष्टि से दर्शाए हैं। उसी प्रकार संगीत के उत्पत्ति का पाश्चात्य दृष्टिकोण भी व्याप्त है। अर्थात् समयकाल के अनुसार विभिन्न परिस्थितियों के संगीत का उल्लेख तात्कालिक प्रभावों में निहित है।

विभिन्न कालों जैसे पूर्ण पाषाण काल, उत्तर पाषाण काल से संगीत का अस्तित्व है, इतिहासकार टर्नेल आपसी ने अपनी पुस्तक "The History of Music facts" में कहा है कि लोग पहले से ज्यादा

सभ्य होते गए और सभ्य संगीत के संकेत मिलने लगे। समय के साथ निरंतर परिवर्तन होता चला गया, जो मूलतः वर्तमान संगीत विकास का आधार बना। ताम्रकाल उत्तर पाषाण काल से भी अधिक सभ्य होता गया। इस काल में तांबे के औजार और आभूषण बनाये जाते थे, यह संगीत के बड़े प्रेमी थे, इस काल को संगीत के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना गया है, इस काल में स्त्रियाँ नृत्य कला में निपुण थीं।

एक अंग्रेज विद्वान लोवास्को के अनुसार वर्तमान संगीत का आधार ताम्र युग के संगीत पर रखा गया है।

इसके पश्चात लौह काल का युग आया, जिसमें संगीत की विशेष उन्नति नहीं हुई, संगीत के विकास की यात्रा में सिंधु सभ्यता का काल भारतीय संगीत का महत्वपूर्ण काल माना गया। इन सभ्यताओं का जन्म भारत में हुआ अथवा भारत के बाहर इस संबंध में पुरातत्वज्ञों में तीव्र मतभेद है, तथापि उत्खननों में उपलब्ध उनका भव्य स्वरूप इस तथ्य का स्पष्ट प्रमाण है, कि इस सभ्यता की परम उन्नति भारत वर्ष में हुई। जिसमें, पुरातत्व द्वारा बलुचिस्तान, हडप्पा और सिन्धु में जो खुदाईयां हुई उसमें हडप्पा में लाहौर में 100 मील पर स्थित मोहन जोदड़ो, में काँसे की बनी मुर्तियाँ, बाँसुरी तंत्री युक्त वीणा कई वाद्य यंत्र मिले जो 5000 ई. वर्ष पूर्व से भारतीय संगीत में व्याप्त है। इस प्रकार भारतीय संगीत के होने के प्रमाण सदियों से निरंतर प्राप्त होते जा रहे हैं।

वैदिक कालीन संगीत को प्रमुख रूप से 3 खण्डों में पृथक्कृतया माना गया है।

1. वाक यजु तथा अथर्व में संगीत
2. सामवेद में संगीत
3. उपनिषद तथा शिक्षा ग्रंथों में संगीत

ऋग्वेद की रचनाएँ स्वरो में निबद्ध होने से स्तोत्र कहलाती हैं।

यजुर्वेद का संगीत यज्ञ संस्था के उत्कर्ष का प्रतीक है। अश्वमेघ आदियज्ञों में निमित्त गाथा गान तथा वीणा जैसे वाद्यों का वादन किया जाता था। इस प्रकार वाण, तूणव दुंदुभि भूमि दुन्दुभि, शंख और तलव आदि वाद्यों का उल्लेख इस काल में मिलता है अर्थात् गायन के साथ वाद्यों के संगीत का प्रमाण हमें मिलता है।

इस प्रकार विभिन्न कालों के संगीत में प्रागैतिहासिक काल से लेकर वैदिक कालीन संगीत तक संगीत के विकसित होने की आधारशिला मानकर 5वीं शताब्दी से जो हमें ग्रंथों के उल्लेख और इतिहास हमें अपने पुराणों वेदों और शास्त्रों में मिलते हैं वहाँ संगीत की नियमित विकास धारा बहना प्रारंभ हुई।

वैदिक कालीन संगीत में गन्धर्वों तथा अप्सराओं का उल्लेख अर्ध दैवत के रूप में किया गया है, गान, नृत्य तथा कामफल में विशारद इन जातियों की कल्पना लौकिक मान्यता में बहुत स्थिर हो चुकी थी।

यहाँ हमें सामान्य दृष्टि से निबद्ध और अनिबद्ध शब्दों का अर्थ बंधे एवं बिना बंधे हुए से लिया होना सहज ही समझ सकते हैं। अर्थात् संगीत के तत्वों को बद्ध करना और स्वतंत्र रूप से गाने की परंपरा चलन यह नया अनुभव प्राप्त होता है। अर्थात् ताल के साथ गायन वादन करना निबद्ध गान हुआ जिसमें बंदिश, बोल, आलाप तान सभी प्रकार ताल से बंधे होकर इसे गाने का चलन, एवं अनिबद्ध अर्थात् जो सर्वथा बंधन से मुक्त होकर स्वयंभू नाद प्रकट होकर आलापी जिसमें शब्द आलापी, रूपकालाप, रागालापि यह समायोजित है।

भारत का नाट्य शास्त्र 5वीं शताब्दी के नाट्य शास्त्र में ब्रम्हा के द्वारा बताया गया, स्तोभाक्षर निबद्ध तथा लौकिक कवियों द्वारा रचित शब्द रचना को अनिबद्ध कहा गया है।

महाकाव्य काल संगीत के लिए एक गौरवमीय काल रहा है। महाभारत और रामायण जो भारतवर्ष की अमूल्य धरोहर हैं। इस काल का संगीत युगो से गाया, बजाया जा रहा है। इस काल में

महान चरित्रों द्वारा संगीत का सृजन साधना करना एवं उन्हें गायन, वादन करना यह इन महान ग्रंथों की एक विशेषता रही है। लौकिक संगीत इस काल में दिन प्रतिदिन विकास कर रहा था। गेय प्रबंधकों में गाथा गान, मंगल गीत, स्तुति आदि के व्यवसायी गायक भी हुआ करते थे। जिन्हें नट, सूत, बन्दी मागध, वैतालिक कहा जाता था। षडज, मध्यम एवं गांधार ग्राम का प्रचलन इस समय में था। इसी प्रकार विभिन्न वाद्यों जैसे वीणा वेणु, मृदंग तुणव, भेरी, शंख दुदुभि, आनक अडम्बर झंझरीआदि ताल के अंतर्गत शम्या, पानिताल, समताल, इत्यादि का उल्लेख इस समय में मिलता है।

इसी प्रकार अनेकों नृत्यों का वर्णन भी हमें इस समय काल में मिलता है, जैसे रासलीला नृत्य, श्रीकृष्ण के साथ गोपियों का रास भगवान श्रीकृष्ण संगीत के महान पंडित थे। उनके द्वारा बाँसुरी की लहरियाँ नर-नारी पशु-पक्षी प्रकृति सबको मंत्रमुग्ध कर देती थी।

इस प्रकार संगीत को समाज में पर्याप्त सम्मानित स्थान प्राप्त था और वो विकासशील होने की ओर गतिशील था।

इसी प्रकार रामायण भी वाल्मीकी द्वारा रचित भारतीय संस्कृति का प्राचीन उत्कृष्ण महाकाव्य है। जिसमें भी गायन वादन नृत्य तीनों का समावेश है।

इसमें आतोद्य विधि, मुच्छना, जाति राग, कौशिक राग व ग्राम रागादि का पर्याप्त वर्णन मिलता है। यह मान्यता है कि संगीत का पूर्व विकसित स्वरूप तो भरत एवं परवर्ती आचार्यों के द्वारा प्राप्त होता है। यद्यपि रामायण का संगीत भी उच्च कोटि के संगीत का आभास कराता है। इस काल में सामवेद का विधिवत गायन होता था, राजा दशरथ की अंत्येष्टि के अवसर पर भी साम गायक ब्राम्हणों ने शास्त्रीय पद्धति से गायन किया था। उत्तर काण्ड में रावण के द्वारा साम स्त्रोतों के गायन से शंकर की स्तुति करते हुए ऐसा उल्लेख मिलता है। अन्य प्रासंगिक गीतों के गायन के अलावा लवकुश द्वारा रामायण की गाथा का गायन इस काल के संगीत की उच्चता का सुखद अनुभव कराता है।

अन्य कालों के संगीत जैसे बौद्ध काल, जैन धर्म, मौर्य काल, कनिष्क काल इत्यादि में भी संगीत की निरंतर प्रगति एवं विकास देखने को मिलता है।

गुप्त काल को संगीत के विकास का सबसे महत्पूर्ण काल माना जाता है। इस युग में भरत के पुत्र दत्तिला ने दत्तिल नामक ग्रंथ लिखा चंद्रगुप्त का पुत्र समुद्रगुप्त स्वयं एक महान संगीतज्ञ था और कुशल वीणा वादक था। इस युग में शास्त्रीय संगीत का अधिक प्रचार तथा विकास हुआ। इस काल को नाट्य युग का स्वर्णयुग कहा जाता है। सम्राट विक्रमादित्य के दरबार में महान कवि एवं नाटककार कालिदास हुए। कुमार संभवम्, मेघदूत, रघुवंश, शकुन्तला विश्व साहित्य इनके अनुपम संगीत नाटक है। राजपूत काल में संगीत की मुगलों ने आक्रमणों से संगीत का कुछ नुकसान भी हुआ परंतु, 11वीं शताब्दी के आरंभ में भारतीय संगीत दो धाराओं में बँट गया, और भारतीय संगीत पद्धति एवं कर्नाटक संगीत पद्धति। इसी काल में जयदेव जैसे महान कवि भी हुए। जिसने गीत गोविंद जैसे महान ग्रंथ की रचना की यह सम्पूर्ण ग्रंथ संगीतमय है और इसका पद संगीत में परिपूर्ण है।

13वीं शताब्दी में शारंगदेव ने संगीत रत्नाकर की रचना की यह ग्रंथ दोनों पद्धतियों का आधारीय ग्रंथ माना जाता है, इसमें गायन, वादन नृत्य संगीत की तीनों विधाओं का परिष्कृत तथा विस्तृत वर्णन मिलता है। रत्नाकर इस ग्रंथ को ग्रंथों का मुकुट कहा जाता है, संगीत की प्रमाणिकता उसका विकास और गति बढ़ाने में इन ग्रंथकारों और संगीतज्ञों ने बहुत महत्वपूर्ण योगदान दिया है, इस प्रकार यह वह समय था जब संगीत को विशेष पहचान मिली और यह ग्रंथों के माध्यम से सजो के रखी हुई धरोहर हम आज तक अध्ययन कर उस पर शोध कर सकते हैं।

8वीं शताब्दी से लेकर 18वीं शताब्दी तक के काल को मध्य युग काल माना जाता है, परंतु रत्नाकर के बाद 13वीं से 18वीं सदी को मध्ययुग माना गया है। यह संगीत का स्वर्ण काल कहलाता है, क्योंकि स्वामी हरिदास, बैजूबावरा तानसेन एवं गोपाल नायक इत्यादि का संगीत में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। साथ ही भक्ति संगीत के इतिहास में कबीर, तुलसी, मीरा, सूरदास, नानक जैसे महान कवियों ने संगीत को चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया था, इनके द्वारा लिखा गया काव्य सदियों युगों तक गाया

जायेगा। यह ईश्वरोपासना का संगीत मनुष्य के कल्याण और संतुष्ट होने का द्योतक था। इस युग को हम मुसलमान काल समझते हैं। यह युग 11वीं 12वीं शताब्दी से आंका गया है। परंतु मुसलमान आक्रमणकारी पहले से ही इस भूमि पर अधिकार जमा चुके थे।

इस युग के आरम्भ में समग्र भारतवर्ष छोटे छोटे राज्यों में विभक्त था। महाराजा भोज (1018-1060) का अभ्युदय 11वीं शताब्दी के प्रारंभ में हुआ था। वे अत्यंत नृपति, उच्च कोटि के संगीत विद्वान एवं संगीत रसिक थे। उन्होंने सरस्वती कण्ठाभरण व श्रृंगार प्रकाश नामक 2 ग्रंथों की रचनाएँ कीं। भोपाल के दक्षिण पूर्व में अवस्थित 'भोपाल-सागर' जिसका क्षेत्रफल प्रायः 250 वर्गमील है उनकी ही अमर कीर्ति है। भारत के संगीत में क्रांति लाने वाला काल मुगल काल रहा, उत्तर भारत पर मुगलों के आक्रमण से संगीत पर गहरा असर पड़ा उनका साम्राज्य पर अधिकार पाना उनकी संस्कृति, भाषा, रहन-सहन, खान-पान ने हमारे संगीत को परिवर्तित होने पर मजबूर किया। प्राचीन संगीत की धारा जो शताब्दियों से पारंपरिक ढंग से बहती चली आ रही थी, वह भावाभिव्यक्ति के परिवर्तन को झेलने को मजबूर थी। मंदिरों में गाये जाने वाले ध्रुवपद अब राजा के दरबार में रिझाने वाले संगीत का रूप धारण कर चुके थे। ख्यालों ने ध्रुवपदों की जगह ले ली थी, सौन्दर्यता, श्रृंगारिता और भौतिकता का भाव ख्यालों में कूट-कूट कर भरता रहा, जिससे मनुष्य की वृत्ति भटकने तथा उसके मौलिक संगीत करने की क्षमता पर आघात हुआ।

भारतीय संगीत में प्राचीन ग्रंथकारों ने गायन दो प्रकार का बतलाया है। एक मार्ग गायन, कसका देशी गायन। किंतु इन दोनों की संज्ञा को इस ग्रंथ में पहला दिव्य गायन दूसरा भव्य गायन यों परिवर्तित कर दिया गया है और वह इस हेतु है, क्योंकि देवों के द्वारा गाया दिव्य गायन और भूतल के मानवों द्वारा गाया हुआ भव्य गायन कहा जा सकता है। अतएव मार्ग को 'दिव्य' और देशी को 'भव्य' संज्ञा दी गई है।

यहां हमें यह समझना होगा कि सदांरग-अदांरग इन संगीतज्ञों गायकों ने संगीत में एक वैचित्र्यता का भाव जगा दिया था और संगीत को गाने समझने का यह अलग ही पक्ष था, जो जन साधारण में विकसित होने लगा, संगीत समय की मार को झेलता हुआ बहता चला गया और कला करने वालों के समक्ष नयी चुनौतियों और नए आयामों को आत्मसात करना उनकी नियति बन गया। यहां हम कह सकते हैं संगीत विकासशील तो है ही परंतु प्रगतिशील भी है।

18वीं से 19वीं शताब्दी में कर्नाटक संगीत पद्धति विकसित हुई, यह अपनी प्रमाणिकता और शुद्धता को पूर्णतया सिद्ध करती थी, क्योंकि दक्षिण भाग पर मुगलों के आक्रमण कम हुए, जिसके कारण ये अपनी वास्तविक रूप में प्रगतिशील हुईं।

यह काल मुगलों के अंतिम समय काल के रूप में जाना जाता है, मुगलों के अंतिम बादशाह बहादुर शाह जफर हुए जो संगीतनुरागी थे। विभिन्न ग्रंथों के निर्माणों ने संगीत को अधिक शास्त्रोक्त और अध्ययनशील बना दिया।

इस समय तक राग-रागिनियों का चलन प्रचलित हुआ जिसमें शिव मत, कृष्ण मत, भरत मत और हनुमान मत सोमेश्वर मत, कल्लिनाथ मत, ऐसे अनेक मत प्रचलित हुए।

इसके साथ ही उत्तर भारत के संगीत की शैलियों में ठुमरी, दादरा, चैती, कजरी, होरी, इत्यादि गाने का भी बहुत चलन हुआ, संगीत का एक-एक विचार जो लोक शैलियों का विस्तार करने और जानने का एक अनोखा समय था।

इस समय गायन परंपराएँ सुदृढ़ हो चुकी थी, जिन्होंने घरानों का रूप ले लिया था। ग्वालियर घराना, दिल्ली घराना, आगरा घराना, जयपुर अतरौली घराना, इन घरानों का चलन ब्रिटिश काल में अत्यंत बुलंदी पर था। घरानों के कारण भारतीय संगीत कुछ हद तक सुरक्षित भी रहा। परंतु ब्रिटिश काल में संगीत की पवित्रता और उसकी व्यापकता, उत्कृष्टता का हास भी हुआ।

19वीं शताब्दी में रविन्द्र नाथ टैगोर जैसे महान संगीतज्ञ भी हुए जिन्होंने बंगला संगीत को नई ऊचाईयाँ भी प्रदान की। यहां यह कहना भी उचित ही होगा कि ब्रिटिश शासन काल के कारण भारत के संगीत पर पाश्चात्य संगीत, यूरोपियन संगीत का प्रभाव दिखने लगा था।

यह वह समय था जब भारतीय संगीत बहुत चुनौतियों से गुजर रहा था, जहां एक ओर मुगलकालीन संगीत शैलियों का पूर्णतया प्रभाव विद्यमान था जो संगीत पर पड़ रहा था एवं मुगल शासन काल की समाप्ति होते होते ब्रिटीश काल भारत देश पर अपना आधिपत्य जमाने आ खड़ा हुआ। इन रियासती परिवर्तनों से संगीत की स्थिति बहुत उलझनों में थी, अपने अस्तित्व को खोने की चिंता तो थी ही साथ ही उसकी परंपरा और पवित्रता पर आँच आने लगी थी।

17वीं शताब्दी से लेकर 19वीं शताब्दी तक के ग्रंथों के अध्ययन करने से यह तो निश्चित था कि ग्रंथों में किए गए खोजों पर उपलब्ध तर्क व जानकारियाँ हमारे लिए वरदान बन खड़ी हुई। आक्रमणों के कारण कई ग्रंथों और संगीत की विरासतों को नुकसान हुआ। आज हमारे पास कई ऐसी महत्वपूर्ण जानकारियाँ प्रमाण के रूप में उपलब्ध नहीं हैं। मुख्यतया उत्तर भारत के ज्यादातर राज्यों पर लड़ाईयाँ और आक्रमण होने से हमारी सांस्कृतिक धरोहरों को भी अत्यंत नुकसान पहुंचा। जिसके कारण मात्र ऐसी जगहों पर संगीत होता था, जहाँ शासक या मुख्य बड़े जलसे हुआ करते थे और वह भी तात्कालिक शासक की अनुमति और इच्छा का संगीत ही था।

यही आधुनिक काल का जन्म हुआ और भारतीय संगीत में उपस्थित घरानों से शिष्य परंपरा सदियों से बहती चली आ रही थी, उन्हीं शिष्यों में मुख्य रूप से श्री विष्णु नारायण भातखंडे एवं श्री विष्णु दिगंबर पलुस्कर तथा ओंकारनाथ ठाकुर, आचार्य बृहस्पति जैसे महान संगीतज्ञ भी हुए जिन्होंने भारतीय संगीत का झंडा बुलंद कर उसके अस्तित्व को बचाया। इस प्रकार भारतीय संगीत के विकास की इतनी लंबी यात्रा रही है, जिसने कई प्रकार के तूफानों को पार कर अपने अस्तित्व को जिंदा रखा।

संगीत की इस नाजुक परिस्थिति में भी भातखंडे जी ने संगीत के विकास के लिए लखनऊ में "मैरिस म्यूज़िक कॉलेज" (भातखंडे विद्यापीठ) एवं ग्वालियर में माधव संगीत महाविद्यालय एवं बडौदा में म्यूज़िक कॉलेज खोला। भारत का युवा संगीत को सभ्य रूप से अपना सके उसे उपाधि प्राप्त कर संगीत की परंपरा का निर्वहन करने तथा विद्या प्रदान करने का सुनहरा अवसर उस समय से हुआ था। भातखंडे जी ने वर्षों तक साधना तपस्या से बंदिशों को संग्रहण कर प्रारंभ में देशभर में भ्रमण कर सर्वप्रथम मराठी भाषा में कृमिक पुस्तक मालिकाओं का निर्माण किया, तत्पश्चात उसे हिन्दी भाषा में प्रकाशित किया गया। इस प्रकार इतनी सरल तथा समुधर बंदिशों की पुस्तकों में उपलब्धता एक बहुत बड़ी उपलब्धि संगीत जगत की कही गई है। इन्हीं के समकालीन पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्कर हुए जो पंडित बालकृष्ण बुवा के शिष्य थे। इन्होंने बंदिशों में से अश्लील तथा श्रृंगार रस के शब्द निकालकर भक्ति रस का समावेश किया। जिसके फलस्वरूप लोगों की भ्रमित मानसिकता पर इनकी भाषा को बहुत सकारात्मक प्रभाव पड़ा। भारतीय समाज में इन्होंने संगीत के प्रति जागरूकता लाई तथा शास्त्रीय संगीत में भक्ति पदों को सम्मिलित किया। इन्होंने सन् 1901 में बम्बई में गांधर्व महाविद्यालय की शाखा खोली। वर्ष 1925 में संगीत के प्रचार प्रसार हेतु अहमदाबाद में अधिवेश किया।

जब हमारा देश आजाद हुआ तब हमारी संस्कृति में पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव दिखना प्रारंभ हो गया था। कई पाश्चात्य संगीतकारों ने भारतीय संगीत को अपनाया और उसके विकास के लिए कई महत्वपूर्ण कदम उठाये जिससे उसकी प्रगति हुई और भारतीय संगीत को नई दिशा प्राप्त होने लगी। भारत रत्न पं. रविशंकर जी कई पाश्चात्य कलाकारों के साथ जैसे यहूदी में न्हयुन के साथ संगीतिक कार्यक्रम कर 1967 में ग्रेमी अवार्ड भी प्राप्त किया। इन्होंने भारतीय संगीत का विदेशों में खुब प्रचार-प्रसार किया। अर्थात् हमारा भारतीय संगीत विदेशों में पहुंचाने में कई दिग्गज कलाकारों ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

भारतीय समाज अब और उन्नतिशील होने लगा। लोगों की विचारधारा और कार्य करने की प्रणाली भी बदलने लगी, घर-घर में संगीत होने लगा, उसके महत्व को जाननेवाले कला करने वाले भी दिन-प्रतिदिन बढ़ने लग, पर यहां यह कहना सर्वथा उचित ही होगा कि भारतीय संगीत और पश्चात्य

संगीत का मिलाप जो आज "फ्यजन" कहलाता है वह भी इस आधुनिक युग की ही देन है परंतु मूल संगीत की शिखा और उसे लेने वाले शिक्षार्थी एवं शोधार्थी भी नित नए सृजन कर संगीत को नए आयाम दे रहे हैं।

मैंने जिस विषय पर शोध कार्य किया है, वह ग्वालियर घराने के गायक पं. गणपत राव गवई हुए जिनकी हस्तलिखित पाण्डुलिपियों को मैंने अध्ययन कर लगभग 100 वर्ष पुराने संगीत के चित्र को उजागर किया और उसकी समीक्षा कर उसे आज के संगीत के परिप्रेक्ष्य में समझाने का शोध कार्य किया है।

संपूर्ण भारत वर्ष में संगीत उच्चतम स्तर पर पहुँचा गया है भारत में दिए जाने वाले पद्म पुरस्कारों में कला जगत को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है एवं संगीत में घरानों की प्रतिबद्धता और रूढ़िवादिता की सीमा समाप्त हो गयी है, एक कलाकार या शिष्य संगीत के विभिन्न घरानों तथा उसकी बारीकियों को सीखकर उस पर अपना अस्तित्व खड़ा कर सकता है, संगीत की जादुगरी ऐसी है, जो मनुष्य को सहज ही ईश्वरोपासना तक पहुँचा देती है। ये अमूल्य धरोहर आज की पीढ़ी, गुरुओं तथा आचार्यों को संजो कर रखनी चाहिए। संगीत की पवित्रता और शुद्धता कायम रहना एक कलाकार द्वारा ईश्वर की साधना है। उसका परम कर्तव्य है किवो इसे संजो कर रखे तभी सही मायने में इसका विकास संभव है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. भारतीय संगीत का इतिहास पृष्ठ 14 लेखक शरदचंद्र परांजपे
2. भारतीय संगीत का इतिहास पृष्ठ 3 लेखक, भगवतशरण शर्मा
3. भारतीय संगीत का इतिहास पृष्ठ 18
4. विश्व संगीत का इतिहास पृष्ठ 4 लेखक अमलदास शर्मा
5. भारतीय संगीत पृष्ठ 51 लेखक आचार्य उत्तमराम शुक्ल "उत्तमाचार्य"

नवाचारी कहानियाँ : संक्षिप्त विवरण

डॉ० देवेन्द्र प्रताप सिंह

प्राचार्य, कूबा पी०जी० कॉलेज, दरियापुर, नेवादा, आजमगढ़

नवाचारी कहानीकारों की सूची बहुत लम्बी है। डॉ. रामचन्द्र तिवारी¹ समकालीन कहानीकारों की सूची में तीन पीढ़ी के रचनाकारों को रखते हैं— पहली पीढ़ी में नयी कहानी के दौर से पहले के रचनाकार हैं; दूसरी पीढ़ी में नयी कहानी को गति देने वाले सर्जक हैं और तीसरी पीढ़ी में वे रचनाकार शामिल हैं, जिन्होंने 'नई कहानी' और 'अकहानी' दोनों ही की रूढ़ियों का विरोध करके सामाजिक जीवन—यथार्थ को व्यक्त करने का प्रयत्न किया है।

ज्ञानरंजन— ज्ञानरंजन के प्रमुख कहानी—संग्रह हैं— 'फेंस के इधर—उधर', 'यात्रा', 'क्षणजीवी', 'सपना नहीं', आदि। "ज्ञानरंजन मुख्य रूप से मध्यवर्गीय जीवन की कुरूपताओं, विसंगतियों और खोखलेपन को निस्संग भाव से बेनकाब करने वाले यथार्थधर्मी कहानीकार हैं। नये—पुराने मूल्यों और संस्कारों की टकराहट का बड़ा ही सूक्ष्म अंकन और विश्लेषण आपकी कहानियों में मिलता है।"²

"ज्ञानरंजन की भाषा और शिल्प में मोहक आयाम हैं, जो विशिष्ट ही नहीं अति विशिष्ट भी हैं, पर भाषा और शिल्प की यह अति विशिष्टता क्या एक सीमा के बाद लेखक के विकास को अवरुद्ध कर देती है? ज्ञानरंजन की रुकी हुई कलम के कारण यह सवाल प्रायः उठता रहता है।"³

काशीनाथ सिंह— "काशीनाथ सिंह प्रगतिशील चेतना के प्रतिबद्ध लेखक हैं। अपने लेखन के प्रत्येक दौर में वे सामान्य आदमी के पक्षधर रहे हैं। नगरीय जीवन के छल—छन्द से परे उनका सहज, ग्रामीण मन अपने खरे स्वभाव के साथ निरन्तर उनके साथ रहा है। 'लोग बिस्तारों पर, 'सुबह का डर', 'आदमीनामा', 'नयी तारीख', 'कल की फटेहाल कहानियाँ', 'सदी का सबसे बड़ा आदमी' आदि आपके कई कहानी—संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। आपकी कहानियों में व्यवस्था द्वारा आम आदमी के शोषण, ग्रामीण और नगरीय जीवन—मूल्यों की टकराहट, मानवीय मूल्यों का विघटन और मनुष्य का नैतिक पतन तथा गाँवों के बदलते सामाजिक—आर्थिक परिप्रेक्ष्य के साथ सहज मानवीय सम्बन्धों के निःशेष होते जाने की पीड़ा का बड़ा ही मार्मिक और प्रभावी चित्रण किया गया है। सबसे बड़ी बात यह है कि विचारधारा के अन्तर्वर्ती प्रवाह से आपकी कला कहीं भी आक्रान्त नहीं हुई है और आपका कहानीकार निरन्तर कलात्मक समृद्धि की ओर अग्रसर है।"⁴

जगदीश चतुर्वेदी— जगदीश चतुर्वेदी अकहानी—आन्दोलन से सम्बद्ध रचनाकार हैं। आपके प्रमुख कहानी—संग्रह, 'जीवन का संघर्ष', 'निहंग', 'अँधेरे का आदमी', 'चर्चित कहानियाँ' और 'विवर्त' हैं। "इन संग्रहों में आपने स्त्री—पुरुष के यौन—सम्बन्धों का खुलकर चित्रण किया है। इधर की आपकी कुछ कहानियों में साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के विरोध तथा जीवन में पैसे के बढ़ते हुए प्रभाव का स्वर भी मुखरित हुआ है, किन्तु सब मिलाकर आपकी पहचान मुक्त काम—सम्बन्धों के साहसिक विश्लेषण और चित्रण करने वाले लेखक के रूप में ही बन सकी है।"⁵ जगदीश चतुर्वेदी के 'मुक्त काम—सम्बन्धों के साहसिक विश्लेषण और चित्रण' की प्रवृत्ति पर सार्थक टिप्पणी करते हुए मधुरेश कहते हैं कि, "वे (जगदीश चतुर्वेदी) एक ऐसे दिशा और लक्ष्यविहीन आक्रोश से आक्रांत हैं जो जमाम यात्राओं को दुर्घटना में बदल देना चाहता है, एक अनिर्दिष्ट व्याघात के द्वारा आस—पास के घरों में हाहाकार मचा देना चाहता है। इस दौर के अनेक लेखक इसी दिशाहीन आक्रोश के शिकार हैं और साहित्य में उनकी सारी क्रांति यौन—क्रांति का पर्याय बन जाती दिखायी देती है।"⁶

दूधनाथ सिंह— अकहानी आन्दोलन के पक्षधर दूधनाथ सिंह के प्रमुख कहानी-संग्रह 'सपाट चेहरे वाला आदमी', 'सुखान्त', 'पहला कदम' आदि हैं। आइसबर्ग, रक्तपात, रीछ, कोरस, प्रतिशोध, दुःस्वप्न, कबन्ध और सब ठीक हो जाएगा आदि दूधनाथ सिंह की चर्चित कहानियाँ रही हैं। इन कहानियों में "दूधनाथ सिंह ने आज के जटिल यथार्थ को मूर्त करने के लिए नये शिल्प का प्रयोग किया है। इसलिए कभी-कभी आपकी कहानियों का कथ्य उलझा हुआ प्रतीत होता है। आप आज के जीवन की विसंगति, तनाव, अकेलापन, संवादहीनता और व्यर्थता को व्यक्त करने के लिए वाह्य स्थितियों का अभ्यन्तरीकरण करते हैं। अर्थात् कहानी कथानायक के अन्तर्जगत और सामाजिक स्थितियों के बहिर्जगत दोनों में एक साथ चलती है। इस क्रम में शिल्प का उलझाव स्वाभाविक है। कुछ भी हो, दूधनाथ सिंह ने आज के जटिल जीवन-यथार्थ को नूतन शिल्प के माध्यम से व्यक्त करने वाले रचनाकार के रूप में अपनी पहचान बना ली है।" ⁷ साथ-ही "अपनी रचनात्मकता के दूसरे दौर में लिखी गयी उनकी कहानियाँ— 'माई का शोक गीत', 'हुँडार' आदि न सिर्फ अकहानी के प्रभाव वृत्त से उनकी मुक्ति का प्रमाण हैं, कहानी की अनेक स्तरों पर सक्रिय संश्लिष्ट संरचना की वापसी का भी संकेत देती हैं।" ⁸

गिरिराज किशोर— गिरिराज किशोर के प्रमुख कहानी-संग्रह 'चार मोती ने आब', 'नीम के फूल', 'पेपर वेट', 'रिश्ता और अन्य कहानियाँ', 'शहर दर-शहर', 'हम प्यार कर लें', 'जगतारनी', 'लहू पुकारेगा', 'गाना बड़े गुलाम अली खाँ का', 'आंद्रे की प्रेमिका' प्रकाशित हैं। "आज गिरिराज किशोर संवेदना को 'पारस' मानकर साहित्य में उनकी उपस्थिति को नये सिरे से रेखांकित करने पर बल दे रहे हैं। 'आंद्रे की प्रेमिका' में संकलित उनकी कहानियों में इस संवेदना की स्वीकृति के बावजूद अमूर्तन की प्रवृत्ति बढ़ी है। अमूर्तन सामाजिक संदर्भों के क्षरण का ही परिणाम होता है। और सामाजिक यथार्थ तथा समय के जरूरी और उत्तेजक सवालों से बचकर ही कोई लेखक इस साहित्यिक विलासिता की ओर आकृष्ट हो सकता है। गिरिराज किशोर की इन कहानियों में न तो उनकी पिछली कहानी 'गाउन' की तरह दो संस्कृतियों के तनाव और टकराव का संवेदनशील अंकन है और न ही 'हम प्यार कर लें' की कहानियों की तरह प्रशासन और राजनीति की क्षुद्रता का उद्घाटन।" ⁹

हिमांशु जोशी— "हिमांशु जोशी के महत्त्वपूर्ण प्रकाशित कहानी-संग्रह हैं— 'अन्ततः' 'स्थचक्र', 'मनुष्य चिह्न' तथा 'जलते हुए डैने' आदि। जोशी जी का कथा फलक व्यापक है। आपने अपनी कहानियों में पर्वताजचल के ग्राम-जीवन, समकालीन मध्यवर्गीय पारिवारिक जीवन और महानगरीय जीवन, तीनों की स्थितियों और विसंगतियों का चित्रण किया है। आप किसी विचारधारा से प्रतिबद्ध नहीं हैं। यह सारा चित्रण मानवीय सहानुभूति की सहज अभिव्यक्ति के रूप में हुआ है। आपके परवर्ती कहानी-संग्रहों में आधुनिकता-बोध की प्रवृत्ति उभरती हुई लक्षित होती है।" ¹⁰

गोविन्द मिश्र— गोविन्द मिश्र के महत्त्वपूर्ण कहानी-संग्रह हैं— 'नये पुराने माँ बाप', 'अन्तःपुर', 'रगड़ खाती आत्माएँ', 'धाँसू', 'अपाहिज', 'खुद के खिलाफ', 'खाक इतिहास', 'पगला बाबा'। "विविध जीवन-सन्दर्भों की विरूपताओं को उकेरने वाले, आधुनिक दृष्टि-सम्पन्न चर्चित कहानीकार गोविन्द मिश्र की कहानियों में आज के मध्यवर्ग का पूरा जीवन प्रतिबिम्बित है। सम्बन्धों का अजनबीपन, पीढ़ियों का अन्तराल और उससे उत्पन्न तनाव, राजनीतिक अवमूल्यन और भ्रष्टाचार, दफतरों की यान्त्रिकता और भ्रष्टाचार, शिक्षा पद्धति की जड़ता, शिक्षित मध्यवर्ग की कुण्ठा और स्नॉबरी, टूटते हुए मूल्यों की पीड़ा यह सब कुछ आपकी कहानियों में सजीव हो उठा है। यह होने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि आप किसी विचारधारा के प्रति प्रतिबद्ध हैं। विचारधारा के अभाव ने आपकी रचना-दृष्टि को यथा तथ्यवादी बना दिया है। आपको सामाजिक विसंगतियों और अंतर्विरोधों की पहचान तो है लेकिन समाज को बेहतर बनाने के लिए आप किसी विकल्प की ओर संकेत नहीं करते।" ¹¹

बलराम भी इनके कहानी संग्रह, 'खुद के खिलाफ' पर प्रशंसात्मक टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि, "धुंधभरी सुर्खी" जैसा यात्रावृत्तांत लिखने और सातवें दशक की हिन्दी कहानी के वैशिष्ट्य को 'स्थितियाँ रेखांकित' जैसी किताब के जरिए रेखांकित करने वाले कथाकार गोविन्द मिश्र के छठें कहानी संग्रह 'खुद के खिलाफ' में इनकी ग्यारह कहानियाँ संग्रहीत हैं। अपने अनेक समकालीन कथाकारों की तरह गोविन्द मिश्र अभी चुके नहीं हैं। अनुभवों की विपुल संपदा उनके पास है और उन्हें कलात्मक

परिणतियों तक पहुँचा सकने की क्षमता भी। इस संग्रह की कम-से-कम दो कहानियाँ 'जंग' और 'कहानी नहीं' ऐसी हैं, जो हमें न सिर्फ ताजगी भरा एहसास देती हैं, बल्कि हिन्दी की कुछ अविस्मरणीय कहानियों के हमारे खजाने में भी शामिल हो जाती हैं।¹²

महीप सिंह— सचेतन कहानी के अगुआ के रूप में प्रतिष्ठित महीप सिंह ने बहुत सी कहानियाँ लिखी हैं। आपके अब तक के कहानी-संग्रह हैं— 'सुबह के फूल', 'उजाले के उल्लू', 'घिराव', 'कुछ और कितना', 'कितने सम्बन्ध', 'दिल्ली कहाँ है'। आपकी कहानियों के विषय मुख्यतः महानगरीय जीवन की यांत्रिकता और संवेदन-क्षीणता, मानवीय रिश्तों में आने वाले बदलाव और उसकी पीड़ा, जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त भ्रष्टाचार मनुष्य की निरीहता और लाचारी, स्त्री-पुरुष के सहज यौन आकर्षण, दाम्पत्य जीवन की विसंगतियों और तनाव, साम्प्रदायिक संकीर्णता का विरोध, मानवीय मूल्यों के ह्रास और बढ़ती हुई अमानवीयता आदि हैं। इन महत्वपूर्ण विषयों को आधार बनाकर उन्होंने बहुत सी कहानियाँ लिखी हैं, 'लेकिन उनके यहाँ ऐसी कहानियाँ ना के बराबर हैं, जिन्होंने कहानी परिदृश्य में अपनी पहचान छोड़ी हो या रचनावस्तु एवं कला के स्तर पर कहानी में कोई गंभीर और उल्लेखनीय हस्तक्षेप किया हो। उनकी कुछ उल्लेखनीय कहानियों में 'कील', 'कछुए', 'युद्धमन', 'पार-दर्शक' और 'स्वराघात' आदि का नाम लिया जा सकता है। महीप सिंह की कहानियाँ निम्न-मध्य और मध्यवर्गीय जीवन की सामान्य स्थितियों पर केन्द्रित होती हैं और औसतपन ही उनकी सबसे बड़ी सीमा है। बहुत हल्के-फुल्के ढंग से स्थितियों पर चिढ़ाते और व्यंग्य करते हुए वे आगे बढ़ जाते हैं।¹³

हृदयेश— 'छोटे शहर के लोग', 'अँधेरी गली का रास्ता', 'इतिहास', 'उत्तराधिकारी', 'अमरकथा' तथा 'नागरिक' आदि हृदयेश के महत्वपूर्ण कहानी-संग्रह हैं। 'हृदयेश ने छोटे शहर की अँधेरी गलियों के लोगों के जीवन को अपनी कहानियों का विषय बनाया है, जहाँ बाजार के बाद एक सड़क होती है, जिससे धमनियोंनुमा कई सड़कें जुड़ती हैं और गलियों के अन्दर गलियाँ होती हैं। इन गलियों के मकान एक-दूसरे पर लदे हुए, एक-दूसरे को टेलते हुए अपने में सिकुड़े हुए, दीनता से मुँह फैलाए हुए, सामान और जिम्मेदारी के भार से कमर तोड़े हुए होते हैं, जिसमें अंबादास जैसे लाखों लोग गुजारा करते हैं। ये छोटे शहर मुद्दत बाद भी वहीं के वहीं हैं। वहाँ की सड़कें अभी भी तंग और दीन-हीन हैं। पटरियों पर दुकानें वैसी ही बेढंगी और बेसिलसिलेवार हैं। मकान मैले, फीके और सहमे-सिकुड़े हैं।

इस तरह के छोटे शहर के बदरंग परिवेश के अत्यन्त आत्मीय और जीवन्त चित्र हृदयेश की कहानियों में मिलते हैं। अपनी लोकरंजिनी भाषा के जरिए हृदयेश की कहानियाँ बिना कोई शोर-शराबा किये न सिर्फ सामाजिक विसंगतियों पर चोट करती हैं, बल्कि अच्छे-बुरे मानवीय व्यवहारों की जाँच-पड़ताल करते हुए शोषण, दमन, उत्पीड़न और अन्याय का विरोध भी करती हैं, पर यह सब करते हुए वे किसी आंदोलन या पार्टी का पैंफलेट नहीं बनतीं, हालाँकि हृदयेश की राजनीतिक समझ और प्रतिबद्धता को उनकी कहानियाँ बखूबी प्रकट कर देती हैं।¹⁴

माहेश्वर— 'माहेश्वर प्रगतिशील विचारधारा के जनवादी कहानीकार हैं। 'डॉ० माहेश्वर की कहानियाँ', 'स्पर्श', 'डी.पी. सिंह की डिस्पेन्सरी' आदि आपके प्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं। आपने अपनी कहानियों में यथास्थिति को तोड़कर नये समाज के निर्माण के लिए संघर्ष का आह्वान किया है। माहेश्वर ने मजदूरों के हितों का रक्षक होने का दम भरने वाली कम्यूनिस्ट पार्टियों में आने वाली विकृतियों पर भी प्रहार किया है। कम्यूनिस्ट नेता भी भोले-भाले मजदूरों को अपने हितों के लिए इस्तेमाल करते हैं। आपकी कुछ कहानियों में विचारधारा के दबाव से शिल्प कमजोर पड़ गया है, किन्तु ऐसा अधिक नहीं हुआ है। सब मिलाकर डॉ. माहेश्वर प्रतिबद्ध किन्तु विवेकशील रचनाकार के रूप में सामने आये हैं।¹⁵

कामतानाथ— 'छूट्टियाँ', 'तीसरी साँस', 'सब ठीक हो जाएगा' आदि कामतानाथ के प्रकाशित कहानी-संग्रह हैं। 'कामतानाथ पर एक आरोप प्रायः लगता रहा है कि वे मध्यवर्गीय पारिवारिक जीवन के घेरे में कैद होकर रह गये हैं, 'एक और हिन्दुस्तान', 'समुद्र तट पर खुलने वाली खिड़की', 'सुबह होने तक' जैसे उपन्यास तथा 'तीसरी साँस' जैसी उत्कृष्ट कहानी, लिखकर कामतानाथ ने इस आरोप

से बरी होने की कोशिश की है। 'तीसरी साँस' में तो कामतानाथ का एकदम दूसरा ही रूप सामने आया है, जो कामतानाथ के एक मेजर राइटर (बड़ा लेखक) हो सकने की आश्वस्त और प्रतीति देता है। बने-बनाये मध्यवर्गीय घेरे को तोड़कर एक मामूली से केबिनमैन की जिंदगी का आत्मीयतापूर्ण आख्यान 'तीसरी साँस' के रूप में लिखकर कामतानाथ ने अपने कथा-लेखन का वह सातवाँ द्वार खोला है, जो उनके समकालीन अनेक कथाकार नहीं खोल सके और कईयों ने तो लिखना ही छोड़ दिया। 'तीसरी साँस' कामतानाथ के दूसरे कहानी-संग्रह की नामधर्मा रचना भी है। यहाँ से कामतानाथ के लेखन का एक नया अध्याय शुरू होता है, जिसके बिना कोई लेखक बड़ा लेखक नहीं बन सकता।¹⁶

विवेकी राय- 'नयी कोयल', 'गूंगा जहाज', 'बेटे की बिक्री', 'कालातीत', 'चित्रकूट के घाट पर' आदि आपके प्रसिद्ध कहानी-संग्रह हैं। "ग्रामीण जीवन, खासकर उत्तर भारत के ग्रामीण जीवन पर एक विशेषज्ञ लेखक की तरह विवेकी राय यत्र-तत्र-सर्वत्र प्रायः लिखते रहे हैं। शायद यही कारण है कि उनका अधिकांश लेखन अखबारी हो गया है। ग्राम जीवन पर पूरे समर्पण के साथ लिखते रहने के कारण वे ग्राम-जीवन के लिखेरे के तौर पर तो समादृत हुए, पर यशस्वी कथाकार का दरजा उन्हें नहीं मिल पाया। ग्राम-जीवन के प्रति निस्पृह समर्पण, तपस्या और लगन के कारण विवेकी राय के प्रति आदर और श्रद्धा का भाव रखते हुए भी उनका कहानी-संग्रह 'बेटे की बिक्री' पढ़कर उन्हें श्रेष्ठ कथाकार तक मान पाने में मुझे कठिनाई हो रही है।

अखबारी और आलोचनात्मक-विश्लेषणात्मक लेखन करते-करते, लगता है कि कहानी लिख पाना अब विवेकी राय के वश का नहीं रह गया है। उनके इस संग्रह की रचनाओं में कुछ ग्राम-रूढ़ियाँ हैं, कुछ तथ्य हैं, सत्य हैं और है मन की तरंग, कि जिधर मन चाहा, चल दिये। फलतः न तो मुँह बोलता जीवन्त परिवेश किसी कहानी में उभर पाया है और न ही कोई अविस्मरणीय चरित्र।¹⁷

संजीव- "संजीव नवें दशक में उभरकर सामने आने वाले सशक्त कहानीकार हैं। 'तीस साल का सफरनामा', 'भूमिका तथा अन्य कहानियाँ' आपके चर्चित कहानी-संग्रह हैं। अपराध आपकी पुरस्कृत और चर्चित कहानी है। आपने वर्तमान जीवन-प्रवाह को नियंत्रित करने वाली पूरी व्यवस्था पर बड़ा तीखा प्रहार किया है। पुलिस, न्याय, प्रशासन, शिक्षा सभी क्षेत्रों में व्याप्त भ्रष्टाचार का पर्दाफाश करते हुए आपने आम आदमी के मन में दहकती हुई आग से अपनी कहानियों को ऊष्मा प्रदान किया है।¹⁸ अच्छा और अधिक लिखने के बावजूद संजीव आलोचकों द्वारा उपेक्षित किए गए। लेकिन बलराम को उम्मीद है कि "एक-न-एक दिन तो संजीव की रचनात्मकता इस उपेक्षा के बाँध को तोड़कर सबके सामने उजागर हो ही जाएगी।"¹⁹

मिथिलेश्वर- "मिथिलेश्वर के महत्त्वपूर्ण प्रकाशित कहानी-संग्रह - 'बाबूजी', 'बन्द रास्तों के बीच', 'दूसरा महाभारत', 'मेघना का निर्णय', 'गाँव के लोग', 'विग्रह बाबू', 'हरिहर काका तथा अन्य कहानियाँ', 'माटी की महक धरती गाँव की', 'एक में अनेक' आदि हैं। "मिथिलेश्वर की कहानियाँ आंचलिक हुए बिना बदलते हुए ग्राम-जीवन को अंकित करती हैं। एक ओर ये कहानियाँ ग्राम-जीवन के अंधविश्वासों और अन्य विद्रूपताओं को अंकित करती हैं तो दूसरी ओर बाहर से उस जीवन को देखकर उस पर लिखने के पत्रकारी उत्साह पर व्यंग्य भी किया गया है। 'दूसरा महाभारत' में भाइयों की आपसी लड़ाई दो वर्गों की सैद्धांतिक लड़ाई का प्रतीक बन जाती है, जिससे इस तथ्य को रेखांकित किया जा सका है कि जो जमीन जोतेगा, वही उसका वास्तविक मालिक भी होगा।"²⁰

शानी- 'बबूल की छाँव', 'डाली नहीं फूलती', 'छोटे घेरे का विद्रोह', 'शर्त का क्या हुआ', 'बिरादरी तथा अन्य कहानियाँ', 'सड़क पार करते हुए' आदि शानी के प्रकाशित कहानी-संग्रह हैं। "शानी की परवर्ती कहानियों में अपने परिवेशगत सामाजिक अंतर्विरोधों के बीच जो युवती चित्रित है उसकी आत्मसजग और काफी कुछ गैर-रोमानी छवि पर्याप्त आश्वस्तकारी है। 'छल' की नाजो पिता की पुश्तैनी जायदाद नष्ट हो जाने के बाद, परिताप और मलाल की स्थिति में नौकरी के लिए बाहर निकलती है। 'एक संधि और' की कटे बालों वाली ताहिरा अपने गैर मामूली खुलेपन के कारण लोगों की बातों की चिन्ता किए बिना अपनी निश्छल आत्मीयता उलीचती चलती है। 'एक काली लड़की' की मेहरान समाज के विभिन्न स्तरों और वर्गों के लोगों की प्रतिक्रियाओं को बहुत संजीदगी से तोड़ती है।

कुछ तोड़ने की चेतना और दिखावे से पूरी तरह मुक्त रहकर।²¹ शानी केवल नारी-जीवन की ही विसंगति को सामने नहीं रखते हैं, बल्कि निम्न-मध्य वर्ग के उस प्रत्येक व्यक्ति की कथा कहते हैं, जो अर्थाभाव में जी रहा है।

राकेश वत्स— ‘राकेश वत्स ‘सक्रिय कहानी’ आंदोलन के पुरस्कर्ता हैं। आपने यह अनुभव किया है कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भी सामान्य जन के जीवन में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ है। जिन युक्तियों और हथियारों का प्रयोग करके विदेशी ताकत हमें निष्क्रिय और विचार शून्य बनाए हुए थी, उन्हीं का प्रयोग वर्तमान व्यवस्था में भी किया जा रहा है। इसलिए उत्पीड़न और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष-चेतना को जाग्रत करना आज प्रत्येक रचनाकार का धर्म होना चाहिए। राकेश वत्स सन् 1970 ईसे रचना के क्षेत्र में निरन्तर सक्रिय हैं। ‘अतिरिक्त तथा अन्य कहानियाँ’, ‘अंतिम प्रजापति’, ‘अभियुक्त’, ‘शुरुआत’, ‘एक बुद्ध और’ आदि आपके प्रसिद्ध कहानी-संग्रह हैं। समाज में शोषण के जितने स्रोत और स्तर हैं, सबको आपने सामने रखा है और शोषितों का पक्ष लेते हुए शोषण, भ्रष्टाचार, अन्याय को प्रश्रय देने वाली व्यवस्था का विरोध किया है। निश्चय ही, आपकी कहानियाँ सामाजिक प्रतिबद्धता की कहानियाँ हैं।²²

धीरेन्द्र अस्थाना— ‘लोग हाशिए पर’, ‘आदमी खोर’, ‘मुहिम’, ‘खुल जा सिमसिम’, ‘विचित्र देश की प्रेम कथा’, ‘जो मारे जाएँगे’ आदि कहानी-संग्रहों के माध्यम से अपनी उपस्थिति दर्ज कराने वाले धीरेन्द्र अस्थाना, समकालीन हिन्दी कहानी के सशक्त हस्ताक्षर हैं। ‘आपकी कहानियों में महानगरों में नौकरी की तलाश में भटकते हुए युवक, अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए संघर्ष करते पत्रकार, मालिक और नौकर की सामाजिक मर्यादा के अन्तराल को अनुभव करते हुए छोटी उम्र के बच्चे, दाम्पत्य संबंधों की रिक्तता के बोध से पीड़ित युवक और घोर महँगाई से लड़ते हुए विक्षिप्तता की स्थिति में पहुँचा निम्न-मध्य वर्ग का सामान्य व्यक्ति, यह सब देखे जा सकते हैं किन्तु संघर्ष करती हुई यह युवा-पीढ़ी अपनी वर्तमान स्थिति को नियति मानकर निष्क्रिय नहीं हो गयी है, वह समाज को बदलने के लिए अपनी सीमाओं में संघर्षरत है।²³

विजय मोहन सिंह— विजयमोहन सिंह के कहानी-संग्रह हैं— ‘टट्टू सवार’, ‘एक बँगला बने न्यारा’, ‘गमे-हस्ती का हो किससे.....’ तथा ‘शेरपुर 15 मील’। ‘विजय मोहन सिंह का कथा संसार इतना सिमटा हुआ होगा, यह हमने सोचा तक नहीं था, क्योंकि एक दौर विशेष में उनके संग्रह ‘टट्टू सवार’ की काफी चर्चा हुई थी, पर उनके संग्रह ‘एक बँगला बने न्यारा’ की अधिकांश रचनाएँ किसी भी प्रकार का प्रभाव छोड़ पाने में सर्वथा असफल रही हैं। संग्रह पढ़कर लगा कि जैसे ये रचनाएँ देश की मौजूदा सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थितियों से कटी हुई तो हैं ही, इन्हें काल और लोक से भी कुछ लेना-देना नहीं है। बहुत मुमकिन है कि लोग उन कहानियों को प्रगतिशील और क्रांतिकारी भी घोषित करें, पर मेरी नजर में विजय मोहन सिंह की इन रचनाओं में किसी भी तरह की प्रगतिशीलता का सर्वथा अभाव है, सिर्फ एक कहानी ‘विस्तार’ की युवती की बदली हुई मानसिकता में किंचित प्रगतिशीलता देखी जा सकती है, बाकी कहानियों पर तो अकहानी की प्रेतछायाएँ ही यत्र-तत्र दिखती हैं।²⁴

अब्दुल बिस्मिल्लाह— ‘टूटा हुआ पंख’, ‘कितने-कितने सवाल’, ‘रैन बसेरा’, ‘अतिथि देवो भव’ आपके प्रसिद्ध कहानी-संग्रह हैं। ‘अब्दुल बिस्मिल्लाह के पास अनुभवों की विविधता है, पर उन्हें पूरी तरह से पक जाने तक बिस्मिल्लाह धैर्य नहीं रख पाते। परिणाम यह हुआ कि इनकी कुछेक कहानियों को छोड़कर अधिकांश कहानियाँ जल्दी में लिखी गयी कहानियों की तरह पाठक पर कोई गहरा असर नहीं छोड़ पातीं। मसलन ‘क्रमशः’ कहानी में पूरे-के-पूरे गाँव के धर्म-परिवर्तन का मामला सिर्फ सूचनात्मक होकर रह गया, उदाहरणार्थ इस कथन को देखा जा सकता है— ‘बाबा बताते थे कि हम लोगों की पिछली पीढ़ियों के लोग ठाकुर थे, दो-तीन पीढ़ियों पूर्व हम मुसलमान हुए हैं। पूरा-का-पूरा गाँव मुसलमान हो गया था, मगर बाद में कुछ हिन्दू भी बस गये। शायद यही कारण है कि अब भी घर में ज्यादातर हिन्दू रीति-रिवाजों का पालन होता है। इसमें संदेह नहीं कि पूरे गाँव में बाबा का वही ठकुराई रोब था।’ इस ठकुराई रोब के धूल चाटने का कारुणिक चित्र इस कहानी में है, अगर इसे पर्याप्त धैर्य, श्रम और तन्मयता से लिखा जाता तो यह एक अविस्मरणीय कहानी हो सकती थी, जो हमें

सामंतवाद के पानी माँगने की करुणा से ही सराबोर नहीं करती, भारतीय उपमहाद्वीप में मुसलमानों की जड़ों को पूरी तरह से खोलकर हमें दिखाती भी।²⁵

नरेन्द्र कोहली— “अब तक आपके ‘कहानी का अभाव’, ‘दृष्टि देश में एकाएक’, ‘सम्बन्ध’, ‘शटल’ आदि कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इन संग्रहों में नरेन्द्र कोहली ने सामाजिक जीवन के अनेक पक्षों की विकृतियों की ओर इंगित किया है। लेकिन सब मिलाकर आपका विरोध जीवन के नैतिक—सामाजिक पक्ष की विसंगतियों को ही केन्द्र में रखकर उभरता है। पाश्चात्य और भारतीय सभ्यता के गुण—दोष की तुलना, दाम्पत्य सम्बन्धों के तनाव, नौकरी, विवाह और प्रेम से सम्बद्ध समस्याएँ, विदेश—नीति और नेताओं की मानसिकता पर कुछ व्यंग्य, इस परिधि के भीतर ही आपकी कथा—भूमि सिमट कर रह गयी है।²⁶

भीमसेन त्यागी— “नयी कहानी आंदोलन के दौर में कुछ कथाकारों ने अपनी पहचान महज श्रेष्ठ लेखन से कायम की थी। प्रचार—तन्त्र से दूर रहने के कारण वे भरपूर चर्चा में न आ सके थे, फिर भी वे अद्यतन सृजनरत रहे हैं और उनका लेखन आज भी संदर्भ—च्युत नहीं हुआ है। भीमसेन त्यागी ऐसे ही कहानीकार हैं, जिन्होंने बहुत कम लिखकर भी न केवल अपनी अलग पहचान स्थापित की अपितु, प्रबुद्ध समालोचना का ध्यान भी अपनी ओर आकर्षित किया है। उनका प्रथम कथा—संग्रह ‘दीवारें ही दीवारें’ 1970 ई. में प्रकाशित हुआ था और उसके ठीक 10 वर्ष पश्चात् 1980 में ‘जबान’ प्रकाशित हुआ। ‘जबान’ संग्रह की कहानियाँ इस बात का प्रमाण हैं कि त्यागी का कहानीकार अपनी रचना—धर्मिता में पूरी ईमानदारी से अपने समय—सन्दर्भों से जुड़ा रहा है।²⁷

मधुकर सिंह— “मधुकर सिंह सचेतन कहानी—आन्दोलन से जुड़े हुए कहानीकारों में से एक हैं। इनकी कहानियों में आधुनिकता—बोध की परख और पहचान भी की गयी है। ‘पूरा सन्नाटा’ और ‘पहला पाठ’ आपके दो कहानी—संग्रह हैं।²⁸ बलराम, मधुकर सिंह की कहानियों के सन्दर्भ में बेबाक टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि, “मधुकर सिंह कहानियों के जरिए बेशक अपने वर्ग की कुछ सही बातें हमें बताते हैं, लेकिन उन सही बातों को बहुत प्रभावशाली ढंग से पाठकों तक संप्रेषित नहीं कर पाते। उन्हें अपने वर्ग—मित्र और वर्ग—शत्रु की पहचान है, उनके पास जमीन की पकड़ भी है, लेकिन उनकी अभिव्यक्ति तकनीक में कहीं कोई बड़ी कमी है कि वे बात को प्रामाणिकता और विश्वसनीयता के उस बिन्दु तक नहीं ले जा पाते, जहाँ रचना क्लासिक बन जाती है। फलतः मधुकर सिंह की कहानियाँ अपेक्षित प्रभाव नहीं डाल पाती और न ही इस सड़ी—गली व्यवस्था पर पूरी क्षमता से प्रहार कर पाती हैं, जबकि जमीन से जुड़े हुए मधुकर सिंह जैसे लोग अगर अपनी अभिव्यक्ति क्षमता का पूरा विकास कर पाते, रचना को कलात्मक परिणतियों तक पहुँचा सकने का कौशल हासिल कर पाते तो निश्चय ही वे हिन्दी कथा—साहित्य को अविस्मरणीय कहानियाँ दे सकते थे।²⁹

सतीश जमाली— “सतीश जमाली के अब तक प्रकाशित चार कहानी—संकलनों के बाद उनका पाँचवाँ सब इकट्ठा कहानी—संग्रह ‘जंगजारी’ है। ‘जंगजारी’ में उनके चारों संकलनों ‘प्रथम पुरुष’, ‘थके हारे’, ‘ठाकुर संवाद’ और ‘सहपाठी तथा अन्य कहानियाँ’ की सम्पूर्ण कहानियों के अलावा उनकी 1991 से 2000 के बीच प्रकाशित पाँच कहानियाँ भी संकलित हैं। ‘जंगजारी’ की कहानियों से गुजरने के बाद यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सतीश जमाली गरीब और उपेक्षित लोगों के पैरो कार कहानीकार हैं और उनकी सार्थक एवं असरदार कहानियों का औसत ठीक—ठाक है। उनकी दस—पंद्रह कहानियाँ काबिलेगौर हैं। सतीश जमाली की कहानियों के पात्रों से रूबरू होते ही लगता है कि प्रेमचंद की यह नसीहत उनके जेहन में स्थायी भाव के रूप में मौजूद है— ‘साहित्य की गोद में उन्हें आश्रय मिलना चाहिए जो निराश्रय हैं— जो पतित हैं— जो अनादृत हैं।’ निराश्रितों—शोषितों—पीड़ितों के हक में प्रेमचंद द्वारा शुरू की गयी वैचारिक लड़ाई को अग्रगति प्रदान करने वाली सतीश जमाली की ‘काबिले गौर’ कहानियों पर कोई भी रायजनी करने के पहले उनके हालाते दौर और उनकी खुद की नवैयत पर गौर करना जरूरी है।³⁰

सन्दर्भ सूची—

1. डॉ. रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी का गद्य—साहित्य, पृ. 234—36
2. उपर्युक्त, पृ. 236
3. बलराम, समकालीन हिन्दी कहानी, पृ. 26
4. डॉ. रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी का गद्य—साहित्य, पृ. 236
5. उपर्युक्त, पृ. 236—37
6. मधुरेश, हिन्दी कहानी का विकास, पृ. 132
7. डॉ. रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी का गद्य—साहित्य, पृ. 237
8. मधुरेश, हिन्दी कहानी का विकास, पृ. 130
9. मधुरेश, हिन्दी कहानी का विकास, पृ. 178
10. डॉ. रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी का गद्य—साहित्य, पृ. 237—38
11. उपर्युक्त, पृ. 238
12. बलराम, समकालीन हिन्दी कहानी, पृ. 59
13. मधुरेश, हिन्दी कहानी का विकास, पृ. 118
14. बलराम, समकालीन हिन्दी कहानी, पृ. 90
15. डॉ. रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी का गद्य—साहित्य, पृ. 239
16. बलराम, समकालीन हिन्दी कहानी, पृ. 98
17. बलराम, समकालीन हिन्दी कहानी, पृ. 79—80
18. डॉ. रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी का गद्य—साहित्य, पृ. 239—40
19. बलराम, समकालीन हिन्दी कहानी, पृ. 20
20. मधुरेश, हिन्दी कहानी का विकास, पृ. 180
21. मधुरेश, हिन्दी कहानी का विकास, पृ. 100—101
22. डॉ. रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी का गद्य—साहित्य, पृ. 240
23. डॉ. रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी का गद्य—साहित्य, पृ. 241
24. बलराम, समकालीन हिन्दी कहानी, पृ. 11—12
25. बलराम, समकालीन हिन्दी कहानी, पृ. 77
26. डॉ. रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी का गद्य—साहित्य, पृ. 242
27. डॉ. पुष्पाल सिंह, समकालीन कहानी : रचना—मुद्रा, पृ. 176
28. डॉ. रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी का गद्य—साहित्य, पृ. 243
29. बलराम, समकालीन हिन्दी कहानी, पृ. 72
30. विद्याधर शुक्ल, प्रेमचन्द की विरासत बनाम हिन्दी कहानी

महावीर प्रसाद द्विवेदी की अनूदित कृति 'स्वाधीनता': एक विवेचना

सदरे आलम

पीएच डी शोधार्थी, जे एन यू, नई दिल्ली

महावीर प्रसाद द्विवेदी (सन् 1864-1938) संस्कृत, अंग्रेजी, मराठी, गुजराती, फारसी एवं उर्दू के विशेष जानकार थे। हिन्दी के श्रेष्ठ निबंधकार, *सरस्वती* पत्रिका के सम्पादक, कवि, समालोचक, गद्यकार और अनुवादक भी थे। उनकी विचार-पद्धति अंग्रेजी विचारक फ्रांसिस बेकन, जॉन स्टुअर्ट मिल और हर्बर्ट स्पेन्सर से मेल खाती थी। वे इन चिंतकों के विचारों से भारतीयों को परिचित कराना चाहते थे। इसी उपक्रम में उन्होंने इन विचारकों की प्रसिद्ध पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद *बेकन-विचार-रत्नावली*, *स्वाधीनता*, *शिक्षा*, *जल चिकित्सा* शीर्षक से किया।

जॉन स्टुअर्ट मिल की कालजयी रचना *On Liberty* का हिन्दी अनुवाद द्विवेदी ने *स्वाधीनता* शीर्षक से किया। इस पुस्तक का पहला संस्करण सन् 1907 में हिन्दी-ग्रन्थ-प्रकाशक मण्डली, नागपुर से; दूसरा संस्करण सन् 1912 में हिन्दी-ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई से; तीसरा संस्करण सन् 1921 में दौलतपुर, रायबरेली, उत्तर प्रदेश से प्रकाशित हुआ। पुस्तक की शुरुआती पृष्ठों में मिल का जीवन-चरित भी दिया गया है। पुस्तक की भूमिका अनुवादक ने स्वयं लिखी है। पुस्तक में कुल पाँच अध्याय हैं-

1. प्रस्तावना
2. विचार और विवेचना की स्वाधीनता
3. व्यक्ति-विशेषता भी सुख का एक साधन है
4. व्यक्ति पर समाज के अधिकार की सीमा
5. प्रयोग

जॉन स्टुअर्ट मिल (सन् 1806-1873) इंग्लैंड के एक यशस्वी-चिन्तक, अर्थशास्त्री, तत्त्ववेत्ता, दार्शनिक तथा उपयोगितावादी दर्शन के उन्नायक थे। उन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा लोगों को गरीबी और राजनीतिक दमन से छुटकारा दिलाने का प्रयत्न किया। उन्होंने अपनी पुस्तक *On Liberty* में इस प्रश्न पर विचार किया है कि व्यक्ति को कितनी और कैसी स्वतंत्रता प्राप्त होनी चाहिए। कानून व्यक्ति के अधिकारों को किस सीमा तक नियंत्रित कर सकती है। उन्होंने अपनी रचनाओं में लोकतंत्र का गुणगान किया है। उनके स्वतंत्रता-विषयक विचारों ने विश्व भर के स्वतंत्रता सेनानियों को प्रेरणा दी है। उस कृति में उन्होंने मतभेद को सहानुभूति से सहन करने का सुझाव दिया है। उनकी दृष्टि से विचारों की स्वतंत्रता मानव-प्रगति की आवश्यक शर्त है।

दौलतपुर, रायबरेली से 10 जनवरी, 1921 को लिखे गए तीसरे संस्करण की भूमिका में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने स्पष्ट किया कि "दूसरों को हानि पहुंचाए बिना अपने मनमाने करने और जी की बात खोलकर कह देने का महत्त्व अब प्रायः सभी शिक्षित जनों की समझ में आ गया है। राजनीति की जिन जटिल समस्याओं की समालोचना इस पुस्तक में प्रसंगवश आ गई है उनकी भी चर्चा इस समय इस देश में खूब हो रही है।"¹

स्वाधीनता पुस्तक में उल्लेख है कि "समाज में रह कर व्यक्ति के लिए यह जरूरी है कि वह औरों के साथ उचित व्यवहार करे, अर्थात् व्यवहार की जो मर्यादा बाँध दी जाए उसके बाहर वह कदम नहीं रखे।"² *स्वाधीनता* पुस्तक में नौकरशाहों की तानाशाही पर भी बात हुई है। भारत में आज भ्रष्टाचार, जातिवाद, सम्प्रदायवाद, धर्मवाद, असहिष्णु वातावरण और अशिक्षा आदि के साथ-साथ लालफीताशाही को भी बहुत बड़ी समस्या के रूप में चिह्नित किया जा रहा है। इसलिए वर्तमान काल की प्रासंगिकता भी इस कृति में देखी जा सकती है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी के लेखन की शुरुआत गुलाम भारत में हुई थी। भारत उस समय बाहरी और भीतरी गुलामी से घिरा हुआ था। बाहरी गुलामी औपनिवेशिक शासन यानी अंग्रेज की थी जबकि भीतरी परम्परा, जातीयता और वर्गीय गुलामी थी। उनके द्वारा अनूदित *स्वाधीनता* नवजागरण के दौर की महत्वपूर्ण कृति है। नवजागरण की सबसे प्रमुख विशेषता हिन्दी प्रदेश की जनता में स्वातंत्र्य चेतना को जागृत करना रहा है। हिन्दी नवजागरण के तीन चरण माने गए हैं। प्रथम सन् 1857 की क्रांति, द्वितीय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा तृतीय महावीर प्रसाद द्विवेदी से सम्बन्धित है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी का समय सन् 1905 में बंगाल विभाजन से लेकर सन् 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना, कांग्रेस का अधिवेशन, सन् 1914 में प्रथम विश्व युद्ध तथा सन् 1917 में रूसी क्रांति आदि वैश्विक घटनाओं से पूर्ण रहा है। उन्होंने अपने समय की इन सभी घटनाओं पर लेखन किया है। अपने देश की जनता को स्वतंत्रता के प्रति जागृत करने में उनके द्वारा अनूदित पुस्तक *स्वाधीनता* मिल का पत्थर साबित हुई थी।

महावीर प्रसाद द्विवेदी का अनुवाद चिन्तन भारतीय इतिहास के ऐसे बिन्दु पर प्रकट हुआ था जब अंग्रेज लोग अनुवाद-उपक्रम की गलत धारणाओं के सहारे भारतीय नागरिकों के आचार-विचार, इतिहास-परम्परा, आहार-व्यवहार और सभ्यता-संस्कृति का नकारात्मक स्वरूप पेश कर रहे थे, भारतीय मानस को असभ्य कहकर उनका स्वाभिमान तोड़ रहे थे, मनोबल को तोड़कर मानसिक गुलाम बना रहे थे। तत्पश्चात् उनके अनुवाद कार्य ने भारतीय मानस को स्थापित किया। अनूदित कृति *स्वाधीनता* में विशेष रूप से तत्कालीन युगबोध की झांकी को देखा जा सकता है। प्रो. नवीन के मतानुसार- “इनमें से उनकी अनूदित कृतियों *शिक्षा* और *स्वाधीनता* ने उस दौर के भारतीय मानस को गर्वोन्नत होने का बल दिया।...इन दोनों कृतियों के अनुवाद ने उनके टूटते मनोबल को आत्मज्ञान दिया और वे गर्व से भर उठे।”³

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के दौरान अंग्रेजी से आधुनिक भारतीय भाषाओं में बड़े पैमाने पर अनुवाद हुआ था। उसके पहले औपनिवेशिक काल में अंग्रेज विद्वानों ने भारतीय ग्रंथों का अंग्रेजी अनुवाद किया था। अंग्रेजों द्वारा संचालित इस अनुवाद उद्योग में भारतीय मानस को समझने और शासकीय दृष्टिकोण से उनकी मनःस्थिति जानने का प्रयास था। वस्तुतः अंग्रेज विद्वान भारतीय समाज को इतिहासहीन, संस्कृतिविहीन और परम्पराविहीन सिद्ध करना चाहते थे। अंग्रेजों ने इसी अवधारणा से भारतीय साहित्य को जानने की कोशिश की थी; ताकि वे भारतीयों पर शासन करने के तरीके खोज सकें और अनुशासित -सुसज्जित अनुवाद उद्यम के माध्यम से भारतीयों के मनोबल को गिरा सकें। “मराठी के प्रख्यात उपन्यासकार गंगाधर गाडगिल ने भी अपने ऐतिहासिक उपन्यास *प्रारम्भ* में सबल साक्ष्यों के साथ इस बात की जानकारी दी है।”⁴

इस प्रकार अंग्रेजों की दृष्टि से यही उनके अनुवाद की राजनीति और सत्ता -विमर्श था। स्पष्टतः भारतीय अनुवाद की राजनीति, प्रतिरोध एवं देशीय सत्ता -विमर्श में *स्वाधीनता* का विशेष महत्व रहा है। “*ऑन लिबर्टी* (जॉन स्टुअर्ट मिल) का महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा अनूदित *स्वाधीनता* भारतीय अनुवाद का सत्ता-विमर्श था।”⁵

संदर्भ :

1. यायावर, भारत (सम्पा.), *महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली, भाग-10*, नई दिल्ली, किताबघर प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1995, पृ. 109
2. मिल, जॉन स्टुअर्ट, अनु. महावीर प्रसाद द्विवेदी, विश्वप्रकाश गुप्त/मोहिनी गुप्त (प्र. सम्पा.), *स्वाधीनता*, नई दिल्ली, राधा पब्लिकेशन्स, दूसरा संस्करण, 1912, पुनःमुद्रित, 2006, पृ. 170
3. नवीन, देवशंकर, *अनुवाद अध्ययन का परिदृश्य*, नई दिल्ली, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रकाशन मंत्रालय, भारत सरकार, प्रथम संस्करण, 2016, पृ. 122
4. वही, पृ. 66
5. वही, पृ. 139

तथागत बुद्ध के मध्यम मार्ग और आधुनिक जीवन शैली

डॉ० अभय कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर

हिंदी विभाग, बीआरएम महाविद्यालय, मुंगेर

मुंगेर विश्वविद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

भारतीय चिंतन दर्शन की परंपरा वैश्विक स्तर पर व्यापक रही है। विभिन्न दर्शन के प्रभाव के कारण भारतीय जनमानस में धार्मिक विभिन्नता की स्वरूप नजर आते हैं। भारतीय दर्शन का निष्पक्ष रूप से अध्ययन किया जाए तो हम देखेंगे इसमें विभिन्न और परस्पर विरोधी प्रवृत्तियां मौजूद हैं। इसमें आदर्शवाद भी है और भौतिकवाद भी। दर्शन की ये विविध प्रणालियां महान विचारकों के 'विशुद्ध विचारों' के रूप में ही अनिवार्यतः प्रकट नहीं हुईं। इसकी जड़ें यथार्थ में थीं। ये जड़े अर्थतंत्र और सामाजिक ढांचे में हो रहे वास्तविक परिवर्तनों में थीं।¹ यही कारण है कि विश्व के मुख्य धर्मों में चार धर्मों का उद्गम केंद्र यथा वैदिक-ब्राह्मण धर्म, बुद्ध धर्म, जैन धर्म एवं सिख धर्म का उद्गम केंद्र भारत रहा है। प्रत्येक धर्मों के दर्शन अपने-अपने स्तर पर भिन्नता रखते हुए भी समान मानवीय मूल्यों को स्थान दिया है। ऐतिहासिक रूप से वैदिक-ब्राह्मण धर्म दर्शन के विरोध अन्य तीन धर्म बौद्ध, जैन एवं सिख धर्म की उत्पत्ति हुई। विरोध का मुखर एवं वैज्ञानिक स्वरूप बौद्ध धर्म दर्शन में स्पष्ट रूप से नजर आती है। जैसा कि ज्ञातव्य है कि बौद्ध धर्म तथागत गौतम बुद्ध के दर्शन से निकला और वैश्विक स्तर पर अपनी पहचान बनाने में सक्षम रही। इसी संदर्भ में ऐतिहासिक स्तर पर बौद्ध धर्म दर्शन का प्रभाव जितना प्राचीन काल में रहा है उसका प्रभाव आधुनिक जीवन शैली पर भी नजर आता है। यह इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि अपनी वैज्ञानिक और तार्किकता को साथ लेकर मानवीय जीवन मूल्यों सं जुड़ कर अपने आप को स्थापित किया उतना किसी अन्य धर्म दर्शन ने नहीं। धर्मों के अंतर्गत मुख्य रूप से दो बातें पाई जाती- एक चमत्कार दूसरा कर्मकांड। यदि धर्म से चमत्कार और कर्मकांड को निकाल दिए जाएं तो उसके अस्तित्व पर ही खतरा उत्पन्न हो जाएगा। बुद्ध दर्शन में न तो चमत्कार की विशेषताएं ही हैं और ना ही कर्मकांड की उपलब्धता। इसीलिए यह दर्शन आधुनिक जीवन शैली को प्रभावित कर रही है।

आधुनिकता का अर्थ पारंपरिकता में तार्किक एवं वैज्ञानिक विचारों के साथ परिवर्तन है। तार्किकता ने वैज्ञानिक सोच को स्थापित किया और विभिन्न अविष्कारों के माध्यम से आधुनिक जीवन शैली को सरल एवं सुगम बनाया। इसके सकारात्मक परिणाम को इनकार नहीं किया जा सकता है लेकिन अतिवादी वैयक्तिकता एवं भोगवादी प्रवृत्ति ने आधुनिक जीवन पर नकारात्मक प्रभाव डाले हैं। इसके परिणाम स्वरूप परिवार का विघटन, स्वार्थ लोलुपता, अर्थ को ही जीवन का मुख्य लक्ष्य मानना जैसी सोच में परिवर्तन करने में बौद्धदर्शन के मध्यम मार्ग की विशिष्टता को स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका को स्थापित किया है।

दर्शन मानवीय जीवन मूल्यों से जुड़कर तय होता है। इन्हीं मूल्यों के परिपेक्ष में दर्शन को 'आत्मा का विज्ञान'² भी कहा गया है। यद्यपि इस मत से विद्वानों में मतैक्य हैं और इसे सच्चाई से दूर मानते हैं। वजह यह है कि विज्ञान यथार्थ परक की तार्किक स्थिति को स्वीकार करता है जबकि आत्मा का स्वरूप अभी तक केवल मिथकीय अवधारणा में ही व्यापक स्वरूप को ग्रहण किए हुए हैं। आत्मा

¹दामोदरन, के : भारतीय चिंतन परंपरा, पृ. 83

² राव, नारायण : इंद्रोडक्शन टु वेदान्त, पृ.33 (उद्धृत :दामोदरन, के : भारतीय चिंतन परंपरा, पृ. 83)

आधारित दर्शनों ने परमात्मा को जन्म दिया और इसे पुनर्जन्म से जोड़कर एक विकट अवैज्ञानिक स्थिति को स्थापित किया। प्राचीनतम् सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों में आत्मा आधारित दर्शन में इसे जीवन और मृत्यु से जोड़कर यह साबित करने का प्रयास किया कि आत्मा अमर है जिसका कभी नाश नहीं होता। इसको श्रीमद्भागवतगीता जैसे धार्मिक ग्रंथों ने पुष्ट किया है।

नैनं छिन्दति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।

न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ।।¹

(अर्थ : यह आत्मा न तो कभी किसी शास्त्र के द्वारा खंड-खंड किया जा सकता है, ना तो कभी किसी शास्त्र के द्वारा खंड-खंड किया जा सकता है ना अग्नि द्वारा जलाया जा सकता है नजल द्वारा भिगोया या वायु द्वारा सुखाया जा सकता है।)

इसी तरह के अनेक श्लोक अध्याय 2 में आए हैं। आत्मा को अमरत्व प्रदान कर परमात्मा को स्थापित किया गया है। बाद में इसी पर आधारित द्वैतवाद और अद्वैतवाद जैसी आत्मा को स्थापित करने वाली दर्शनों का पुनर्जन्म हुआ।

बौद्ध दर्शन में मानवीय अस्तित्व की वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की गई है। जीवन में दुख है, इस सत्य का उद्घाटन किया। बुद्ध बड़े व्यवहारिक सुधारक थे। उन्होंने अपने समय की वास्तविकताओं को खुली आंखों से देखा। वह निरर्थक बाद विवादों में नहीं उलझे जो उनके इस समय में आत्मा और परमात्मा ब्रह्म के बारे में जोरों से चल रहे थे। उन्होंने अपने को सांसारिक समस्याओं में लगाया। उन्होंने कहा कि संसार दुखमय है और लोग केवल काम, इच्छा, लालसा के कारण दुख पाते हैं। यदि इस काम पर विजय पाई जाए तो निर्वाण प्राप्त हो जाएगा अर्थात्, जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्ति मिल जाएगा।² जीवन के यथार्थ और सत्य का उद्घाटन बुद्ध के दर्शन में पाते हैं जो आधुनिक युग में आए विचार हैं जिनके कारण आज की जीवन शैली में विकार उत्पन्न हो गए हैं। इसके निदान के लिए बुद्ध ने चार सत्य और अष्टांगिक मार्ग की स्थापना की।

मध्यम मार्ग क्या है? मध्यम मार्ग जीवन शैली की दशा एवं दिशा है जिसमें अतिवाद का निषेध है। अतिवाद का अर्थ जब जीवन को इतना कठिन और दुरूह बना दिया जाए कि जीवन मृतप्राय हो जाए अथवा इतना भोगवादी हो जाए कि जीवन की संभावनाएं ही मिट जाए। इसी को लक्ष्य करके तथागत बुद्ध ने बनारस के समीप सर्वप्रथम अपने शिष्यों को शिक्षा दी थी। इन शिक्षाओं का तत्व धम्मचक्रप्रवर्तन सूक्त में समाहित है।³ बुद्ध ने शिक्षा देते हुए अपने शिष्यों से कहा एक भिक्खू को दो ध्येयों की ओर नहीं जाना चाहिए। यह दो क्या हैं? इच्छाओं और उससे उत्पन्न होने वाले आनंद का अनुसरण को निम्न, सामान्य पुनर्जन्म का हेतु, अधम एवं अलाभकारी है तथा पीड़ा और दुख का अनुसरण जो दुखदायी, अधम एवं अलाभकारी है।⁴ यही बुद्ध के मध्यम मार्ग का आरंभ है। 'तथागत बुद्ध का मध्यम मार्ग इन दोनों का परित्याग करता है, वह व्युत्पन्न है, स्पष्ट दृष्टि लाने वाला है, विवेक का निर्माता है तथा शांति ज्ञान पूर्ण विवेक एवं निर्माण की ओर ले जाने वाला है। वह मध्यम मार्ग क्या है? वह श्रेष्ठ अष्टांगिक मार्ग है— सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वचन, सम्यक कर्म, सम्यक आजीविका, सम्यक प्रयत्न, सम्यक विचार और सम्यक ज्ञान। यही मध्यम मार्ग है।⁵ दुख के सत्य को अष्टांगिक मार्ग के द्वारा जाना जा सकता है। जीवन में दुख है यह सत्य वैज्ञानिक सत्य तथा तथ्य है। इस दुख से निवारण के लिए अष्टांगिक मार्ग में जो सम्यक आठ शब्द हैं वही आधुनिक जीवन शैली को प्रभावित कर रहा है।

¹श्रीमद्भागवतगीता : टीकाकार श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद, अध्याय दो, श्लोक 23, पृ. 74

² प्राचीन भारत : रामशरण शर्मा, पृ. 99

³ बाशम, ए एल : अद्भुत भारत, पृ. 226

⁴बाशम, ए एल : अद्भुत भारत, पृ. 226

⁵बाशम, ए एल : अद्भुत भारत, पृ. 226

चिंतन, धर्म एवं दर्शन का प्रभाव दो संदर्भों में देखा जा सकता है— एक ऐतिहासिक परिपेक्ष में सामाजिक जीवन पर प्रभाव, दूसरा वर्तमान में सामाजिक जीवन पर प्रभाव। दर्शन की स्थापना ऐतिहासिक स्थितियों एवं परिस्थितियों में होते हैं और उसमें परिवर्तन के साथ-साथ तत्कालीन समाज में स्थापित होता है। यह परिवर्तन समकालीन परिस्थितियों पर निर्भर करता है। यथा यदि वैश्विक स्तर पर दर्शनों का प्रभाव देखें तो उसमें जो परिवर्तन हुए हैं वह अलग-अलग स्तरों में हुए हैं। समाज यायावरी जीवन से क्रमशः परिवर्तन के साथ सभ्य जीवन की ओर बढ़ा। इसी संदर्भ में समाजशास्त्री हरबर्ट स्पेंसर ने मानना है कि समाज में विकास सरलता से जटिलता की ओर होता है। जटिलता इस संदर्भ में है कि प्राचीन समाज की आर्थिक आवश्यकताएं परस्पर आदान-प्रदान पर निर्भर करती थी। उसके क्रय अथवा विक्रय के लिए किसी पूंजी श करंसी की आवश्यकता नहीं पड़ती थी बल्कि सामान के बदले समान अथवा श्रम का आदान-प्रदान होता था। सामाजिक परिवर्तन में अर्थ एवं राजनीति की उपस्थिति ने इसकी गति को बढ़ा दिया। यही कारण है कि आधुनिक युग में परिवर्तन की दर उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। इस परिवर्तन ने सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था में परिवर्तन किया है। धर्म के मूल तत्व में बदलाव आया है और यह बहुत हद तक सामाजिक व्यवहार एवं कर्मकांडों के रूप में स्थिर हो रहा है। यह भी ध्यान में रखना होगा कि आधुनिक युग में धर्म के केंद्र में मानव की स्थापना हो रही है। यद्यपि अभी भी यह प्रयास जारी है ईश्वरत्व की स्थापना भी संभव की जा सके। इस संदर्भ में यह देखना है कि तथागत बुद्ध के मध्य मार्गदर्शन का आधुनिक समाज पर कितना प्रभाव पड़ा इसका विश्लेषण एवं विवेचन करना है।

आधुनिक समाज सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों से क्रमशः आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों पर अधिक निर्भर होता जा रहा है। गलाकाट प्रतियोगिता ने मनुष्य को क्रमशः मशीन बनाता जा रहा है। आर्थिक स्पर्धा ने मानवीय मूल्यों के स्तर में भारी गिरावट पैदा किया है। अर्थ के मूल्य मानवीय मूल्यों पर भारी पड़ता जा रहा है। यह कहा भी जाता है कि 'बाप बड़ा ना भैया, सबसे बड़ा रुपैया'। अर्थ एवं धर्म के बीच मूल अंतर भावनात्मक सौहार्द के संदर्भ में भी देखा जा सकता है। स्वास्थ्य, शिक्षा जैसी मूलभूत आवश्यकता भी अब अर्थ से प्रभावित हो रही है। अब मानवीय मूल्यों की परीक्षा इस बात पर निर्भर करती है कि कौन कितना अर्थ के मामले में बलशाली है। आखिर ऐसा कैसे संभव हुआ और इस क्षेत्र में मध्यम मार्गदर्शन की क्या भूमिका हो सकती है? यह प्रश्न आधुनिक संदर्भ में अधिक प्रासंगिक हो रहे हैं।

सामाजिक निर्माण एवं विकास की प्रक्रिया तीन स्तरों पर पूर्ण होती है— सामाजिकरण, सांस्कृतिकरण एवं आधुनिकीकरण। समाजीकरण में मनुष्य परिवार, विवाह, शिक्षा और कानून के माध्यम से प्रभावित होता है। व्यक्ति जिस समाज का अंग होता है उसमें वह जन्म से ही सीखता है। संस्कृति सोच को प्रभावित करती है। सोच को प्रभावित करने वाले तत्व हैं— धर्म, चिंतन और दर्शन। संस्कृतिकरण में चिंतन दर्शन के मूलभूत सिद्धांतों को जीवन प्रणाली में लाने का प्रयास किया जाता है। संस्कृतिकरण के बाद जो सामाजिकरण होता है वह समाज को नियंत्रित करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सामाजिक परिवर्तन में सबसे बड़ी अहम् भूमिका आधुनिकीकरण के माध्यम से संभव हो पाता है। संस्कृतिकरण एक दृढ़ और अतार्किक सोच को स्थिर कर देता है जिसके सामने तार्किक शोध भी घुटने टेकते नजर आते हैं। बल्कि वह समाज में परिवर्तन की दर को शून्य कर देता है। यही वह स्थिति होती है जब समाज में संस्कृति के आधार पर वर्चस्वशाली सोच को जन्म देता है जिसके कारण धार्मिक उपनिवेश की स्थापना होती है। उपनिवेश का परिणाम भारतीय समाज में जातिप्रथा जैसी असमानता पर आधारित सामाजिक व्यवस्था को जन्म दिया है। अन्य अमानवीय प्रथाओं का जन्म संस्कृति से हुई है जैसे दहेज प्रथा, बाल विवाह, विधवा पुनर्विवाह का ना होना आदि। आधुनिकीकरण ने अपना विकास वैज्ञानिक तथा तार्किक व्यवस्था स्थापित की लेकिन उसने सामाजिक गतिशीलता को भी बढ़ावा दिया। इसके परिणाम स्वरूप समाज की पारिवारिक संरचना के साथ-साथ अन्य मूल्यों को भी धारासायी कर दिया है। आधुनिक जीवन शैली के दौर में तथागत बुद्ध के मध्यम मार्ग प्रभावी एवं सकारात्मक भूमिका का निर्वहन कर सकता है।

मध्यम मार्ग दर्शन के अष्टांगिक मार्ग— सम्यक दृष्टि, समय संकल्प, सम्यक वचन, सम्यक कर्म, सम्यक आजीविका, सम्यक प्रयत्न, सम्यक विचार और सम्यक ज्ञान को आधुनिक जीवन शैली में मिलाकर देखें तो यह पूर्णरूपेण वैज्ञानिक रूप से सामाजिक विकास में अपना योगदान दे रही है और सामाजिक नियंत्रण को बल प्रदान कर रही है। मध्यम मार्ग दर्शन में अष्टांगिक मार्ग वैज्ञानिक खोज में भी सहायक रही है साथ ही साथ अतार्किक स्थितियों पर स्थापित अतार्किक धर्म की रूढियों का भी दूर करने में सक्षम रहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

- बाशम, ए एल : अद्भुत भारत, अद्भुत भारत शिवपाल अग्रवाल एंड कंपनी, आगरा, 1992
- हिरियन्ना, एम: भारतीय दर्शन की रूपरेखा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1985
- सराओ, प्रोफेसर के टी एस : प्राचीन भारतीय बौद्ध दर्शन: उद्भव स्वरूप और पतन, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2004
- डेविड्स, टी डब्ल्यू रीस : भगवान बुद्ध और उनका धम्म, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
- अंबेडकर, डॉक्टर बी आर : हिंदू धर्म की रिडल्स, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010
- जाटव, डी आर : विश्व धर्म और अंबेडकर, सबलाइम पब्लिकेशन, जयपुर, 2001
- प्रसाद, डॉक्टर ओम प्रकाश : संघपति अशोक, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्व., 1999
- शर्मा, रामविलास : भारतीय इतिहास और ऐतिहासिक भौतिकवाद, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1992
- चट्टोपाध्याय, देवी प्रसाद : प्राचीन भारत में भौतिकवाद, पीपुल्स पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली, 1990
- बोदोव, वी : आधुनिक काल में भारतीय दर्शन, राजस्थान पेपर पब्लिकेशन हाउस, जयपुर, 1986
- दामोदरन, के : भारतीय चिंतन परंपरा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली, तीसरा सं. 1982
- हॉस्पर्स जॉन : दार्शनिक विश्लेषण परिचय, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, तृतीय सं. 2000
- ज्ञा, श्रीहरि मोहन : दार्शनिक विवेचना, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1973
- ज्ञा, डी एन : प्राचीन भारत : एक रूपरेखा, पीपुल्स पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली, पांचवां संस्करण 1990
- कार, ई एच : *इतिहास क्या है?* मैकमिलन पब्लिशर्स इंडिया लिमिटेड, दिल्ली, 2010

1857 की क्रांति में दलित-मुस्लिम स्त्रियों का योगदान

डॉ० रोहित कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर

इतिहास विभाग, बीआरएम कॉलेज, मुंगेर
मुंगेर विश्वविद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

राष्ट्रीय स्वतंत्रता संघर्ष का इतिहास 1757 के प्लासी युद्ध में हुए राष्ट्रीय पराजय से आरंभ माना जाता है। साम्राज्यवादी शासन के प्रारंभ से ही भारतीयों का सशस्त्र संघर्ष नागरिक विद्रोह, किसान आंदोलन, जनजातीय विद्रोह तथा सैनिक संघर्ष के रूप में सामने आता रहा। परन्तु औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध घृणा की व्यापक अभिव्यक्ति 1857 ई. के विद्रोह में हुई। इस महान् विद्रोह में भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों ने यथा- राजे, सामंत, जागीरदार, सैनिक, किसान आदि ने सक्रिय हिस्सा लिया था। परन्तु इस क्रांति की महत्वपूर्ण उपलब्धि यह रही थी कि इसमें बड़े पैमाने पर दलित-मुस्लिम स्त्रियों ने भी अपनी सशक्त भागीदारी सुनिश्चित की थी। इस संघर्ष में किसी बादशाह या सूबेदार की बेगमों ने ही सिर्फ हिस्सा नहीं लिया था, अपितु निम्न आर्थिक स्थिति निम्न वर्ग व समाज में अछूत समझी जाने वाली दलित महिलाओं ने भी अपनी उपस्थिति दर्ज कराई और अपनी वीरता, साहस, बलिदान के उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किए। इनका साझा उद्देश्य ब्रिटिश राज का खात्मा तथा स्वराज्य की स्थापना था।

1857 वर्ष के मई मास में मेरठ की छावनी में सिपाही विद्रोह की चिनगारी प्रकट हुई, जो शीघ्र ही स्वतंत्रता संग्राम की अग्नि के रूप में देश भर में फैल गई। विद्रोह की चिंगारी अवध भी पहुँची। अवध में क्रांति की संचालिका हजरत महल थी। नवाब वाजिद अली शाह को अपदस्य किए जाने के बाद बेगम ने नाबालिग पुत्र बिरजिस कादिर को नवाब घोषित किया और अपना प्रशासन स्थापित किया।

लखनऊ में 4 जून 1857 ई. को विद्रोह की शुरुआत हुई तथा इसी दिन लखनऊ स्थित ब्रिटिश रेजिडेंट पर आक्रमण किया। ब्रिटिश रेजिडेंट हेनरी लॉरेन्स ने यूरोप निवासियों और लगभग 2000 राजभक्त भारतीय सैनिकों के संग रेजिडेंसी में शरण ली। भारतीय सैनिकों ने रेजिडेंसी को घेर लिया। इस घेरे में हेनरी लॉरेन्स की मृत्यु हो गई। बेगम हजरत महल ने इस युद्ध की बड़ी कुशलता से संचालन किया। गदर के जमाने में उनका निवास चौलखी में था और उसी भवन में उनका दरबार होता था। आम सभा हो या युद्ध का मैदान तलवार हाथ में लिए अपने जोशीले शब्दों से वह जनता तथा फौज के दिलों में देश-प्रेम, आजादी, त्याग और बलिदान का जोश भर देती थी। लड़ाई में फौज की कमान स्वयं संभालती थी तथा राज्य के सारे कामकाज एक परामर्श कमेटी की राय से तय करती थी, जिसमें हिंदू-मुसलमान दोनों बराबर के शरीक थे।

फौजी सरदारों की एक मीटिंग में उन्होंने कहा था- “दिल्ली की महाशक्तिशाली सत्ता ने अत्यंत आशावादी वादे किये थे और दिल्ली से जो पत्र पहुंचे थे वे मेरे दिल में खुशी की लहरें दौड़ा देते थे, किन्तु कितनी जल्दी बादशाह को अपदस्थ कर दिया गया। सिक्खों और जाटों को अंगरेजों ने खरीद लिया है और संपर्क जोड़ने के सूत्रों को काट दिया है। नाना फरनवेस को बेदखल कर दिया गया है और लखनऊ को खतरे में डाल दिया गया है। ऐसी हालत में क्या होना चाहिए? हमको क्या करना चाहिए? लखनऊ में पूरी फौज मौजूद है किन्तु संकल्प तथा उत्साह से खाली है। यदि फौज में जान लड़ाने का संकल्प तथा देश-प्रेम का जोश भरा है तो आलमबाग पर हमला क्यों नहीं करती? क्या फौज इस बात की प्रतीक्षा कर रही है कि अंग्रेजी फौज की अतिरिक्त कुमुक पहुंच जाए और वह लखनऊ का घेराव कर ले। मुझे जवाब दो तुम लड़ने के लिए तैयार हो या नहीं।”¹

हजरत महल सिपाहियों को उनके हौसले से अधिक इनाम देती थी। आलमबाग झड़प में राजा मानसिंह को उनकी असाधारण वीरता के बदलने में परिधान रुमाल दोशाले के अलावा 'फरजन्दे खास' की उपाधि और मन्बूसे खास से अपना दुपट्टा प्रदान किया और कहा कि विजय के बाद बहुत सा रुपया और जागीर देकर खुश करेगी।

बेगम हजरत महल असफलताओं से हिम्मत हार बैठना नहीं जानती थी। यह जानते हुए कि जिस फौज ने उन पर आक्रमण किया था, संख्या और तैयारियों की दृष्टि से वह इतनी बड़ी फौज कभी नहीं एकत्र कर सकती। फिर भी वह एक जगह से हटकर दूसरी जगह मोर्चाबंदी करती रही। उनकी कोठी 'चौलखी' पर घमासान लड़ाई हुई। हजरत महल किसी तरह चौलखी छोड़ने का नाम नहीं लेती थी। हमलावरों के अनुसार एक-एक इंच जमीन पर लड़ाई हुई और महत्वपूर्ण स्थलों बेगम कोठी, मोती महल, केसर बाग, सिकन्दरबाग आदि पर सिपाहियों की लाशों से गुजरकर ही कब्जा हो सका। सिकंदराबाद में एक स्थान पर घायल और मारे गए लोगों का भयावह ढेर लगभग एक गज या उससे भी अधिक ऊँचा था। अंग्रेज सिपहसालार कोलिन कैम्पवेल के शब्दों में, "इससे ज्यादा बहादुरी कहीं नहीं देखी गयी।"²

कोलिन कैम्पवेल के नेतृत्व में अंग्रेजों ने 31 मार्च 1858 ई. को लखनऊ पर अधिकार कर लिया। उधर नाना साहिब तथा हजरत महल ने बरेली को अपना केंद्र बना लिया। किन्तु शीघ्र ही बरेली पर भी अंग्रेजों का अधिकार हो गया। बेगम को अवध के जमींदारों, सिपाहियों, कृषकों सभी का सहयोग मिला। उनकी सहायता से बेगम ने अंग्रेजों को अनेक स्थानों पर पराजित किया। बरेली के पश्चात् बेगम हजरत महल ने मौलवी अहमदुल्ला के साथ शाहजहाँपुर में भी विद्रोह को नेतृत्व प्रदान किया। बेगम ने अपने साहसी नेतृत्व में अंग्रेजों के साथ वीरतापूर्वक युद्ध किया, परंतु वे शीघ्र ही पराजित हो गई और बचकर नेपाल चली गई। उसने अंग्रेजों द्वारा प्रस्तावित पेंशन स्वीकार करने से भी इंकार कर दिया और नेपाल में कष्टदायक जीवन तथा गुमनाम मौत मरना पसंद किया।

1857 के स्वतंत्रता के युद्ध में दिल्ली के अन्तिम मुगल बादशाह बहादुरशाह जफर की प्रिय पत्नी बेगम जीनत महल के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता है। वह योग्यता तथा संगठन शक्ति की दृष्टि से असाधारण महिला थी। वह अपने नाबालिग बेटे जावांबख्त को राज्य का उत्तराधिकारी बनाना चाहती थी। जावांबख्त एक होनहार और खुद्दार युवक था। अंग्रेज जीनत महल तथा उसके पुत्र दोनों के विरुद्ध थे।

बेगम जीनत महल तथा बादशाह ने नाना साहब के साथ मुक्ति-संग्राम में पूरा-पूरा साथ देने का निश्चय किया था। 31 मई का दिन क्रांति का दिन निश्चित किया गया था। मेरठ की जनक्रांति भड़कने से भारत के एक सिरे से दूसरे सिरे तक एक प्रचंड आग भड़क उठी। दिल्ली के लाल किले पर क्रांतिकारियों का अधिकार हो गया था। दिल्ली के लाल किले के दीवाने खास में सम्राट बहादुरशाह, बेगम जीनत महल तथा दिल्ली के मुख्य नेताओं के साथ गुप्त यंत्रणाएँ हुईं। उन्होंने सोचा कि 31 मई को क्रांति के लिए दिन निश्चित हुआ था ठहरना मूर्खता होगी। 3 जुलाई को एक आम परेड हुई जिसमें लगभग 20,000 सैनिक मौजूद थे। उसी दिन बेगम जीनत महल, सम्राट तथा सेनापति बख्त खां और अन्य मुख्य अधिकारियों की आठ बजे गुप्त वार्ता हुई। परन्तु एक विश्वासघाती मिर्जा इलाहीबख्त ने पश्चिमी दरवाजे से बाहर निकलकर अंग्रेजों को सम्राट की गुप्त मंत्रणा की सूचना दे दी। एक लंबे संघर्ष के बाद अंग्रेजों ने मुगल सम्राट बहादुरशाह, बेगम जीनत महल तथा शहजादा जावांबख्त को गिरफ्तार कर लिया और दिल्ली के लाल किले में 134 दिन कैद रखा। बाद में इन तीनों को रंगून भेज दिया गया।³

बेगम जीनत महल का देश-प्रेम, स्वाभिमान तथा कष्टों को झेल सकने की क्षमता ने उसे इतिहास के पन्नों से अमर कर दिया। सन् 1857 ई. के स्वतंत्रता समर में सिर्फ बेगमों, महारानियों तथा राजपरिवार की स्त्रियों ने ही भाग नहीं लिया था, अपितु प्रथम स्वाधीनता संग्राम के अल्पज्ञात वीरांगनाओं में कई दलित-मुस्लिम वीरांगनाओं के भी आख्यान यत्र-तत्र मिलते हैं, जो अपनी शहादत, देशभक्ति, शौर्य से साम्राज्यवादियों के दांत खट्टे कर उनके मंसूबों पर पानी फेर दिया। ऐसी वीरांगनाओं

को इतिहास के पन्नों पर प्रमुखता से जगह देने की जरूरत है ताकि यह प्रमाणित किया जा सके कि 1857 का महाविद्रोह सिर्फ सैनिक विद्रोह या असंतुष्ट राजे-महाराजे का विद्रोह नहीं था बल्कि समाज के विभिन्न वर्गों से आने वाले सामान्य जनों का भी विद्रोह था।

दलित वीरांगनाओं के आख्यान भारतीय अतीत में उनकी सघन उपस्थिति से भरे हुए हैं। दरअसल 1857 के सशस्त्र संघर्ष में दलित महिला प्रतीकों की संख्या दलित पुरुषों से कहीं ज्यादा है। कोरी जाति की झलकारी बाई, पासी जाति की ऊदा देवी, लोधी जाति की अवंती बाई, मेहतर जाति की महावीरी देवी और गुर्जरी जाति की आशा देवी सहित कई महिलाओं को 1857 ई. की लड़ाई में शामिल बताया जाता है। और ये सभी दलित जातियों के लिए वीरता की प्रतीक बन गई है।

कोरी जाति की झलकारी बाई मूलतः झांसी की रहने वाली थी और उनके पति पूरन कोरी राजा गंगाधर राव के यहाँ एक सामान्य सिपाही थे। झलकारी बाई का चरित्र एक आदर्श महिला का था जो कपड़ा बुनने के अपने पारंपरिक व्यवसाय में पति की मदद करती थी और कभी-कभी उनके साथ दरबार भी चली जाया करती थी। वह बचपन से ही बहादुर थी और पति से धनुर्विद्या भी सीखी थी। इसके अलावे वे कुश्ती, घुड़सवारी और निशानेबाजी में भी निपुण थी। बताया जाता है कि उनका चेहरा और कद-काठी रानी लक्ष्मीबाई से हूबहू मिलती थी। धीरे-धीरे वे लक्ष्मीबाई की सखी बन गईं। झलकारी बाई की सेना की महिला शाखा यानि दुर्गा दल के नेतृत्व का जिम्मा सौंपा गया। अंग्रेजों ने जब झांसी का किला घेरा तो झलकारी बाई बहादुरी से लड़ी। उन्होंने रानी लक्ष्मीबाई से भाग निकलने को कहा और उनका वेश धारण कर खुद मोर्चा संभाला। झलकारी बाई ने दतिया द्वार और भंडारा से उन्नाव द्वार तक सैनिकों का नेतृत्व किया। उनके पति पूरन कोरी अंग्रेजों से लड़ते हुए मारे गए। जब झलकारी बाई को इसकी जानकारी मिली तो वे घायल सिंहनी हो गईं। काफी देर बाद अंग्रेजों को पता चला कि वे रानी लक्ष्मीबाई नहीं, झलकारी बाई हैं। फिर अचानक उन्हें कई गोलियाँ लगीं और वे शहीद हो गईं। मैथिलीशरण गुप्त ने झलकारी बाई के बारे में लिखा है – जाकर रण में ललकारी थी, वह तो झांसी की झलकारी थी, गोरों से लड़ना सिखा गई, है इतिहास में झलक रही, वह भारत की ही नारी थी।¹ ऐसी ही एक वीरांगना ऊदा देवी हुई है।

ऊदा देवी का जन्म लखनऊ के उजरियांव में हुआ था। उनका नाम जगरानी भी था और वे पासी जाति के मक्का से ब्याही गई थी। वे बेगम हजरत महल की सहयोगी बनी और उन्होंने अपने नेतृत्व में एक महिला सेना बनाई। उनके पति मक्का पासी हजरत महल की सेना में सिपाही थे। जब अंग्रेजों का अवध पर आक्रमण हुआ तो ऊदा देवी और उनके पति ने सशस्त्र संघर्ष में भाग लिया। उनके पति चिनहट की लड़ाई में शहीद हो गए। अंग्रेजों ने जब कैम्पवेल के नेतृत्व में सिकंदराबाद पर हमला किया तो उनका मुकाबला दलित महिलाओं की सेना से हुआ। इस युद्ध में रणनीतिक कौशल दिखलाते हुए ऊदा देवी एक पीपल के पेड़ पर चढ़ कर वहीं से अंग्रेजों को निशाना बनाने लगीं। कई अंग्रेज सैनिकों को मरते देखकर अंग्रेज अफसर ने यह ध्यान दिया कि गोलियाँ ऊपर से नीचे की तरफ आ रही हैं। उसने उस पीपल के पेड़ को चारों तरफ से निशाना बनाने का निर्देश दिया। पीपल के पेड़ पर गोलियों की बरसात होने लगी। थोड़ी ही देर में वे ऊदा देवी को कई गोलियाँ लगीं। वे पेड़ से नीचे गिर गईं और शहीद हो गईं। इस दलित सेना पर लिखी गई कविता काफी प्रेरक है।

कोई उनको हब्सी कहता, कोई कहता नीच अछूत

अबला कोई उन्हें बताए, कोई कहे उन्हें मजबूत।⁴

डब्ल्यू गार्डन अलेक्जेंडर ने सिकंदरबाग के किले पर हमले का वर्णन इस प्रकार किया है – उस लड़ाई में जो लोग मारे गए उनमें कुछ ऐसी महिलाएँ थीं, जिनका रूपरंग अमेजन के आदिवासियों से मिलता है। इन महिलाओं में चर्बी लगे कारतूसों को दांत से काटने में कोई धार्मिक पूर्वाग्रह नहीं था। चाहे वे सूअर की चर्बी लगी हो या किसी और जानवर की। वे लोग जंगली बिल्लियों की तरह बहादुरी से लड़ीं। वे जब तक मारी नहीं गईं तब तक यह पता कर पाना भी मुश्किल था कि वे औरत हैं या मर्द।⁵ ऊदा देवी उन्हीं में से एक थी, जिन्होंने 32 या 36 अंग्रेज सैनिकों को मारा था। ऊदा देवी की बहादुरी की चर्चा यूरोपीय मीडिया में भी हुई थी। 'लंदन टाइम्स' ने अपने संवाददाता विलियम हावर्ड के

हवाले से पुरुषों के वेश में एक महिला द्वारा पीपल के पेड़ से निशाना लगाकर ब्रिटिश सेना को बड़ा नुकसान पहुंचाया के बारे में लिखा।

इसी तरह की एक और वीरांगना आशा देवी थी। 8 मई 1857 ई. को कई युवतियों का नेतृत्व करती हुई अंग्रेजी सेना से संघर्ष किया और शहीद हुई। ये गुर्जर जाति की थी। इस संघर्ष में कई अन्य महिलाएँ रहीमी गुर्जरी, भगवानी देवी, हबीबा गुर्जरी देवी, इंद्र कौर, कुशल देवी, राजकौर, रनवीरी वाल्मीकि, सहेजा वाल्मीकि और शोभा देवी शामिल थी। इन युवतियों ने बहादुरी के साथ अंग्रेजी सेना पर हमला किया और लड़ते हुए मारी गईं।

अवंती बाई मध्य प्रदेश के मांडला जिले के लोधी समुदाय की महिला थी। यह रामगढ़ की रानी थी। 1857 में अंग्रेजों ने उन पर भी जुल्म किया। उन्होंने उसका प्रतिकार किया और संघर्ष में उतरी। खैरी के पास 23 नवम्बर 1857 को अंग्रेज सिपाहियों के साथ अवंती बाई का युद्ध हुआ। अंग्रेज सेनापति वाडिंग्टन पूरी शक्ति लगाने के बाद भी कुछ न कर सका और माण्डला छोड़कर सिवनी की ओर भाग गया। इस प्रकार पूरा मांडला जिला एवं रामगढ़ राज्य स्वतंत्र हो गया। इस हार के अपमान को अंग्रेज सह न सके। शीघ्र ही अंग्रेजों की विशाल सेना रामगढ़ को घेर ली। 20 मार्च 1858 को इस वीरांगना ने रानी दुर्गावती का अनुकरण करते हुए युद्ध लड़ते हुए अपने आप को चारों तरफ से घिरता देखकर समर्पण करने के मुकाबले तलवार स्वयं को भौंककर देश के लिए बलिदान कर दिया।

ऐसी ही एक वीर महिला मेहतर जाति की महावीरी देवी है। वे मुजफ्फरनगर की मुंडगर जिले की रहने वाली थी। हालांकि वे अनपढ़ थी, लेकिन बुद्धिमान थी और अन्याय के खिलाफ मैदान में उतर गईं। वे स्त्रियों एवं बच्चों को घृणित कार्य न करने के प्रति जागरूक करने लगी। समाज सुधार के लिए किए गए उनके कार्य उस दौर में सराहनीय थे। अपने समाज के उद्धार के लिए कोशिश करने वाली महिला नेत्रियों में उनका स्थान बहुत ऊँचा है भले ही वह आज भुला दी गई हों। अंग्रेजी शोषण, अत्याचार के विरुद्ध उनके मन में भी असंतोष था। विदेशियों को भारत से बाहर कर स्वदेश की रक्षा व स्वराज की स्थापना का भाव उनके मन में रचा-बसा था। 1857 की महाक्रांति में 22 महिलाओं के साथ अंग्रेजों पर हमला किया और सब के सब शहीद हो गईं।⁶ मातृभूमि पर एक साथ इतनी संख्या में जीवन न्यौछावर करने वाली महिलाओं के उदाहरण अन्यत्र नहीं मिलते हैं। सन् 1857 ई. में जंगे-आजादी की कहानी एक नाचने वाली लड़की अजीजन के बिना अधूरी होगी। इस लड़ाई में बड़े-बड़े नवाबों, राजाओं और सैनिकों ने तो भाग लिया ही, एक नाचने वाली लड़की (रक्कासा) भी आजादी के बिगुल को सुनकर लड़ाई में कूद पड़ी थी।

सन् 1857 की जनक्रांति के समय अजीजन कानपुर में नर्तकी थी। धन-वैभव, घुंघरूओं की रुमझुम और संगीत की सुमधुर स्वर लहरी के बीच रहने वाली अजीजन गणिका का हृदय देश-प्रेम की भावना से ओत-प्रोत था। वह एक वारांगना न होकर एक वीरांगना थी। वह त्याग और देश-प्रेम का एक अभूतपूर्व उदाहरण थी। उसके कार्यों ने उसे महान बना दिया। श्री विनायक दामोदर सावरकर ने अजीजन के विषय में लिखा है— “अजीजन एक नर्तकी थी, परन्तु सिपाहियों को उससे बेहद स्नेह था। अजीजन का प्यार साधारण बाजार में धन के लिए नहीं बिकता था। उसका प्यार पुरस्कार स्वरूप उस व्यक्ति को दिया जाता था जो देश से प्रेम करता था। अजीजन के सुन्दर मुख की मुस्कराहट भरी चितवन युद्धरत सिपाहियों को प्रेरणा से भर देती थी। उनके मुख पर भृकुटी का तनाव युद्ध से भागकर आए हुए कायर सिपाहियों को पुनः रणक्षेत्र की ओर भेज देता था।”⁷

कानपुर 1857 की क्रांति का मुख्य केंद्र था। नाना धुंधूपंत और अजीमुल्ला खां के संदेश वाहक देश के कोने-कोने में जाकर क्रांति का अलख जगा रहे थे। उड़ती-उड़ती खबर अजीजन के पास भी पहुंची कि देश में फिरंगी हुकूमत को उखाड़ने की योजनाएँ बनाई जा रही हैं। उन गोरे अफसरों को इस देश से खदेड़ देना चाहते हैं, जिन्होंने भारत को कंगाल बना रखा है, जो यहाँ का सोना-चाँदी ब्रिटेन भेज रहे हैं और भारत की सभ्यता और संस्कृति को खत्म कर देना चाहते हैं। अजीजन ने सोचा कि उसने भी इस देश की धरती पर जन्म लिया है। यहाँ की हवा में उसने सांस ली है और यहाँ के अन्न-जल से ही वह बड़ी हुई है। उसका भी कुछ फर्ज है। देश प्रेम की भावना उसमें जगी। वह

आजादी की लड़ाई में हिस्सा लेने के लिए बेताब हो उठी। एक दिन मौका पाकर वह आजादी की फौज के सेनापति तात्या टोपे के पास पहुंची। एक नाचने वाली का एक सेनापति से मिलना तात्या को कुछ अजीब सा लगा। वह कुछ क्षण तक अजीजन को देखता ही रह गया।

अजीजन ने तात्या टोपे से अपने आने के बारे में बताया और कहा कि वह भी देश के लिए कुछ करना चाहती है। कहते हैं कि यह सुनकर सेनापति तात्या बोला 'अजीजन! तुम्हें मेरा एक काम करना होगा।' 'हुक्म कीजिए', अजीजन ने खुशी-खुशी कहा, 'देश के लिए यह नाचीज हाजिर है।' तात्या ने उससे कहा कि वह छावनी के गोरे अफसरों से अपना मेल-जोल बढ़ाए' वहाँ की गुप्त खबरों को उस तक पहुंचाए। अगर वह इस काम को सर-अंजाम दे सकी तो इससे बढ़कर देश के लिए और कोई खिदमत नहीं हो सकती। हालांकि अजीजन को यह काम कतई पसंद न था। वह तो समझती थी कि सेनापति कहेंगे कि तलवार हाथ में ले और अंग्रेज अफसरों का सफाया करती जा। वह गोरों से नफरत करती थी। पर हुक्म कुछ और ही था। सेनापति की बात सुनकर वह कुछ देर के लिए खामोश रही। फिर बोली, 'मैं हर तरफ से तैयार हूँ।' अजीजन जानती थी कि इस काम के लिए उसे गोरों की हर तरह की इच्छा पूरी करनी होगी। लेकिन नेता की आज्ञा को उसने मान लिया। वह हंसी-खुशी खुफियागिरी का काम करने के लिए अपने मकान पर आ गई।

अजीजन ने दोहरा काम किया। जहाँ उसने कानपुर के गोरे अफसरों को एश-इशरत में फंसाए रखा, वहाँ दूसरी ओर जंगे-आजादी में लगे लोगों को पूरी-पूरी जानकारी दी। तैयारी की खबरे एक जगह से दूसरी जगह तक पहुंचाने का काम उसने बड़ी खूबी से किया। नतीजा यह निकला कि कानपुर छावनी के अफसर रंगरेलियाँ मानने में लगे रहे और तात्या ने कानपुर से उनका पूरी तरह सफाया कर दिया।⁹

सर जार्ज ट्रेवलिन ने अपनी पुस्तक में अजीजन के बारे में लिखा है कि 7 जून 1857 को पेशवा नाना साहब ने हिन्दी और उर्दू में एक एलान किया जिसमें हिन्दू और मुसलमानों को एक होकर अंग्रेजों शासन के विरुद्ध लड़ने और अपने धर्म को बचाने की अपील की गई थी। उन्होंने अपनी भरती होने का आह्वान भी किया था, जिसमें सब मिलकर मातृभूमि की रक्षा कर सके। नाना साहब के आह्वान पर अजीजन भी उनकी सेना में भर्ती हो गई। उसने सिपाही की पोशाक ली और इस महान् संग्राम में तन-मन-धन से जुट गई। वह अपनी रेजिमेंट की विशेष पोशाक पहनती थी, जिस पर अनेक प्रकार के मेडल आदि उसके कंधों पर लगे रहते थे। उनके पास एक तलवार और एक पिस्तौल सदा रहती थी। उसने घर-घर घूमकर औरतों को सेना में भर्ती होने के लिए ललकारा। महिलाओं की एक सैनिक टुकड़ी बनाई। वह उन्हें घुड़सवारी तथा अस्त्र-शस्त्र चलाने की शिक्षा देती थी। यह घायल महिला सिपाहियों की सेवा तो करती ही थी, इनके साथ तरह-तरह के काम भी करती थी। वह गोला बारूद, गोलियाँ तथा खाना और कपड़ा भी उन सैनिकों तक पहुंचाती थी। घर-घर जाकर फल, मिठाइयाँ तथा अन्य खाद्य सामग्री भी क्रांतिकारियों के लिए इकट्ठा करती थी। स्वतंत्रता संग्राम के ताजा समाचार एकत्र कर वह जनता तक पहुंचाती थी। उन्हीं के अथक परिश्रम से भारी संख्या में लोग क्रांतिकारी सैन्य दलों में भर्ती हो रहे थे।⁹ कुछ दिनों के बाद अजीजन का भेद खुल गया। नाना साहब की पराजय के बाद वह पकड़ी गई। उसे पकड़कर अंग्रेज अधिकारी हैवलॉक के सामने प्रस्तुत किया गया। अंग्रेज अधिकारी अजीजन की सुन्दरता को देखकर स्तब्ध रह गए।

श्रीनिवास बालाजी हार्डिकर ने अपनी पुस्तक '1857 की चिनगारियाँ' में अजीजन की मृत्यु का मार्मिक वर्णन किया है। उन्होंने लिखा कि जनरल हैवलॉक यह विश्वास नहीं कर सके कि यह अलौकिक सौंदर्य रणचंडी का रूप धरकर लड़ाई के मैदान में भी हुंकार लगा सकती है। जनरल हैवलॉक ने वीरता की प्रतिमूर्ति अजीजन से कहा कि यदि वह अपराधों के लिए माफी मांग ले तो उसे क्षमा कर दिया जाएगा। अजीजन ने माफी मांगने के बजाए हुंकार लगाई - "मैं अंग्रेजों का विनाश चाहती हूँ।" सौंदर्य की देवी अजीजन को गालियों से भून दिया गया। मरते समय उसके मुख से यह अंतिम शब्द निकले, "नाना साहब की जय" अजीजन के बलिदान ने उन्हें महान् बना दिया है। कृतज्ञ देशवासी उन्हें स्नेह श्रद्धा से याद करते रहेंगे।¹⁰

मुस्लिम गुर्जर परिवार से संबंध रखने वाली हबीबा जो उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर से संबंध रखती थी ने अंग्रेजों के साथ हुए कई युद्धों में भाग लिया और अंग्रेजों के नाकों चने चबवाए। जब अंग्रेजों को मुजफ्फरनगर के क्षेत्रों पर अधिकार हुआ तो वह ग्यारह अन्य महिला विद्रोहियों के साथ फांसी पर लटका दी गई। उस समय उसकी उम्र महज पच्चीस वर्ष की थी। मुजफ्फरनगर क्षेत्र की ही जमीला खान ने भी अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष में भाग लिया और उन्हें पकड़कर अंग्रेजों ने फांसी की सजा दी। इसी प्रकार इस क्षेत्र की एक और मुस्लिम महिला रहीमी ने भी अपनी शहादत दी।

मुस्लिम वीरांगनाओं में अगसरी बेगम का भी नाम बड़ी श्रद्धा से लिया जाता है। इनका जन्म 1811 ई. में उत्तर प्रदेश में हुआ था। इन्होंने भी 1857 के महाविद्रोह में भाग लिया था। उस समय इनकी उम्र 45 वर्ष की थी। इन्होंने ब्रिटिश हुकूमत को चुनौती दी। बाद में वह पकड़ी गई। अंग्रेजों ने उन्हें निर्दयतापूर्वक जिंदा जला दिया। यह अनुमान लगाया जाता है कि 1857 के विद्रोह में लगभग 225 मुस्लिम महिलाओं ने अपने प्राणों की आहुति दी।

निष्कर्ष :-

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम अथवा मुक्ति संग्राम, जिसे हमारे देशवासियों ने अपने रक्त से सींचा था, उसमें महिलाओं का कितना योगदान रहा, यह प्रश्न उठता है। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में रानी झांसी लक्ष्मीबाई का नेतृत्व अपनी पृथक महत्ता रखता है। वह स्वतंत्रता सेनानियों में सबसे अधिक वीर, साहसी एवं रण कुशल महिला थी। स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने वाली मुगलकाल के अन्तिम बादशाह की बेगमें, हजरत महल और जीनत महल के नाम भी भुलाए नहीं जा सकते। परन्तु, इन गिने-चुने नामों के अतिरिक्त, दस्तावेजों, आख्यानों, कथाओं में ऐसे अनेक दलित मुस्लिम महिलाओं के नाम भी मिलते हैं, जिनका योगदान पुरुषों से कम महत्वपूर्ण न था और जो शारीरिक कष्टों को झेल सकने में पुरुषों से कम नहीं थी। परन्तु, उनके नाम दस्तावेजों में ही खोकर रह गए।

सदियों से हाशिये पर खड़ा दलित समाज स्वतंत्रता संघर्ष में अपने प्राणों का उत्सर्ग करने वाले दलित नायक-नायिकाओं के इतिहास को नई अर्थवत्ता प्रदान करने की कवायद में जुटा है। गौरतलब है कि स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास लिखने वाले अंग्रेज तथा भारतीय इतिहासकारों की लेखनी दलित नायक-नायिकाओं के वीरोचित इतिहास लिखने में प्रायः उदासीन ही रही है। इनके योगदान को दो-चार पंक्तियों में लिखकर ही अपने कर्तव्यों की इतिश्री मान ली है। परन्तु विगत कुछ दशकों से दलितों में जगी राजनीतिक चेतना ने दलित समाज में गर्व व आत्मविश्वास उत्पन्न करने तथा आजादी की लड़ाई में अपने समाज के योगदान को रेखांकित करने में मुखर हो गई है। दीर्घकाल से चली आ रही मौलिक परंपरा यथा- लोकगीतों, कहानियों, कविताओं में दलित वीरों के आख्यानों को नई पीढ़ी ने अपनी लेखनी के बल पर पुस्तकों, शोध-प्रबंधों, शोध-पत्रों, कॉमिक विशेषकर अमर चित्र कथा व यू-ट्यूब, फेसबुक जैसे सोशल मीडिया के नए घटकों में स्थान दे दिया है।

प्रथम दलित वीरांगना झलकारी बाई का जिक्र यशस्वी साहित्यकार अमृतलाल नागर की कृति 'गदर के फूल' में भी मिलता है। उत्तर प्रदेश में दलित राजनीतिक चेतना के उभार के पश्चात सरकार ने सिकन्दरबाग में दलित वीरांगना ऊदा देवी की बुत स्थापित अवश्य की है। परन्तु बाग के बाहर पर्यटन विभाग की सूचना पट्ट पर लिखा है- "इस लड़ाई में एक अज्ञात महिला सेनानी भी थी जिसने स्वयं गोली के शिकार होने के पूर्व कई अंग्रेज सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया।" यानि की जिस वीरांगना की बाग में मूर्ति लगी हुई है उसे पर्यटन विभाग भी नहीं जानता। गौरतलब है कि हिंदू राजे-रजवाड़े के राज में दलितों को हथियार उठाने का अधिकार नहीं था, लेकिन अवध के इस गीत-संगीत के रसिया नवाब ने दलित पुरुषों के अलावा दलित महिलाओं को भी अपने सैन्य दस्ते में शामिल किया।

मध्य प्रदेश के मांडला जिले में स्थित रामगढ़ की रानी अवन्तीबाई लोधी ने 1857 की लड़ाई में अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिए थे और मातृभूमि की रक्षा के लिए अपने प्राण न्यौछावर कर दिए। 1857 की क्रांति में रानी अवन्ती बाई का वही योगदान है जो रानी लक्ष्मीबाई का था। इसी कारण रानी अवन्ती

बाई की तुलना रानी लक्ष्मीबाई से की जाती है, परन्तु रानी अवंतीबाई को इतिहास में वह स्थान नहीं मिल पाया जो रानी लक्ष्मीबाई को मिला हुआ है।

आज भी भारत की पवित्र भूमि ऐसे वीर-वीरांगनाओं की कहानियों से भरी पड़ी है, जिन्होंने 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से लेकर देश के आजाद होने तक भिन्न-भिन्न रूप में अपना योगदान दिया है। देश की सरकारों या सामाजिक संगठनों द्वारा स्वतंत्रता संग्राम से जुड़े हुए लोगों के जो कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं वे सिर्फ और सिर्फ कुछ प्रमुख स्वतंत्रता-सेनानियों के होते हैं, लेकिन बहुत से स्वतंत्रता-सेनानी हैं जिनके अहम योगदान की न तो सरकारें याद करती हैं न ही समाज याद करता है। लेकिन उनका योगदान भी देश के अग्रणी श्रेणी में गिने जाने वाले स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों से कम नहीं है। यद्यपि मौन यातना और स्वाभिमान ही नारी का चिह्न है, उसका गुण और आभूषण है। फिर भी जिन्होंने देश के लिए हंसते-हंसते प्राणों की आहुति दे दी, उन्हें हम कैसे भुला सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. Cormegy's intelligence for Dept. Secret Branch 26th Feb. 1858, no.223, News of 22nd Dec. 1857, National Archives, New Delhi.
2. अलीगढ़ मैगजीन : 1972-73, पृ. 283
3. डॉ. उषा बाला : भारत की वीरांगनाएँ, तृतीय संस्करण 2008, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृ. 73
4. चारु गुप्ता : हिन्दुस्तान, पटना, मंगलवार, 9 जनवरी 2007, पृ. 9
5. उपरोक्त वही।
6. उपरोक्त, वही।
7. उषा चन्द्रा : सन् सत्तावन के भूले-बिसरे शहीद, तृतीय संस्करण 2003, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृ. 34
8. अक्षय कुमार जैन : कहानियाँ बलिदान की, चतुर्थ संस्करण 2008, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृ. 22-23
9. डॉ. उषा बाला : भारत की वीरांगनाएँ, तृतीय संस्करण 2008, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृ. 6-7
10. उषा चन्द्रा : सन् सत्तावन के भूले-बिसरे शहीद, तृतीय संस्करण 2003, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृ. 35

हिन्दी संत कवि और उनका दार्शनिक विचारधारा

संजय मिंज

शोध छात्र

सन्त गहिरा गुरु विश्वविद्यालय, अम्बिकापुर सरगुजा (छ.ग.)

प्रस्तावना :

हिन्दी साहित्य में एक विशेष अर्थ में 'सन्त' शब्द का प्रयोग किया गया है। हिन्दी की निर्गुण काव्य धारा में अन्तर्भूत साधक कवियों के लिए 'सन्त' शब्द का प्रयोग किया जाने लगा है। यह विचारणीय है कि सन्त शब्द का प्रयोग केवल निर्गुण विचारधारा के साधकों के लिए किया जाना कहाँ तक समीचीन है। संत कव्यधारा के अनेक दार्शनिक-सांस्कृतिक आधार हैं, जिसमें नाथपंथ, शंकराचार्य का अद्वैतदर्शन, सूफीदर्शन, उपनिषद् तथा इस्लाम धर्म मुख्य उल्लेखनीय हैं। उपनिषदों का सन्तों के जीवन दर्शन, काव्यधारा और चिन्तन पर व्यापक प्रभाव है। काव्य रचना सन्त कवियों का लक्ष्य नहीं था, उनकी रचनाओं में जन-जन के हित और उनके उद्बोधन की भावना सन्निहित है। सन्तों की भाषा भी स्थिर नहीं है। संत काव्यधारा के प्रमुख कवियों की भाषा में प्रायः जो परिमार्जन, सौष्ठव, परिनिष्ठता और प्रवाह विद्यमान है, वह निर्गुण काव्यधारा में दुर्लभ है। जिस संत परंपरा का प्रवर्तन कबीर ने किया था, शतशः कवि आविर्भूत हुए। लेकिन न उनका काव्य साहित्य क्षेत्र में उल्लेख है, न वे सच्चे अर्थों में कवि कहे जा सकते हैं। संतों का वर्गीकरण दो प्रकार से किया जा सकता है— एक तो शुद्ध दार्शनिक दृष्टि से और दूसरा संत कवियों द्वारा गृहित साधनाप्रणाली की दृष्टि से। दार्शनिक विचारधाराओं की पृष्ठभूमि में निर्गुण काव्य को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है— कबीर, मलूकदास, पूर्णतया अद्वैतवादी और दादू हैं, जबकी नानक भेदाभेदवादी हैं। निर्गुण संतों की विचारधारा में आदिकाल में नामदेव ने भी इस दिशा में योगदान दिया था, और इसका बीज नाथ और सिद्ध कवियों की रचनाओं में भी मिलता है। संत काव्य देश की राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियों के फलस्वरूप विरचित भावनात्मक एवं अनुभूतिप्रवण जनकाव्य है। इसका प्रेरणास्त्रोत था—सामान्य मानव का हितसाधन। फलस्वरूप समाज में लिप्त न होकर भी संत कवियों ने समाज कल्याण का मार्ग अपनाया और जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में शोषित और प्रताड़ित मानव की समस्त प्रवृत्तियों, परिस्थितियों तथा भावनाओं का गंभीर विचारयुक्त यथातथ्य चित्रण किया। संत काव्य की भाषा जनसामान्य की भाषा है। संतों के रूपक जीवन की सामान्य प्रवृत्तियों एवं घटनाओं पर आधारित है। संतों का व्यक्तित्व सच्चे अर्थों में संवेदनशील था। उनका मानस स्वच्छ और उदार था। इसलिए उनका साहित्य जनभावनाओं की सहज पवृत्तियों, विकृतियों, विडंबनाओं और परिस्थितियों का वृहद शब्दचित्र है। निर्गुण संत काव्य आचरण की पवित्रता का संदेश लेकर जनता के समक्ष आया। संत काव्य में सामाजिक असंगतियों, धार्मिक विडंबनाओं, बहुदेवोपासना, मूर्तिभंजन आदि समस्याओं की अभिव्यक्ति और उनका निदान मिलता है। संत कवियों ने जीवनदायिनी शक्तियों की ओर जनसामान्य का ध्यान आकर्षित किया और समाज को सशक्त, निर्दोष एवं कल्याणकारी मार्ग पर अग्रसर करने की चेष्टा की। जनमानस के संताप को दूर करने वाली संतों की पीयूषवर्षी वाणी का मध्यकालीन समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ा। कबीरदास और नानक ही नहीं उनके अनुयायियों ने भी अपने-अपने समय की जनता को प्रभावित किया। संतों के व्यक्तित्व का प्रभाव हिंदुओं तथा मुसलमानों पर समान रूप से पड़ा और उन्होंने अपनी 'बानियों' से आने वाली पीढ़ियों को अजस्र प्रेरणा प्रदान की। संत काव्य आत्मविश्वास, आशावाद और आस्था की भावना संस्थापित करने में सहायक साहित्य है। तत्कालीन परिवेश के अनुरूप संतवाणी की रचना मुख्यतः जनता के अशिक्षित, उपेक्षित और पिछड़े हुए वर्गों के लिए हुई थी। अतः संतों की भाषा आवश्यकतानुसार सरल, कृत्रिमता-विहिन और सहज है। संतजन भ्रमणशील प्राणी थे, अतः संतों उनकी रचनाओं में उन विभिन्न प्रदेशों की बोलियों के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं, जहाँ उन्होंने भ्रमण किया था।

संत कवि और उनकी दार्शनिक विचारधारा

संत नामदेव —नामदेव जी का जन्म 26 अक्टूबर 1270 ई. रविवार में प्रथम संवत्सर, संवत् 1327, कार्तिक शुक्ल एकादशी को पंढरपुर में हुआ था। नामदेव जी का पैतृक गाँव नरसी ब्राहमणी नामक ग्राम से मूल निवासी शेट "शिम्पी" (मराठी में) के यहाँ हुआ था। नामदेव की माता का नाम गोपाई और पिता का नाम दामाशेट था। इनकी जाति दर्जी थी, जिसको मराठी में शिम्पी कहते हैं। संत नामदेव जी का विवाह अल्पावस्था में ही गोविंद शेट की पुत्री राजाबाई के साथ हुआ था। इनके चार पुत्र और एक पुत्री थी। इनकी ज्ञानेश्वर जी से भेंट हुई और उनकी प्रेरणा से इन्होंने नाथपंथी विसोबा खेचर से दीक्षा ली। जो नामदेव पंढरपुर के "विट्ठल" की प्रतिमा में ही भगवान को देखते थे, वे खेचर के संपर्क में आने के बाद उसे सर्वत्र अनुभव करने लगे। उनकी प्रेमाभक्ति में ज्ञान का समावेश हो गया। गुरुदासपुर जिले के घुमान नामक स्थान पर आज भी नामदेव जी का मंदिर विद्यमान है। वहाँ सीमित क्षेत्र में इनका "पंथ" भी चल रहा है। कबीर से पूर्व नामदेव ने उत्तर भारत में निर्गुण भक्ति का प्रचार किया, जो निर्विवाद है। इनका निर्वाण सन् 1350 ई. है।

दार्शनिक विचारधारा

ब्रह्मा—संत नामदेव के अनुसार ब्रह्मा एक है, सर्वव्यापक और पूर्ण है, वही गोविंद है और उसके अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु की सत्ता नहीं है। समस्त संसार में ब्रह्मा ही समाया हुआ है। जैसे सूत के एक धागे में सहस्रों गणियाँ गूथी जाती हैं वैसे ही परमात्मा संसार की प्रत्येक वस्तु में समाया हुआ है। संत नामदेव ब्रह्मा को निराकार मानते हैं। उसका न रूप है, रेखा और न ही वर्ण, वह ऐसा परमतत्व है। वही निर्गुण है, निरेजन है, वही अमर फलदाता है। नामदेव के पदों में विरह की तीव्रता है। जैसे गाय बछड़े के बिना और मछली जल के बिना तड़पती है वैसे ही नामदेव भी रामनाम के बिना तड़पते हैं। उनके मन में प्रिय के मिलन की तीव्र उत्कंठा है।

जीव— नामदेव मानते हैं कि ब्रह्मा ही जीव में व्याप्त है। जीव एक ही मिट्टी के विविध पात्र हैं। जीव ब्रह्मा की गति को नहीं जानता है। अतः वह उसके लिए अवर्णनीय है। जीव की अपनी कोई भिन्न सत्ता नहीं है वही एक होकर अनेक हो गया है। जीव अज्ञान की निद्रावस्था में है, वह यह नहीं विचारता है कि मनुष्य को यहाँ से चार दिवस व्यतीत करके प्रयाण करना है। नामदेव के अनुसार जीव और ब्रह्मा का संबंध जल और तरंग का है। मानव शरीर नाशवान है, असत्य है।

जगत्— संत नामदेव के अनुसार जगत् एक हाट है जहाँ मनुष्य वस्तुओं का क्रय-विक्रय करते हैं। मूर्ख मानव अपना मूलधन नहीं गंवा देता है। समस्त संसार माया और मोह में भूला-भटका है। हरिनाम सत्य है बाकी समस्त संसार असत्य है। संसार को नष्ट होने में देर नहीं लगती है। नामदेव जी कहते हैं हे मनरूपी पक्षी संसार के जाल में मत फँसो, यह माया-जाल है।

माया— नामदेव जी ने माया को प्रबल शक्तिशाली माना है, इसी ने अनेक पुरुषों को भ्रम में डाला है। माया के कारण ब्रह्मा दिखाई नहीं देता है परन्तु ब्रह्मा के सामने माया भी अदृश्य हो जाती है। इसी माया के मोह में समस्त संसार भटकता है। संसार में मनुष्य अकेला ही आता है और अकेला ही जाता है। जीवन मरण में कोई साथ नहीं देता है। असत्यता के कारण माया छूट जाती है और मनुष्य अकेला ही मृत्यु प्राप्त करता है।

साधना-पक्ष— संत नामदेव की साधना में नाम-स्मरण, गुरु, योग और सत्संगति को महत्वपूर्ण स्थान मिला है। हरि के नाम स्मरण से सारी पीड़ाएँ समाप्त हो जाती हैं, यही कालचक्र से मनुष्य को मुक्त कराता है, यही जीवन का सार है, यही संसार-सागर से पार होने का एकमात्र साधन है। जब तक जीव रामनाम का जप नहीं करता तब तक उसे सुख की उपलब्धि नहीं होती है, उसमें ममत्व और परत्व की भावना आती है और इसी अहंकार के फलस्वरूप वह जन्म-मरण के चक्र में संसार में आता-जाता है। स्वयं नामदेव योग, युक्ति और मोक्ष नहीं चाहते। वे केवल हरिनाम को हृदय में रखना चाहते हैं। तीनों लोकों में हरि व्यक्त है अतः उसका नामस्मरण ही परमतत्व है। रामनाम के बिना मानवजीवन व्यर्थ है।

गुरु— जीव का ध्यान परमतत्व की ओर आकृष्ट करने वाला गुरु है। गुरु ही जीव का जन्म सफल बनाता है, सांसारिक दुःखों, क्लेशों और पीड़ाओं से मानव को मुक्त कराकर उसे ब्रह्मानन्द की प्राप्ति कराता है। गुरु ही जीव को यौगिक क्रियाओं में पारंगत कराता है। गुरु के मिलने से मनुष्य

संसार—सागर से पार उतरता है। गुरु ही ईश्वर से भेंट कराता है। ब्रह्मा ज्ञान के लिए गुरु कृपा अत्यावश्यक है।

साधुसंगति— परमतत्व की ओर मन अकृष्ट करने के लिए साधुसंगति का महत्वपूर्ण स्थान है। ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करने के लिए साधुसंगति आवश्यक है, इससे मूर्ख जन वंचित हैं। वे काम क्रोध और तृष्णा में ही अपना जन्म व्यर्थ व्यतीत करते हैं। वास्तव में वह क्षण धन्य है जब जीव साधुसंगति में रत ईश्वर की भक्ति करता है। नामदेव सप्रेम राम को प्रणाम करते हैं और सत्संगति में अपना समय व्यतीत करते हैं और संतों से भेंट करते हैं।

योग— संत नामदेव के पदों में कहीं—कहीं योगपरक शब्दावली मिलती है। नामदेव के अनुसार मूर्ख लोग भ्रम में भटकते हैं, वे न अनहदनाद सुनते हैं न अन्तरगति से ही परिचित हैं। जब तक मनुष्य आशा निराशा के संघर्ष में पड़ा है तब तक ब्रह्मा की प्राप्ति असंभव है। जब मनुष्य निष्काम भाव से सहज समाधि लगाता है तभी ब्रह्मा से साक्षात्कार करता है। अनहद नाद का श्रवण करने के पश्चात् परमज्योति से साक्षात्कार होता है और गुरु की कृपा से परमज्योति में विलीन होता है।

बाहयाडम्बरों का विरोध— संत नामदेव ने साधना के बाहयाडम्बरों का विरोध किया है। एक पत्थर के प्रति श्रद्धा भाव प्रकट किया जाता है और दूसरे के उपर पांव रखते हैं, दोनों में कोई अन्तर नहीं होता है। हिन्दु देवालियों और मुसलमान मस्जिदों में साधना करते हैं। संत नामदेव को इन दोनों में विश्वास नहीं होता है अतः वे ऐसी साधना करते हैं, जहाँ न देवालय है और न ही मस्जिद ही। इस पाखण्डपूर्ण भक्ति से ब्रह्मा राम प्रसन्न नहीं होते हैं। जब तक मन स्थिर और स्वच्छ नहीं है, तब तक संसार से पार उतरने की आशा व्यर्थ है। संत नामदेव ने सब बातें आरंभ की थी जो परवर्ती संत काव्य में उपलब्ध है।

संत कबीरदास —: कबीरदास का जन्म, जाति, जन्मस्थान, माता—पिता एवं जीवन की घटनाएँ विवाद का कारण है क्योंकि स्वयं कबीरदास अपने विषय में मौन रहे हैं। भारतीय धर्म साधना के इतिहास में कबीर ऐसे महान विचार एवं प्रतिभाशाली महाकवि हैं इनका जन्म 1398 ई. (अंतस्साक्ष्य और कबीरचरित्रबोध के प्रमाण से) और अवसान—काल 1518 ई. (भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास के अनुसार एवं कबीर परिचर्च) मगहर में। कबीर का जन्म उच्च कुल की विधवा के गर्भ से हुआ था। जिसने लोकापवाद के भय से इन्हें लहरतारा नामक तालाब के किनारे डाल दिया। इनका पालन—पोषण नीरू नामक जुलाहा और पत्नी नीमा ने किया। कबीर की रचनाओं का संकलन संत धर्मदास ने 'बीजक' में किया। बाबू श्यामसुन्दर दास ने कबीर की रचनाओं का संकलन 'कबीर ग्रंथावली' में किया।

दार्शनिक विचारधारा

कबीर का ब्रह्मा—कबीर दास उस निर्गुण ब्रह्मा का मानते हैं जिसका वर्णन ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में ही मिलता है। जिस मूल सत्ता से सब कुछ उत्पन्न हुआ है, जो सर्वव्याप्त है, वह न सत्य है न असत्य। ब्रह्मा का उल्लेख उपनिषदों में भी मिलता है। इस सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति, गति, पालन और लय का कारण ब्रह्मा है। कबीर का ब्रह्मा निर्गुण ब्रह्मा है, जो सत, रज, तम तीनों गुणों से परे है। वह गुणातीत, गुणबिहून और निराकार है। वह अलख निरंजन है जिसे कोई नहीं देख सकता। वह न शुन्य है न स्थूल। न कोई उसकी रूपरेखा है न वह दृश्य है न अदृश्य। कबीर ने प्रायः ब्रह्मा को उन्हीं नामों से पुकारा है जो उस समय हिन्दु, मुसलमान, बौद्ध और नाथपंथ में प्रचलित थे। इन्होंने राम और रहीम दोनों को संबोधित किया है परन्तु ब्रह्मा के प्रतीक में, इनका राम दशरथि राम या सीतापति राम नहीं है। वह परमतत्व है। कबीरदास ने एकाधस्थल पर अपने ब्रह्मा को सगुण—निर्गुण कहा है।

जीवात्मा—उपनिषदों में आत्मा और ब्रह्मा के सम्बन्ध का उल्लेख मिलता है। आत्मा और ब्रह्मा एक हैं, आत्मा ही ब्रह्मा है। यह जीवात्मा वास्तव में न तो स्त्री है न पुरुष और न ही नपुंसक। शरीर धारण करने से यह भिन्न—भिन्न रूप में आती है। गीता में भी आत्मा को शुद्ध—बुद्ध एवं मुक्त कहा गया है। कबीरदास ने भी आत्माविचार को जीवन का चरम लक्ष्य माना है। कबीरदास के अनुसार आत्मा सर्वव्यापी तत्व है जो भाँति—भाँति के घड़े दृष्टिगोचर होते हैं वे वास्तव में एक हैं। ब्रह्मा और आत्मा में भेद नहीं है। जीव ब्रह्मा से आता है और उसी में लय हो जाता है। कबीरदास आत्मा और ब्रह्मा को अभिन्न मानते हैं। सर्वत्र एक ही ब्रह्मा है एक ही आत्मतत्व है। जीवात्मा मायोकपाधिक होकर संसार में जन्म लेता है और मृत्यु प्राप्त करता है।

माया— ऋग्वेद में माया शब्द रूप बदलने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। कबीरदास ने अविद्या माया का ही वर्णन किया है। वे उसे रघुनाथ की माया कह कर ब्रह्माश्रित मानते हैं, वह जादूगर का खेल है। माया को कबीरदास डाकिनी और पापिनी मानते हैं। कबीर दास को माया के दोनों मोहक और भयंकर स्वरूप मान्य हैं। कबीरदास के अनुसार माया का सम्बन्ध कनक और कामिनी से है, इससे बचना कठिन है। अज्ञानी पुरुष माया के जाल में फंसता है, संतों और भक्तों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है यह भक्तों के सामने नहीं जाती है। और संतों की दासी है। ज्ञान के आगे माया का अस्तित्व नहीं है।

संसार— संसार भी परमतत्व की सीमा से बाह्य नहीं है। कबीरदास संसार को असत्य, स्वप्नवत्, नश्वर और मिथ्या मानते हैं। संसार को सेमल के फूल की उपमा देते हुए उसे अति मलिन बताते हैं। कबीरदास कहते हैं संसार से प्रेम नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह मिथ्या है, संसार उत्पन्न होता है और नष्ट होता है। कबीरदास जड़जगत और जीवात्मा में ब्रह्मा को ही मूलतत्व मानते हैं। प्राणी को अज्ञान के कारण जगत् वास्तविक लगता है। 'आपण मॉझ छिपाया' कहकर कबीरदास ने भी पारमार्थिक दृष्टि से केवल ब्रह्मा को ही सत्य माना है।

मोक्ष— मनुष्य धर्म के चार लक्ष्य बताये गये हैं— धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इसमें मोक्ष को सर्वोत्तम और चरमलक्ष्य माना जाता है। कबीर ने कहा है कि जीवनमुक्त पुरुष पर सांसारिक प्रभाव नहीं पड़ते हैं। संत पुरुष निष्काम, निर्विषय तथा निस्संग रहते हैं। मुक्त पुरुष अपने मनोविकारों को वश में करता है। कबीरदास ने जीवनमृतक को अंत में जीवन मुक्त की ओर संकेत किया है। विदेह—मुक्ति के प्रसंग भी कबीर काव्य में प्राप्त है। कबीरदास की उन्मत्तावस्था वास्तव में वेदान्तियों की विदेहवस्था ही है। स्थूल और सूक्ष्म शरीर के अन्त होने पर जीवनमुक्त जिस अवस्था को पहुँचता है वही विदेहमुक्ति अवस्था है उसकी शरीरिक क्रियाओं में निष्क्रियता आती है, साधक अपनी आत्मा में ही तल्लीन रहता है और आनन्द प्राप्त करता है। वास्तव में मुक्ति अपना ही मुक्त स्वभाव है।

साधना पक्ष—कबीर की साधना समन्वय साधना है जिसमें ज्ञान, योग, भक्ति और प्रेम का मिश्रण है। वे एक ऐसे मिलन बिन्दु पर खड़े थे, जहाँ एक ओर ज्ञान निकल जाता है दूसरी ओर अशिक्षा, जहाँ पर एक ओर योगमार्ग निकल जाता है दूसरी ओर भक्ति मार्ग, जहाँ एक तरफ निर्गुण भावना निकल जाती है दूसरी ओर सगुण साधना। कबीर के समय हठयोगियों और नाथपंथियों का अत्यधिक प्रचार था। कबीर की रचना में हठयोग के सिद्धांत मिलते हैं। हठयोग का अर्थ होता है बलपूर्वक ईश्वर से मिलना।

प्रेम पद्धति—कबीरदास ने अपनी साधना को प्रेम से भी प्लावित किया है। इनके प्रेम एक ओर नारद की प्रेम भङ्गित लक्षित होती है तो दूसरी ओर से सूफियों का इश्क। कबीरदास ने प्रेम की मादकता का भी वर्णन किया है। प्रेम ही ईश्वर से साक्षात्कार का साधन है। प्रेम में त्याग आवश्यक है। प्रेम एक रसायन है इसका एक ही बिन्दु सम्पूर्ण शरीर को स्वर्ण बनाता है। कबीर मानते हैं कि प्रेम के बिना शरीर का कोई महत्व नहीं है। कबीर ने सूरा और सती के प्रेम प्याले को पिया और उसे किसी अन्य वस्तु की इच्छा ही न रही। कबीरदास ने आध्यात्मिक विरह का भी उल्लेख किया है। उनका मन प्रियतम की ओर ही लगा रहता है। अपने को प्रियतम की नारी मान कर कबीर ईश्वर मिलन की इच्छा व्यक्त करते हैं। इनकी भक्ति साधना का केन्द्र बिन्दु ही प्रेम है।

बाह्याडम्बर का विरोध—कबीरदास धर्म के किसी भी बाह्याडम्बर को नहीं मानते हैं। उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों के पाखण्ड पर खूब फटकारा है। समस्त संसार बुद्धिहीन हो गया, हिन्दु अपना देवता राम को मानते हैं और मुसलमान रहीम को। इस पर दोनों में वाद—विवाद होता है परन्तु सत्यतत्व के सहस्य को कोई नहीं पहचानता है। कबीरदास के अनुसार ब्रह्मा सदैव आत्मा में वास करता है। बलि देकर उसकी प्राप्ति संभव नहीं, न वह मंदिर या मस्जिद में ही है। वह आत्मा में ही व्याप्त है। अतः आत्मज्ञान प्राप्त करो। कबीरदास ने जोगियों की भी हंसी उड़ाई है। जोगी अपने मन को शुद्ध नहीं करते हैं वस्त्र को रंग देते हैं, कानों को फाड़कर जटा रख कर जंगल में घुनी जला कर पाखण्ड रचते हैं। वास्तव में वे सच्ची साधना से अत्यन्त दूर हैं। कबीर कहते हैं वास्तव में आत्मा में ही राम भी है और रहीम भी। उसे अन्य स्थान ढूँढने से क्या प्रयोजन। ब्रह्मा सर्वव्यापक है।

नामस्मरण—साधु—संगति के साथ—साथ कबीरदास नाम स्मरण को भी महत्व देते हैं, उनके अनुसार राम नाम ही महत्वपूर्ण है। राम नाम के बिना मानव शरीर इस संसार में निष्फल है। कबीरदास कहते हैं कि

जो मनुष्य केवल दुःख में ईश्वर का स्मरण करते हैं उनकी प्रार्थना कोई नहीं सुनता है। मन की चंचलता को वश में करने के पश्चात ही अन्य वस्तुएँ सम्भव हैं।

कबीर का रहस्यवाद— रहस्य शब्द का मूल 'रहस' है। यह शब्द 'रह त्यागे' के अनुसार 'त्याग करना' अर्थ वाली धातु 'रह' से उसके आगे 'असुन' प्रत्यय लगाकर बना कहा जा सकता है। कबीरदास के अनुसार एक भावना एक वासना हृदय में प्रभुत्व प्राप्त कर लेती है और वह भावन सदैव जीवन के अंग प्रत्यंगों में प्रकाशित होती है। यही दिव्य संयोग है। आत्मा उस दिव्य शक्ति से इस प्रकार मिल जाती है कि आत्मा के परमात्मा के गुणों का प्रदर्शन होने लगता है और परमात्मा में आत्मा के गुणों का प्रदर्शन। जब साधक भावना के सहारे आध्यात्मिक सत्ता की रहस्यमयी अनुभूतियों की वाणी के द्वारा शब्दमय चित्रों में सजा कर रखने लगता है तभी साहित्य में रहस्यवाद की सृष्टि होती है।

कबीरदास के रहस्यवाद में हिन्दुओं के अद्वैतवाद और मुसलमानों के सूफी सिद्धान्तों का मिश्रण है। इन्होंने आत्मा और परमात्मा को एक ही माना है। कबीर मानव धर्म के पुजारी थे और सर्वत्र ईश्वर की प्रतिष्ठा मानते थे। उसी में सृष्टि व्याप्त है और वही सृष्टि में व्याप्त है। कबीरदास के रहस्यवाद में प्रेमत्व की भी प्रधानता है, इसकी प्रेरणा उन्हें सूफियों से मिली है। सूफी ईश्वर की काल्पना सुन्दर नारी में करते हैं और जीवात्मा को प्रियतम मानते हैं। इसके विरुद्ध कबीरदास अपने को नारी और परमात्मा को पुरुष मानते हैं। कबीरदास ने माया और चिंतन पद्धति अद्वैतवाद से और प्रेमत्व सूफियों से ग्रहण करके अपने रहस्यवाद की सृष्टि की है।

गुरु नानक—सिख धर्म के प्रवर्तक, सिखों के प्रथम गुरुनानक देव जी का जन्म 1469 ई. में पंजाब के ननकाना साहिब के तलवण्डी गाँव में हुआ। इनके पिता का नाम कालूचन्द और माता का नाम तृप्ता था। इनका विवाह 17 वर्ष की आयु में गुरदासपुर के मूलचन्द खत्री की बेटी सुलक्षणी से हुआ। इनके दो पुत्र थे श्रीचन्द और लक्ष्मीचन्द। इनके बड़े पुत्र श्रीचन्द भी विख्यात साधु हुए तथा उन्होंने उदासी सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया। नानक देव जी ने संगत व पंगत का सिद्धान्त चलाया।

दार्शनिक विचारधारा

जीवात्मा— गुरु नानक के अनुसार जीव परमात्मा के 'हुक्म' से उत्पन्न होते हैं। परमात्मा के हुक्म से सारी दृश्यमान और नामरूपात्मक वस्तुओं की उत्पत्ति होती है, उसी से मनुष्य उत्तम गति पाता है और उसी से नीच गति। परमात्मा ने ही जीव और शरीर देकर सबका निर्माण किया है। जाति और नाम का अहंकार व्यर्थ है, वास्तव में सारे जीवों में एक ही प्रतिबिम्ब है एक ही छाया है, परन्तु द्वैतभाव में बंधा हुआ वह आता जाता अर्थात् जन्मता—मरता है। जीव का अस्तित्व परमात्मा पर ही निर्भर है।

संसार—गुरुनानक देव जी संसार को सत्य मानते हैं और ईश्वर को इनका उत्पन्न करने वाला मानते हैं। उसी ने जीव को संसार में कार्यरत किया है। जिस प्रकार जल में उत्पन्न कमल जल से निलप्त रहता है उसी प्रकार संसार रूपी जल में परमात्मा की ज्योति है और यह सर्वत्र परिपूर्ण और निर्लेप है। संसार नाशवान है, उत्पत्ति और नाश इसका क्रम है। परमात्मा ही सत्य और शाश्वत है।

माया—गुरुनानक के अनुसार निरंजन परमात्मा ने स्वयं अपने आपको उत्पन्न किया है और समस्त जगत् में वही अपनी क्रीडा करता है। उसी परमात्मा ने तीनों गुणों एवं उनसे संबंध माया की रचना की है। उसी परब्रह्मा ने मोह की वृद्धि के साधन भी उत्पन्न किए हैं। मनुष्य माया के भी वशीभूत होता है जब उसका मन भटकता है। माया के प्रति मोह ही सारे जंजालों का मूलकारण है। सद्गुरु की सेवा से ही सारे जंजाल समाप्त होते हैं।

साधना—पक्ष—साधना पक्ष में गुरुनानक ने सद्गुरु की महत्व पर बल दिया है। प्राचीन ग्रंथों के अनुसार भारतीय समाज में गुरु का स्थान बहुत उच्च, गौरवपूर्ण और समृद्ध रहा है, वही धर्म और समाज का नियामक रहा है, वही राजनीतिक गुत्थियों को सुलझाता रहा है, उसी गुरु को गुरुनानक ने भी उच्च स्थान दिया है। गुरुनानक के अनुसार यदि गुरु की उपदेश ध्यान से सुना जायेगा तो बुद्धि से ही हीरे—मोती आदि सारे रत्न अर्थात् उच्च अध्यात्मिक गुण प्रकट होंगे। गुरु उपदेश से मनुष्य मान—प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। एक नाम का जपना ही 'हुक्म' है और इसका रहस्य सद्गुरु बताते हैं। सद्गुरु के सच्चे शब्द का वर्णन करके मनुष्य परमात्मा में समा जाता है।

नामस्मरण—गुरुनानक ने नामस्मरण को सर्वोधिक महत्व दिया है। इनके अनुसार माया से परे निरंजन परमात्मा के गुण गाने ओर सुनने चाहिए और भावपूर्वक अपने मन में रखने चाहिए। जो प्रभु का नाम सुनता है, उस पर चलता है और अंतःकरण से उसकी भक्ति करता है उसने सारे तीर्थों का स्नान कर लिया और सब पापों को धो डाला। बिना हरिनाम के कोई मुक्ति नहीं पा सकता है। ईश्वर नाम से ही संसार—सागर से पार हो सकते हैं। नाम ही अभूषण है। नाम द्वारा ही ज्ञान का लक्ष्य पूर्ण होता है। प्रभुनाम ही बल है और प्रभुप्राप्ति का साधन है।

योग—साधना— गुरुनानक ने योगमार्ग के षट्चक्रों, इन्द्रिय—निग्रह आदि का वर्णन किया है। उनके अनुसार षट्चक्रों वाला देह मठ है और उसमें रहने वाला वैराग्यवान् मन है उसके अन्तर्गत आत्मिक ज्ञान वाला शब्द गूँज रहा है। योगी पुरुष 'निवली कर्म' करते हैं, कुण्डलिनी को प्राणायाम द्वारा जाग्रत करते हैं जिससे उसकी उध्वान्स होती है। गुरुनानक के अनुसार मंदवासनाओं को जीवित ही मारकर मरना चाहिए जिससे अंत में पछताना न पड़े। मन के मरने से फिर कभी दुःख नहीं होगा।

बह्याडम्बर का विरोध—गुरुनानक जी ने भी अन्य संतों की भाँति धर्म के बाह्याडम्बरों का विरोध किया है परन्तु उनके विरोध में कबीर की कड़वाहट नहीं है। नानक के अनुसार सत्य बोलना, श्रम की कमाई, परमात्मा से सबका भला मांगना, नीयत साफ करना, मन साफ रखना और परमात्मा का यशगान ही पाँच नमार्जे हैं। योगियों के पाखण्ड को उन्होंने तिरस्कार की दृष्टि से देखा है। उनके अनुसार योग की प्राप्ति कथा कहने से नहीं होती है न डंडा लेने या शरीर पर भस्म लगाने से ही होती है। यह बह्या कर्म व्यर्थ है, सतगुरु के बिना सत्यमार्ग प्राप्त नहीं हो सकता है। यज्ञ, होम, तप आदि से शरीर को कष्ट देना व्यर्थ है। इनसे मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती है। मुक्ति के लिए रामनाम आवश्यक है और रामनाम गुरु की कृपा से प्राप्त होता है।

संत दादूदयाल—इनका जन्म डॉ. परशुनाथ चतुर्वेदी के अनुसार 1544 ई. में हुआ जबकि डॉ. रामकुमार वर्मा इनका जन्म 1601 ई. मानते हैं। इनकी जाति को लेकर भी विद्वानों में मतभेद है। इनके शिष्य रज्जब ने इन्हें धुनिया कहा है। इन्होंने दादू पंथ का प्रवर्तन किया। ये समाज सुधारक, धर्म सुधारक एवं रहस्यवादी संत कवि थे। इनकी रचनाएँ 'हरेडवाणी' नाम से इनके शिष्यों सन्तदास व जगन्नाथ दास ने संकलित की है। दादू ने दूर—दूर तक पर्यटन व भ्रमण करने के पश्चात् राजस्थान में नराना नामक स्थान पर अपनी गद्दी स्थापित की। यह स्थान आज भी दादू पन्थियों का सबसे बड़ा केन्द्र है।

दार्शनिक विचारधारा

निर्गुण ब्रह्मा—संत दादू ने ब्रह्मा की निर्गुण, अमर और अपार माना है। यही निर्गुण ब्रह्मा संतों का प्राणाधार है। उस परमात्मा के अतिविक्र और कोई नहीं है, उसी के अनेक नाम हैं। वही राम है, रहीम और अल्ला है, वही कृपालु, सृष्टिकर्ता और पवित्र है। वही नित्य, सर्वव्यापक, ज्योतिस्वरूप और अव्यक्त है। ब्रह्मा को अन्य सन्तों की भाँति दादू ने भी पुरुष रूप में अभिव्यक्त किया है और जीवात्मा को नारी कहा है। ईश्वर एक है और जीवात्माएँ अनेक।

जीवात्मा— आत्मा की उत्पत्ति ब्रह्मा से होती है। जो सम्बन्ध तरुवर और उसके फल—फूल का है वही ब्रह्मा और जीव का है। यदि ईश्वर रूपी माली सींचने की ओर ध्यान नहीं देगा तो यह आत्मा रूपी बेली मुरझा जायेगी। जीव परमात्मा से वियुक्त होकर संसार में आता है, जीव का मन चंचल होता है और निशिदिन वह व्याकुल फिरता है। जीव अज्ञानी है, असत्यर—भ्रम में भटकता फिरता लें। और विषय—विकारों में पड़कर अपना अमूल्य जन्म व्यर्थ गंवा देता है।

जगत्—भारतीय दर्शन के अनुसार जगत् मिथ्या है, नश्वर है फिर भी अज्ञान—भ्रम के कारण हमें सत्य दृष्टिगोचर होता है। दादू का जगत् के प्रति भी यही दृष्टिकोण है। अज्ञान के अंधकार के कारण हम जगत् को सत्य मानते हैं परन्तु यह मृगतृष्णा की भाँति असत्य है। संसार सुख और दुःख की परिधि से बंधा हुआ है। इस संसार का मर्म कोई नहीं जान सकता है।

माया—संत दादू ने माया का विरोध किया है। माया का सुख अल्प समय का होता है परन्तु इसी पर सारा संसार गर्व करता है जब परमतत्व का साक्षात्कार होता है, तो माया का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। माया सर्पिणी है जो जीव के आगे—पीछे घूम रही है और जीव को नष्ट करने पर तुली हुई है। माया के कारण संसार के प्राणी मृत्यु प्राप्त करते हैं। कनक, काल और कामिनी माया के तीन रूप

हैं। माया ने ब्रह्मा, विष्णु और महेश को भी नहीं छोड़ा है, कनक और कामिनी के रूप में इसने सबको डस लिया है। माया का वश केवल संतों के आगे नहीं चलता है।

साधना-पक्ष- गुरु ही साधक का साध्य से साक्षात्कार करा देता है। दादू के अनुसार भी गुरु ही अगम, अगाध की प्राप्ति करा सकता है। अतः गुरु के बताये हुए मार्ग पर चलकर गुरु द्वारा उपदिष्ट आत्मज्ञान से अपना आत्मज्ञान बढ़ाना चाहिए। सतगुरु के उपदेश से ईश्वर की प्राप्ति स्वयं ही होती है। महाज्ञान अथवा महामनन ही गुरु ज्ञान विचार है। सतगुरु संसार सागर में डूबे हुए प्राणियों का उद्धार करके उन्हें पार लगाता है। संत दादू भी उस गुरु की बलिहारी जाते हैं जिसने उन्हें अपर, अलक्ष्य ईश्वर के पास पहुँचाया। सतगुरु ही परमजाप की प्रेरणा देता है। सतगुरु के मिलने से भक्ति और मुक्ति प्राप्त होती है और सहज ही ईश्वर का साक्षात्कार होता है।

बाह्याडम्बरों का विरोध- दादूदयाल ने साधना के बह्याडम्बरों का अत्यधिक विरोध किया है। उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों को फटकारा है। ये नहीं जानते कि दोनों का ईश्वर एक है। ज्ञान, ध्यान, जप, तप, योग आदि सब को छोड़कर परमात्मा के विरह में अपने को अनुभव करना चाहिए। जाति-पांति का साथ-साथ दादूदयाल जी ने मूर्ति पूजा का भी खण्डन किया। दादूदयाल के अनुसार जिन्होंने कंकर-पत्थर जोड़कर मन्दिर का निर्माण किया है उन्होंने तो अपना मूल ही गंवाया है क्योंकि परमब्रह्मा हमारे अन्तःकरण में ही निवास करता है।

नामस्मरण-अन्य संतों की भाँति दादूदयाल ने भी नामस्मरण को महत्व दिया है। रामनाम-स्मरण से सभी शारीरिक मैल छूट जाता है, रामनाम ही समस्त सम्पत्ति का सारतत्व है, रामनाम से ही संसार-सागर को पार किया जा सकता है। इसी कारण संत दादूदयाल रामनाम की बलि जाते हैं। दादू के अनुसार रामनाम एक औषधि है जिससे करोड़ों विषय-विकार नष्ट होकर जीव का उद्धार होता है। जब जीव रामनाम को भूल जाता है तो प्राण और शरीर नष्ट होते हैं, समस्त सुख समाप्त होता है।

आध्यात्मिक प्रेम और साधु-संगति- ब्रह्मा के साक्षात्कार के लिए संत दादूदयाल ने आध्यात्मिक प्रेम और साधुसंगति को महत्व दिया है। उस ब्रह्मा का प्रेम रस अत्यधिक मीठा होता है। जो सदैव उस प्रेमरस को पीता है वह अविनाशी हो जाता है। दादूदयाल के अनुसार साधु की संगति करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है और शरीर प्रेम से अनुरक्त होता है। संतजन अपना स्वार्थ नहीं देखते, वे सदैव परोपकारी रहते हैं और जीवों को रामरस का आस्वादन कराते हैं। दादू संतों को ईश्वर के समान अमूल्य रत्न मानते हैं।

सन्त रज्जब जी -रज्जब जी की जन्म कुल एवं जन्म स्थान के विषय में प्रमाणिक स्त्रोतों का अभाव है। मिश्रबन्धुओं ने रज्जब जी का चलाउ उल्लेख किया है। डॉ. रामकुमार वर्मा और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी भी रज्जब जी के जीवन सम्बन्धी तथ्यों के विषय में मौन हैं। हिन्दी के निर्गुण संतों में नामदेव, कबीर, नानक आदि को छोड़कर अन्य सन्तों पर अल्प सामग्री ही उपलब्ध होती है। इसका कारण यह नहीं कि उन संतों का काव्य महत्वपूर्ण नहीं है अपितु उनकी ओर ध्यान कम गया है। संत रज्जबदास भी इसी श्रेणी में आते हैं। स्व. पुरोहित हरिनारायण शर्मा के अनुसार रज्जब जी का जन्म 1567 ई. तथा शरीरावसान 1689 ई. है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी भी इसी मत को मानते हैं।

दार्शनिक विचारधारा

ब्रह्मा- रज्जबदास जी का ब्रह्मा निर्गुण है, वह सर्वगुणातीत, घट के भीतर निवास करने वाला, परस पवित्र परमगति वाला पूर्ण ब्रह्मा है। वह निर्मल निरंजन नेत्रों में समाया है। निर्गुण ब्रह्मा आवागमन के चक्र से मुक्त है, सगुण ब्रह्मा कर्म करने के लिए संसार में आता है। रज्जबदास जी ने ब्रह्मा को राम कहकर पुकारा है। वही ब्रह्मा चल और अगम है वही आनन्द में वास करने वाला है। अन्य संतों की भाँति रज्जब जी भी परमात्मा को प्रियतम और अपने को उसकी प्रियतमा मानते हैं।

जीवात्मा- रज्जबदास मानते हैं कि ब्रह्मा और जीवात्मा में घनिष्ठ सम्बन्ध है, जैसे बीज में वृक्ष समाया रहता है, या कुएं और पात्र के जल में भिन्नता नहीं होती है, जैसे बूंद में घटा समाई रहती है वैसे ही ब्रह्मा में जीव समाये रहते हैं। जब तक जीव संसार-जाल से मुक्त नहीं होता तब तक उसे विषय-वासनाओं में ही सच्चा आनन्द प्राप्त होता है। ब्रह्मा ने ही जीव का निर्माण कर उसे शरीर-रूप दिया है और उसकी मुक्ति के लिए गुरु को बनाया है।

माया— रज्जब जी ने माया की सत्ता स्वीकार की है, यही मन को वश में करती है। यही माया जीव को ब्रह्मा से भिन्न कर देती है। गुण और इन्द्रियां माया के ही दान्त हैं। इस माया ने ब्रह्मा और शिव को भी मोह लिया है। इसी ने समस्त संसार को पागल बना दिया है। रज्जब जी ने सक्ति शिव सोध का अंग में शक्ति का उल्लेख माया के रूप में किया है, वे माया को उभयगुणी मानते हैं। वे संसार में ब्रह्मतत्त्व और माया तत्व को मानते हैं।

साधना पक्ष— भारतीय वैष्णव परम्परा के अनुसार रज्जबदास ने अपनी बाणी से आरंभ में ही गुरु की वन्दना की है। रज्जबदास जी के गुरु दादूदयाल थे जिन्होंने कई पदों में श्रद्धा समर्पित की है। गुरु के गुणों का न आर है न पार, अल्प बुद्धि से उन गुणों का वर्णन नहीं किया जा सकता है। ईश्वर से साक्षात्कार का एकमात्र कारण रज्जबदास ने गुरु को ही माना है। गुरु के ज्ञान—प्रकाश से शिष्य को अपना गन्तव्य सुझता है और वह परमात्मा की ओर प्रेरित होता है।

नामस्मरण— अन्य संतों की भाँति रज्जबदास जी ने नामस्मरण को अत्यधिक महत्व दिया है। निरंजन का नमास्कार करना चाहिए, उसी से परम पुरुष का साक्षात्कार होता है। नामस्मरण के आगे ब्रह्मा और साधक दोनों दास हैं। रामनाम की महिमा का वर्णन करना असंभव है इससे आत्मतत्त्व और ब्रह्मतत्त्व का समन्वय होता है। ईश्वर तो सब का एक ही है चाहे उसके नाम अनेक हों। इसी हरिनाम में अनंत सुख समाया है। निरंजन का नाम जल के समान और समस्त सुकर्म वनखण्ड हैं।

प्रेमतत्त्व— ईश्वरोपासना में रज्जबदास जी प्रेमतत्त्व को प्रमुख मानते हैं। इस प्रेम में द्वैतभाव मिट जाता है और साधक—स्वामी एक हो जाते हैं। निर्मल प्रेम भक्ति रस का पान करने से शारीरिक अस्तित्व मिट जाता है। रज्जब जी भी द्रश्वर को प्रियतम और अपने को प्रेमिका मानते हैं और पुरुष—नारी के प्रेम का वर्णन करते हैं। जब तक विरह न सहन किया जाता है तब तक परमात्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकता है।

बाह्याडम्बरों का विरोध— संत रज्जबदास जी ने अन्य सन्तों की तरह साधना के बाह्याडम्बरों का विरोध किया है। उन्होंने व्रत और रोजे का विरोध करके उन्हें व्यर्थ सिद्ध किया है। वास्तविक तीर्थ तो सत्संग है जिससे बोध रूपी जल प्राप्त होता है और मल रूपी धूल मिट कर काया की शुद्धि होती है।

सन्त सुन्दरदास— इनका जन्म जयपुर की प्राचीन राजधानी धौसा में 1596 ई. में परमानन्द खण्डेवाल के यहाँ हुआ था। इनकी माता का नाम सती था। संत सुन्दरदास दादूदयाल के शिष्य थे। ये बहुत ही प्रतिभाशाली संतकवि और साधक थे। 6 वर्ष की आयु में ये दादूदयाल के शिष्य बन गये थे। 11 वर्ष अवस्था में काशी जाकर साहित्य व दर्शन का गम्भीर अध्ययन किया तथा दीर्घकाल तक योग साधना की।

दार्शनिक विचारधारा

ब्रह्मा—सुन्दरदास के अनुसार ब्रह्मा निर्गुण है उसका न रूप है न रेखा, वह अलक्ष है, अखण्ड है और निरंजन है। वही शेष, गणेश, विष्णु और अन्य देवताओं का स्वामी है। ब्रह्मा और जीव में कोई भेद नहीं है जिस प्रकार एक ही शरीर के अनेक अंग होते हैं, एक ही पृथ्वी पर अनेक स्थान होते हैं, उसी प्रकार जीवन और ब्रह्मा एक हैं अखण्ड हैं। ब्रह्मा से ही पुरुष और प्रकृति उत्पन्न हुई है फिर प्रकृति से तत्व और अहंकार उत्पन्न हुए, अहंकार से सतीगुण, रजोगुण और तमोगुण फिर तमोगुण से विषय आदि उत्पन्न हुए हैं। सुन्दरदास का ब्रह्मा सगुण और निर्गुण की सीमा से परे है।

जीव— जीव नश्वर है। जन्म लेने के समय से ही उसकी आयु घटने लगती है। क्रीडा में उसकी वाल्यावस्था और यौवनावस्था व्यतीत हो जाती है उसके पश्चात् वह वृद्ध हो जाता है। जीव को अपने शरीर पर अभिमान नहीं करना चाहिए, क्योंकि मानव शरीर मलमूत्र का ही भण्डार है।

जगत्—सुन्दरदास ब्रह्मा और जगत् को भिन्न नहीं मानते हैं परन्तु मनुष्य इस ज्ञान से वंचित है। जैसे स्वर्ण और अभूषण में कोई भेद नहीं है, उसी प्रकार ब्रह्मा ही जगत् है और जगत् ही ब्रह्मा है। सुन्दरदास के अनुसार विस्तार संसार, आकाश और पाताल है। यही ब्रह्मा है। जीव में ही जगत् विद्यमान है।

माया— संसार में जीव माया के वश में होता है। माया बहुत चतुर है इसने जीव को उलझा कर रखा है। माया का मुख्य रूप कामिनी है जिसके हाथ मनुष्य बिक जाता है। कामिनी का शरीर सघन वन है जहाँ सभी भटक जाते हैं। जीव को माया और मोह में नहीं पड़ना चाहिए, स्वजनों को देखकर प्रसन्न नहीं होना चाहिए क्योंकि इनके साथ रहने से कोई लाभ नहीं है।

साधना पक्ष—गुरु सुन्दरदास ने साधना पक्ष में गुरु ज्ञान, प्रेम और योग को महत्व देकर बाह्याडम्बरो का खण्डन किया है। ब्रह्मसाक्षात्कार के लिए गुरु आवश्यक है। गुरु ही काल के जाल से मुक्त कराता है। गुरु सर्वगुण सम्पन्न, ज्ञानभण्डार आनन्दरूप और श्रेष्ठ है। सुन्दरदास भी गोविन्द से गुरु को अधिक महत्व देते हैं।

प्रेमतत्व—अन्य संत कवियों की तरह सुन्दरदास भी साधक को नारी और ब्रह्मा को प्रियतम मानते हैं। साधक रूपी नारी को पतिव्रता होना चाहिए। इनके अनुसार जाति—पाति, कुल और गोत्र की भिन्नता नहीं होती, न इसका कोई नियम ही होता है।

योग— सुन्दरदास ने अपने काव्य में योग का भी वर्णन किया है। योग के प्रथम अंग यम और नियम है, इसके पश्चात् आसन आते हैं फिर प्राणायाम और प्रत्याहार, षट्चक्र ध्यान और समाधि की व्यवस्था आती है। सुन्दरदास ने षट्चक्रों का भी वर्णन किया है।

बाह्याडम्बरो को विरोध—प्रायः सभी संतों ने साधना के बाह्याडम्बरो का विरोध किया है। तीर्थयात्रा, जप, तप आदि सब व्यर्थ है। ब्रह्मा जीव के हृदय में ही व्याप्त है। परन्तु जीव उसका अन्वेषण करने प्रयाग, बनारस, पुरी, मथुरा आदि स्थानों पर जाता है। कठिन तपस्या करके शरीर को दुःख और वैराग्य लेना भी व्यर्थ है। अपने रूप को पहचानना चाहिए। जीव में ही ब्रह्मा व्याप्त है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. चतुर्वेदी, परशुराम— “उत्तरी भारत की संत परम्परा” / पृ. 505
2. शर्मा, पुरोहित हरिनारायण— “सुन्दरग्रंथवली” /पृ. 13
3. वर्मा, डॉ. ब्रजलाल— “संत कवि रज्जब—सम्प्रदाय और साहित्य” /पृ. 01
4. वही, पृ. 10
5. वही, पृ. 07
6. वर्मा, डॉ. रामकुमार— “ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास” /पृ. 274
7. बड़थवाल, डॉ. पीताम्बरदत्त— “हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय” /पृ. 170
8. वही, पृ. 185
9. चतुर्वेदी, परशुराम— “उत्तरी भारत की संत परम्परा” / पृ. 485
10. मिश्र, शिवकुमार— “भक्ति आन्दोलन और भक्ति काव्य” / पृ. 85
11. वही, पृ. 87
12. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र—“हिन्दी साहित्य का इतिहास” /पृ. 66

अमीर-उल-उमरा खानजमां अलीकुली खाँ शैबानी : एक परिचय

डॉ० मोहम्मद आदिल

असिस्टेंट प्रोफेसर इतिहास विभाग

भवंस मेहता महाविद्यालय भरवारी , कौशाम्बी

अलीकुली खाँ के पिता हैदर सुल्तान उजबेग जाति के शैबानी खाँ के परिवार से संबंधित था। इसी कारण अलीकुली खाँ अपने नाम के अंत में शैबानी लगाता था। हुमायूँ जब शेरशाह से पराजित होकर ईरान के शाह तहमास्प के दरबार में सहायता के लिए पहुँचा तो शाह ने हुमायूँ का स्वागत करते हुए सैनिक सहायता प्रदान की। इन्हीं सैनिकों के साथ हैदर सुल्तान व उसका पुत्र अलीकुली खाँ और बहादुर खाँ हिंदुस्तान आये। हैदर सुल्तान की मृत्यु के बाद हुमायूँ ने अलीकुली खाँ को रसोईघर का दरोगा नियुक्त किया। कुछ समय पश्चात् अलीकुली खाँ व उसका भाई बहादुर खाँ मुगल सेना में शामिल कर लिए गये। अलीकुली खाँ की सैन्य सेवा देखकर अकबर ने अपने पहले शाही जुलूस में खान-ए-जमाँ की उपाधि प्रदान की।¹ अलीकुली खाँ को पठान सरदार शादी खाँ के विरुद्ध भेजा गया। रूहाब नदी के तट पर दोनों सेनाओं का सामना हुआ। अलीकुली खाँ को इस युद्ध में कोई विशेष सफलता हाथ न लगी। इसी बीच एक एलची अलीकुली खाँ के पास खबर लाया कि हेमू मुगलों के विरुद्ध तुगलकाबाद तक घेरा डाल रखा है। सूचना पाते ही अलीकुली खाँ संभलसे देहली के लिए कूच किया। देहली पहुँचने पर उसे यमुना के दूसरे किनारे पर ठहरना पड़ा। वह देहली नहीं पहुँच सका। उधर हेमू मुगल सेनापति तर्दीबेग को हेमू पराजित कर , उसे पीछे ढकेल दिया। बैरम खाँ ने इस घटना का लाभ उठाया। उसने अकबर से कहा कि तर्दीबेग के कारण की मुगल सेना पराजित हुई है और उसने अपनी इस बात की पुष्टि अलीकुली खाँ व अन्य अमीरों से भी करा दिया। इसके पश्चात् षडयंत्र करके तर्दीबेग की हत्या करा दी। बैरम खाँ का समर्थन करके अलीकुली खाँ उसका विश्वासपात्र बन गया। पानीपत की दूसरी लड़ाई में अलीकुली खाँ मुगलों की ओर से युद्ध किया था। पानीपत के मैदान में हेमू जब अलीकुली खाँ की तरफ बढ़ा तो वह डटकर तीरों की बौछार करता रहा।² ऐसा प्रतीत होता है कि जो तीर हेमू को लगा था वह अलीकुली के हलके से छोड़ा गया था। हेमू , तीर लगने पर गिर गया था। अलीकुली ने उसे जीवित पकड़वाकर अकबर क्र सम्मुख ले गया। इसके एवज में उसे संभलपुर और दोआब का इलाका उसे जागीर के रूप में मिले।

अलीकुली एक शौकीन मिज़ाज व्यक्ति था। मौलाना अब्दुल कादिर मलूकशाह बदायूँनी और मौलाना अबुल फ़ज़ल अल्लामी ने अलीकुली खाँ (खान-ए-जमाँ) और शाहमबेग के प्रेम प्रसंग का उल्लेख किया है। शाहमबेग ईरान के शाह तहमास्प के सारबान का पुत्र था। वह देखने में जितना हसीन था , उससे कहीं अधिक बहादुर था। हुमायूँ ने उसे शाही अंगरक्षक दस्ते में नियुक्त किया था। हुमायूँ की मृत्यु के पश्चात् शाहमबेग को अलीकुली खाँ ने अपने पास बुला लिया। अबुल फ़ज़ल

लिखते हैं कि “वह शाहमबेग की सुंदरता पर मुग्ध था।”³ बदायूनी ने लिखा है कि “शाहमबेग के इश्क में खानजमां (अलीकुली खाँ) अपने आप को भूल गया था। उसकी खातिरदारी और चापलूसी में ऐसा लगा रहता था कि उसे बादशाह कहकर पुकारता था।”⁴ बदायूनी ने आगे लिखा है कि मैंने अबुल गैश बुखारी से सुना है कि शाहमबेग एक ईमानदार, नमाज़ी और परहेजगार है जिसके प्रभाव में आकर खानजमां भी बड़ा परहेजगार हो गया था। उसने उसकी शिक्षा की भी व्यवस्था चोटी के उलेमा से कर रखी थी लेकिन शाहमबेग आगे चलकर बिगड़ गया। अकबर के शासनकाल में एक बड़ी मशहूर तवायफ़ आरामजान पर शाहमबेग फ़िदा हो गया था। आरामजान से अलीकुली ने विवाह कर उसे अपने हरम में शामिल कर रखा था। जब इस बात की सूचना अलीकुली को हुई कि आरामजान भी शाहमबेग के पास जाना चाहती है तो उसने आरामजान को शाहमबेग के हवाले कर दिया।⁵

शाहमबेग ने कुछ दिनों तक आरामजान को अपने पास रखा। जब बेग का दिल आरामजान से भर गया तो उसने आरामजान को अपने एक मित्र अब्दुरहमान बिन मोईदबेग को दे दिया। यहाँ पर ये दिखाई पड़ती है कि अकबर के शासनकाल में तवायफ़ो का अपना अलग स्थान था। वह दाम्पत्य जीवन अपनी स्वेच्छा से निर्वहन करते दिखाई पड़ रही है लेकिन आम महिलाओं के अधिकार की बात की जाये तो ऐसा कोई कानून अकबर ने नहीं लागू किया बांदियों के अधिकारों की रक्षा कर सके। अकबर ने समाज में नैतिकता बनाए रखने का प्रयास किया। इसी लिए उसने शैतानपुरी बस्ती से दूर स्थापित कर रखा था। आरामजान प्रकरण की सूचना जब शाही तख्त तक पहुँची तो अकबर ने शाहमबेग को दरबार में उपस्थित होने का आदेश दिया। जौनपुर के विभिन्न जागीरदारों को अकबर ने फ़रमान भेजा यदि अलीकुली यदि अलीकुली खाँ आदेश का पालन न करे तो सब मिलकर उसे सजा दो। अलीकुली खाँ ने अपना एक दूत बर्ज अली को अकबर के पास भेजा। बर्ज अली दरबार में न जाकर बैरम खाँ के नाइब पीर मोहम्मद खान के घर चला गया। पीर मोहम्मद और बर्ज खान के बीच कहासुनी हुई, पीर मोहम्मद क्रोधित होकर बर्ज अली को बुर्ज से नीचे फ़ेक दिया। अलीकुली खाँ को जब इस घटना की सूचना मिली तो वह इसकी जानकारी शाहमबेग के पास सरहरपुर (जौनपुर से 18 किलो मीटर दूरी पर स्थित) भेज दी। सरहरपुर अब्दुरहमान की जागीर में शामिल था। अब्दुरहमान और शाहमबेग की आपस में खूब बनती थी। एक रात ऐसी घटना घटी कि शराब के नशे में चूर शाहमबेग का पुराना प्यार जोर मारा और उसने अब्दुरहमान से आरामजान को बुलाने के लिए कहा। अब्दुरहमान ने यह कहते हुए कि मैंने आरामजान से निकाह कर लिया है और उसे बुलाने से इनकार कर दिया है। इसी बात को लेकर दोनों में विवाद हो गया। शाहमबेग ने जबरन आरामजान को अपने पास बुलाकर उसके साथ रंगरेलियों में मस्त हो गया। इसी बीच अब्दुरहमान का भाई मोईद बेग की गैरत जोर मारी उसने शाहमबेग को तीरों से छलनी कर दिया।⁶

इस घटना ने अलीकुली खाँ को सावधान कर दिया। संभल और दोआबा का क्षेत्र जो उसकी जागीर में शामिल था। उसकी सीमा पर अफ़गानों का प्रभाव बढ़ता जा रहा था। अफ़गानों में फ़तह खाँ व उसका भाई हसन खाँ, मल्लू खाँ और अन्य बहुत से अफ़गान रोहतास के दुर्ग से निकलकर बिहार व अलीकुली की जागीर में घुस आये थे। हसन खाँ बीस हजार सैनिकों को लेकर अलीकुली

पर आक्रमण के लिए बढ़ा। अलीकुली के पास उस समय लगभग पाँच हजार सैनिक थे। हसन खाँ के आने की सूचना जब अलीकुली खाँ को दी गयी तो वह भोजन करने के लिए बैठ गया। जब लोगों ने कहा शत्रु सिर पर चढ़ा आ रहा है तो उसने चौसर मंगवाकर खेलना शुरू कर दिया। उधर हसन खाँ बहादुर खाँ को पराजित कर किले पर चढ़ाई कर दी। अलीकुली अपने कुछ सैनिकों के साथ हसन खाँ की सेना टूट पड़ा। पठान ताब न ला सके और घबरा कर भाग खड़े हुए। इसके बाद अलीकुली का मुकाबला बंगाल से आये 40000 अफगान सेना से हुआ। इस मुकाबले में भी अफगान टिक न सके। इस विजय के बाद अलीकुली और उसके भाई बहादुर खाँ की बहादुरी चारों दिशाओं में फैल गयी। बदायूनी ने लिखा है- “यदि उनका दामन पहले से दागदार न होता तो दोनों भाई अपनी बहादुरी के कारण शाही सम्मान के हकदार हो जाते। ” फरिश्ता ने इसी घटना का इस प्रकार से उल्लेख किया है- “उन्होंने अफगानों को काट-काट कर ढेर लागा दिए और बादशाह को इतना खुश किया कि उनके सारे गुनाह घुल गए। ”⁷

अलीकुली खाँ जौनपुर में था , उसे सूचना मिली कि सिकंदर अदली के मरने के बाद उसका पुत्र शेर खाँ के नाम से स्वतंत्र शासकों की भांति शासन करने लगा है। उसने अपने पिता का प्रतिशोध लेने के लिए जौनपुर की तरफ बढ़ रहा है। वह गोमती नदी से उतरकर सुल्तान हुसैन शाह शर्की की मस्जिद की ओर बढ़ा , शेर खाँ पहले लाल दरवाजा पर हमला करने का विचार कर रहा था। अलीकुली खाँ अपने साथी इब्राहीम खाँउजबेग , मजनू खाँ , काकताल और शाहम खाँ जलायर की सहायता से शत्रु को पराजित कर भागने के लिए विवश किया। इस घटना के पश्चात् अलीकुली खाँ की शक्ति और सुदृढ़ हो गयी। उसने शत्रु के खेमों से प्राप्त संपत्ति शाही दरबार में नहीं भेजा। इस घटना की सूचना जब शहंशाह अकबर को पहुँची तब उसे संदेह हुआ कि कहीं अलीकुली विद्रोह न कर दे। इस बात को ध्यान में रखकर अकबर स्वयं जौनपुर की ओर कूच किया। अभी सम्राट कड़ा मानिकापुर ही पहुँचा था कि अलीकुली अपने भाई के साथ उपस्थित सम्राट के सम्मुख उपस्थित हुआ और सम्राट को अच्छी नस्ल के हाथी और अन्य कीमती वस्तुएँ भेंट कर अपनी स्वामिभक्ति प्रकट की तो अकबर ने उसे जौनपुर की जागीर प्रदान की।

अलीकुली खाँ एक दिन शिकार के लिए चुनारगढ़ गया था। शिकार के दरमियान सिकंदर के उकसाने पर उसने गाज़ीपुर और उसके आस-पास के क्षेत्रों पर अधिकार करके स्वतंत्र शासकों की भांति व्यवहार करने लगा।⁸ अलीकुली की इस गुस्ताखी की सज़ा देने के लिए अकबरने अशरफ़ खाँ को आदेश दिया कि जौनपुर जाकर बागी की माँ को गिरफ़्तार कर लो। इसके बाद अकबर भी गाज़ीपुर के लिए निकल पड़ा। जब सम्राट के आने की सूचना अलीकुली खाँ को हुई तो तो वह जंगलों में जा छिपा। बहादुर खाँ अपने साथियों को लेकर रात्रि में जौनपुर से अपनी माँ को निकालकर बनारस की ओर भागा। अपनी माँ को दोनों भाईयों ने खान-ए-खाना के पास एक शेर के माध्यम से माफ़ी की फ़रियाद की –

बर्दी उम्मीद हाय शाख दर शाख।

करम हाय तो मारा कर्द गुस्ताख॥⁹

अकबर चूंकि बहादुर खाँ को अपना भाई मानता था। इस लिए उसकी ग़लती बार-बार माफ़ कर दे रहा था। इस बार भी उनकी ग़लती माफ़ करते हुए उनको पूर्व की भाँति जागीर पर बने रहने दिया। इसी बीच अकबर को काबुल और पंजाब से विद्रोह की सूचनाएँ मिलने लगीं। जिसके कारण वह जौनपुर में अधिक दिनों तक ठहर न सका वह जौनपुर से आगरा के लिए निकल पड़ा। अकबर के जौनपुर से जाने के पश्चात् दोनों बंधु शांत बैठे रहे। अकबर ने अवध के जागीरदार इसकंदर खाँ उजबेक को अशरफ़ खाँ के माध्यम से नरवर लाने को कहा। उस समय इब्राहीम खाँ तमाम उजबेक सरदारों कानेता हुआ करता था। उसके नेतृत्व में तमाम उजबेक अवध में एकत्रित होकर यह निर्णय लिया कि शाही दूत अशरफ़ खाँ को कैद कर , जौनपुर अलीकुली के पास जाकर दो स्थानों से से बगावत करें। लखनऊ में विद्रोह का नेता सिकंदर खाँ और इब्राहीम खाँ व कड़ा मानिकपुर में अलीकुली खाँ और उसका भाई था। इसके बाद अलीकुली अपने भाई के साथ कड़ा मानिकपुर पर अधिकार कर स्वतंत्र शासकों के जैसा व्यवहार करने लगे थे। अकबर मालवा से लौटा तो उसे इस घटना की सूचना मिली तो वह क्रोधित हो उठा। 1562 ई० में कड़ा मानिकपुर और अवध के विद्रोह को दबाने के लिए कन्नौज के रास्ते लखनऊ पहुँचा। लखनऊ में सम्राट के आने की सूचना पाते ही विद्रोही भाग खड़े हुए। इसके बाद अकबर जौनपुर गया। जौनपुर में हाजी खान सिस्तानी को बंगाल इस उद्देश्य से भेजा कि वहाँ का शासक सुलेमान खान किसी भी प्रकार से अलीकुली खाँ की सहायता न कर सके। जब हाजी खा रोहतास दुर्ग पहुँचा तो उन अफ़गानो ने उसे कैद कर लिया जो अलीकुली से मिले हुए थे। अकबर ऐसे ही दूत उड़ीसा के शासकों के पास भेजे ताकि अलीकुली खाँ को कहीं से सहायता न मिले। उजबेक सरदारों के विद्रोह से तंग आकर उन्हें समूल नष्ट करनेका संकल्प लेकर 1566-67 ई० में अकबर कड़ा मानिकपुर पहुँचा। दोनों बंधु मुग़ल सेना से वीरतापूर्वक लड़े किंतु भाग्य ने उनका साथ नहीं दिया , अलीकुली खाँ को युद्ध के दौरान तीर लग जाने के कारण वह हौदे से नीचे गिर पड़ा और किसी हाथी का पैर उसकी शरीर पर पड़ गया जिसके कारण उसकी हड्डियों का सूरमा बन गया। उसकी मृत्यु के बाद जब बहादुर खाँ को गिरफ़्तार करके अकबर के सम्मुख लाया गया तो अकबर ने पूछा “कहो बहादुर क्या हाल है?” उसने उत्तर दिया “हर हाल में अल्लाह का शुक्र है। ” इसके बाद वह सम्राट से पानी माँगा। अकबर ने उसे अपने पानी का प्याला उसे दे दिया। बदायूनी का दावा है कि अब भी बादशाह को उसमें अपना भाई दिख रहा था। एक योग्य शासक के राजत्व में भाई-भतीजावाद का स्थान नहीं होता। उमरा ने उसके जीवित रहने पर प्रश्न चिह्न लगाकर उसकी हत्या करवा दी। इसी बीच अफ़वाह फैली की अलीकुली खाँ फ़रार हो गया है तभी एक व्यक्ति व्यक्ति उसका सिर दण्डे में लटकाए आता दिखाई पड़ा। ग़ालिब नामक व्यक्ति अलीकुली का सिर छीनकर बादशाह के सम्मुख ले गया। अकबर ने घोड़े से उतर ईश्वर का धन्यवाद अदा किया। अलीकुली और अकबर के बीच ये युद्ध अल्लाहाबास के एक कस्बे मुनकरवाल में अकबर के बारहवें जुलूस में घटी। सम्राट के आदेशानुसार अलीकुली और बहादुर खाँ के सिर आगरा , दिल्ली, मुल्तान इत्यादि स्थानों पर घुमाए गये। अलीकुली और बहादुर के शरीर जौनपुर भेजा गया जहाँ खास हौज़ में शाहमबेग की क़ब्र के पास दफ़न कर दिया गया।

बदायूनी ने लिखा है कि अलीकुली अपने जीवन में जितने भी युद्ध किये सभी में उसे आशातीत सफलता मिली थी।¹⁰ अबुल फ़ज़ल ने लिखा है कि अलीकुली ख़ाँ जब से भारत आया तभी से वह अनुचित कार्यों में लिप्त रहता था। उसमें मानवीयता की कमी थी। शहंशाह के बार-बार क्षमा करने पर भी वह दयालुता का अर्थ नहीं समझता था और दुष्टता करता रहा।¹¹ फ़रिश्ता का ने लिखा है कि बादशाह ने बहादुर ख़ाँ को नज़रबंद करने का आदेश दिया था किंतु उमरा ने उसे बिना शाही आदेश के उसका सिर तन से जुदा कर दिया।¹² इस प्रकार अकबर के दो अवसरवादी अमीरों का दर्दनाक अंत हो गया।

संदर्भ ग्रंथ

1. मासिर-उल-उमरा , समसामउद्दौला शाहनवाज़ ख़ाँ , जिल्द-1 , जानकी प्रकाशन पटना , 1979 , पृ०198.
2. मुंतख़ब-उत-तवारीख , मुल्ला अब्दुल कादिर बदायूनी ,जिल्द-2,कौमी काउंसिल बराये फ़रोग उर्दू ज़बान नई देहली 2012 , पृ०10.
3. अकबरनामा,अबुल फ़ज़ल अल्लामी,जिल्द-1 राधा पब्लिकेशन नई देहली ,2008, पृ०पृ०151.
4. बदायूनी, पृ०17.
5. मुंतख़ब-उल-लुबाब , हाशिम ख़ाँ (खाफ़ी ख़ाँ) , जिल्द-1 फ़रीद बुक डिपो प्राइवेट लिमिटेड , नई देहली, पृ0171.
6. बदायूनी, पृ०17.
7. बदायूनी, पृ. 18.
8. तारीख-ए-फ़रिश्ता , मोहम्मद कासिम हिंदू शाह फ़रिश्ता , जिल्द-2 ,अलमिज़ान नासिरान व ताजरान कुतुब उर्दू बाज़ार लाहौर , 2008, पृ० 516.
9. तारीख-ए-सलातीन शर्की और सूफ़ियाये जौनपुर , सैय्यद इक़बाल अहमद , इदारा शिराज़ हिंद पब्लिकेशन हाउस जौनपुर , 1988, पृ०392.
10. बदायूनी, पृ.17.
11. अबुल फ़ज़ल, पृ.251.
12. फ़रिश्ता, पृ. 520.

HISTORY AND DEVELOPMENT OF YOGA AND NATUROPATHY IN INDIA

Dr. Rakesh Kumar

Assistant Professor

Department of Physical Education

Sri Varshney College, Aligarh (U.P)

ABSTRACT

Yoga & Naturopathy are very old sciences based on well-founded philosophy. In ancient texts, we find mention of health promotive, disease preventive, curative and rehabilitative values of different Yogic practices and Nature Cure modalities. In the recent past Naturopathy was considered a minority health movement, and so was Yoga, but as per a recent estimate, about 15 million Americans include one form of Yoga in their daily fitness regimen. This indicates the growing popularity these sciences enjoy today.

The systems of Yoga & Naturopathy have flourished in the country mainly through non-government initiatives. Recognizing and realizing the need for developing these systems as per their fundamental principles, the Government of India established three organizations named Central Council for Research in Yoga & Naturopathy (CCRYN), New Delhi, National Institute of Naturopathy(NIN), Pune and Morarji Desai National Institute of Yoga (MDNIY), NewDelhi.

Gandhiji was influenced by the book 'ReturntoNature' written by Adolf Just and became a firm believer in Naturopathy. This gave momentum to the spread of these sciences. Presently there are hundreds of Institutions working in the field of Yoga & Naturopathy having indoor and outdoor treatment facilities and are serving the suffering masses with full dedication. Their number is increasing day by day.

In this paper, the author gives historical development defines the role that these systems can play in realizing health for all, and stresses the need to give these sciences due to the importance they deserve in the National Health Programmes. The author also discusses the limitations of these sciences and their true scope for them.

Keywords: Naturopathy, Yoga, Health, History, Development, etc.

Introduction

Yoga And Naturopathy are the twin systems of health care. These are called the science of healthy living. Both are drugless systems of healing based on well-founded philosophy. Yoga and Naturopathy have their concepts of health and disease and also principles of treatment. These systems lay more importance on the preventive aspect of health care rather than a curative one. This is one of their Yoga & Naturopathy systems that are gaining popularity day by day.

Naturopathy is a system of man building in harmony with the constructive principle of nature of physical, mental, moral & spiritual planes of living. It has great promotive, disease preventive, and curative as well as restorative potential.

Naturopathy is also defined as a system of medicine for the cure of diseases by encouraging natural curative reactions inherent in every diseased cell through methods and treatments based upon the five fundamental laws which govern health.

The difference between Naturopathy and other systems of medicine is that in Naturopathy the methods and treatments used to encourage the inherent curative reaction within each cell are based upon the five fundamental laws which govern health. The cure is obtained, not by reactions to the medicines introduced but because the very vitality and the health of diseased cells improve with the help of the methods and treatments used.

History

Naturopathy has been used in India since time immemorial. Fasting, Ushpsnsm, Dugdh Ka Jpa and taking bath in holy rivers, etc. These are some of the modalities used by Indians in those days. Hindus, Chinese, and Egyptians used water, sunlight, fasting, massage, and exercise for curative purposes since 3000B.C. (approx.). Fasts were enjoyed as a religious observance among the Hindus on fortnightly days, viz., the eleventh day after the full or new moon (called Ektidas J), and the new moon day (Amtivasyti).

Naturopathy and Nature Cure are synonyms. In India, these revivals and spread of Naturopathy started with the translation of Germany's Louis Kuhne's famous book "The New Science of Healing". In 1894 Shri D. Venkatachalpatty Sharma, a close associate of Louis Kuhne propagated Kuhne's treatment in South India by translating Kuhne's books into Telugu. Later in 1904 Srotriy «KrsnsSveriips published Hindi and Urdu translations of Kuhne's books and thus helped to spread Kuhne's treatment in Northern India.

During the years 1920-

21 Dr. Dinshah started developing techniques of Naturopathy based on modern lines. Among other things he first cured himself, his family members, and many friends of chronic malaria without any anti-malarial drugs, thereby developing immunity to malaria. In 1929, he started Nature Cure Clinic and Sanatorium at Tadi walla Road, Poona. Later, he started the branch of the Poona institution in a picturesque place at Sinhgdh situated at a height of about 1,500 meters above sea level, 25Km from Poona. He also started two Nature Cure Clinics in Bombay, one indoor and the other outdoor.

The Naturopathy movement commenced mainly in the States of Andhra Pradesh, Uttar Pradesh, Bengal, Maharashtra, Gujarat, etc. Long back. The places quite famous for Naturopathy Centres in those days were Bhimavaram in Andhra Pradesh, Pudukottai in Tamilnadu, Gorakhpur, Lucknow, Allahabad and Magarwara in Uttar Pradesh, Calcutta in Bengal, Dhulia, Bombay, and Seva Gramin Maharashtra, Jasidih and Ranipatra in Bihar, Jaipur in Rajasthan and Sabarmati Ashram in Gujarat. The Naturopathy Centres that started working in those days were Arogya Mandira, Gorakhpur in 1941, Nissrgopecsrs Asems, Urulikanchannear Poonain 1946 and Prskrtiks Ohtsa Jaya, Jaipur in 1950. Some of the Naturopaths did find work in the revival of Naturopathy and devoted their lives in different States among them Dr. Mahavir Prasad Poddar, Dr. Janaki Sharan Verma, Dr. Sharan Prasad, Dr. Khushi Ram 'Dilkash', Dr. S.J. Singh, Dr. Hiralal, Dr. Vitthal Das Modi, Dr. Kularanjan

Mukherjee, Dr. Sukhram Das, Dr. J.M. Jussawala, Dr.Vegi Raju Krishnam Raju, Dr. B. Venkat Rao, Dr. B.Vijay Laxmi, Dr.Ganga Prasad Goud 'Nahar', Shri Dharam Chand Saravagi and Acharya K. Laxman Sharma, etc. Are worth mentioning. The names of Dr. M.M. Bhamgara and Dr. Sukhbir Singh Rawat are mentionable in the present-day context of Naturopathy. Rai Bahadur Dr. D.N. Choudhuri, retired Civil Surgeon of Jabalpur, turned into a Naturopath and wrote a remarkable book 'The Ideal Diet'. The books written by these eminent Naturopaths are of immense value and most of the books are a part of the curriculum of Naturopathy nowadays.

Gandhiji the "Father of Nation" was highly influenced by the book 'Return to Nature' written by Adolf Just (published in 1902) and gradually became a firm believer in Naturopathy. For the benefit of the readers of the Indian Opinion (South Africa), he wrote a few articles under the heading "Guide to Health" III or about the year 1906. He did several experiments of Naturopathy on himself, his family members, and the residents of the ashram. Convinced by his experiments he included Kudarati Okjtsa (Naturopathy) in his constructive programs. He wrote many books on Naturopathy based on his experiences which are quite popular among the followers of Naturopathy. These books are Key to Health, Nature Cure, Remensms, and Diet & Diet Reform. The highlights of these books are that they are written in a simple language easily understandable to a common man.

Gandhiji had a passion to tender the sick and the poor. He valued life close to nature for its simplicity and evolved and practiced simple rules of health. He had almost religious faith in vegetarianism which led him to carry out dietetic reform based on the pragmatic result obtained from personal experiments. He was tremendously influenced by the writings of Dr. Kuhne on Nature Cure. He believed that the Human body, mind, and spirit could be maintained in a state of perfect health by the observance of simple rules. He attempted to discover causes of ordinary ill health and improvised simple remedies of Nature Cure. On June 14, 1944, Gandhi Ji first went to Dr. Dinshah's Nature Cure Clinic, Poona. Since his first visit to his institution on August 6, 1946, when he left Poona and never returned there because his presence was needed in another part of the country, Gandhiji visited Dr.Dinshah's Institution 12 times and spent 156 days there.

Dr. Dinshah became Gandhiji's nature cure physician. He managed two of the three world-renowned 21 day fasts of Gandhiji and many other shorter ones; cured him of malignant tertian malaria without anti-malarial drugs and treated him till the end of the latter's life in January 1948.

In 1946 Mahatma Gandhi opened his Nature Cure Center at Urlikanchan (Poona) in pursuance of his belief that the poor could not afford costly medicines and remedies and that he owed it to them to let them have the benefit of his long life experiments in Health and Hygiene and acted as the physician-in-charge. He added Rsmnsme as a method of faith healing to the already existing methods of Nature Cure healing.

In the year 1924, the basic research and development work on Yoga was started by Swami Kunalayan and joined Lonavla. He established the Kaivaiya domain in Lonavla, Pune which later became a pioneer institute in the field of research in Yoga. Some more institutes like Bihar School of Yoga, Munger, Vivekananda Yoga Research Foundation, Bangalore and Vemana Yoga Research Institute, Hyderabad, Krsnsmscdry «Yoga Mandiram, Chennai, The Yoga Institute, Santacruz, Mumbai, Umachal Yog frame, Guwahati, Divine Life Society, Rishikesh, etc. also done commendable work.

Development

Later the Government of India also recognized the need for systematic research for the development of Yoga & Naturopathy systems and thus formed three organizations to look after the development of these systems which are the autonomous bodies of the Ministry of Health & Family Welfare under the Department of AYUSH. The Central Council for Research in Yoga & Naturopathy (CCRYN), New Delhi established in 1978 is one of them. The other two are the National Institute of Naturopathy (NIN), Pune, and Morarji Desai National Institute of Yoga (MDNIY), New Delhi.

The system of Yoga & Naturopathy flourished in the country mainly through non-government initiatives. These non-government institutions were largely instrumental in popularizing these systems among the masses. They also helped in the development of these systems on modern lines. In contrast, some State & Central governments have taken some interest and started patronizing these systems. Presently there are hundreds of Naturopathy and Yoga Hospitals spread across the country, providing health care services to common masses of rural as well as urban areas in an effective manner with or without any support from the Government. Some of the institutes like the Institute of Naturopathy and Yogic Science, Bangalore, Nisergopeciire Asrama, Urulikanchan, Pune, Arogya Msndirs, Gorakhpur, Prskrtike Cikittsslsy«, Jaipur and Govt. Naturopathic Medical College and Govt. Naturopathy Hospital, Hyderabad, etc. are not only known all over the country but are quite popular among the believers of Yoga & Naturopathy in foreign countries as well.

Today Naturopathy is accepted as an independent system of treatment by all and eleven colleges affiliated with respective Universities are imparting a 5Yz year course leading to a degree of Bachelor of Naturopathy and Yogic Sciences (BNYS).

Future Prospects

Yoga and Naturopathy systems have enormous potential. In the scientific age of today, these systems can prove their efficacy if due patronage is given to these systems to develop as per their principles. These drug fewer systems are more effective in many lifestyle-related chronic disorders i.e. Coronary Artery Disease (CAD), Diabetes Mellitus, Asthma, Arthritis, Hypertension, Anxiety, etc. where other systems have failed to provide any sort of relief. Yoga and Naturopathy sciences are time-tested and the new trend of integrating their practice s name meliorating suffering of patients by leading practitioners of other systems speaks of the importance they enjoying today and the role they are likely to play in the future. It can be said with confidence that the dream of health for all which is yet to be realized despite the passing of the targeted the year 2000 can well be realized comparatively a shorter period if the systems are given due importance they deserve by Health Planners and popularized globally.

Conclusion

While discussing the prospects it should also be kept in mind that Yoga & Naturopathy have a lot of merits but there are certain limitations also, especially Naturopathy. People say that Naturopathy is at a time taking process, although there as on behind this, is the attitude of the patient in taking Naturopathy as last resort. In accidents and surgical cases Naturopathy is not having much to contribute. However, in post-operative cases, Naturopathy can prove its metal.

The authorities may consider giving these old & traditional systems due to importance in the National Health Programme (NHP) and National Rural Health Mission (NRHM) not only to

cut down the increasing expenses in health care delivery but also to build a healthy and strong nation.

REFERENCES

Dinshah K. Mehta 1988 Fundamental Laws of Health, Bhartiya Vidya Bhavan, Mumbai, India.

Gandhi ji 1994 Nature Cure, Navajivana Publishing House, Ahmedabad, India.

Gandhi M. K. 1994 Key to Health, Navajivana Publishing House, Ahmedabad, India.

Rastogi Rajiv 2006 Requirement of Scientific Documentation for the development of Naturopathy, Bull. Ind. Int. Hist. Med. Vol. XXXVI-2006. Pp. 75-82

Singh, S. J. 1978 Bath, Nature Cure Research Hospital, Lucknow, India.

शोषण से मुक्ति का आह्वान करती कविताएं

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक का नाम- कारक के चिह्न

लेखक- डॉ. संतोष पटेल

प्रकाशन- नवजागरण प्रकाशन, न्यू
दिल्ली

अनुज कुमार

शोधार्थी (पीएच.डी.)

हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

‘कारक के चिह्न’ शीर्षक से, ख्याति प्राप्त कवि-आलोचक डॉ. संतोष पटेल का कविता-संग्रह नवजागरण प्रकाशन से प्रकाशित हुआ है। इस कविता-संग्रह में कुल पचपन कविताएं हैं। इन कविताओं में ऐसे समसामयिक यथार्थ की पकड़ है जिसमें पीड़ित-शोषित समाज की व्यथा-कथा रची जाती है। संतोष पटेल का कवि कर्म एक सार्थक दिशा में अग्रसर है। उनके पास समाज को देखने और समझने की एक स्पष्ट दृष्टि है। निश्चित ही यह दृष्टि उन्हें डॉ. भीम राव अंबेडकर से मिली है जिन्होंने वंचित समाज को मानवीय गरिमा प्रदान करते हुए उन्हें समाज में बराबरी की हैसियत से जीने का अवसर प्रदान किया किन्तु बाबा साहब के सपनों का भारत आजादी के 75 साल भी पूरा नहीं हो पाया है। जातिवादी मानसिकता दलित समाज को आज भी हाशिए पर जीने पर मजबूर कर रही है। तमाम संवैधानिक अधिकारों के बावजूद दलित समाज का सरकारी संस्थानों में प्रतिनिधित्व न के बराबर है। जाति जैसी अमूर्त सत्ता के संदर्भ में डॉ. भीम राव अंबेडकर ने कहा था कि जब तक जात-पात का रिवाज खत्म नहीं होगा तब तक समानता ही नहीं सकेगी। जाति संस्था का नाश ही समानता का निर्माण है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि डॉ. अंबेडकर समानता के लिए जाति के विनाश की अनिवार्यता को स्वीकार करते हैं। वे विषमतावादी संस्कृति के समकक्ष समतावादी संस्कृति के बीज बो रहे थे। प्रो. रजत रानी ‘मीनू’ के अनुसार- “डॉ. भीम राव अंबेडकर देश में एकता, समानता, बराबरी, भाईचारा और देश को एकता के सूत्र में बांधने की संस्कृति पैदा कर रहे थे।”¹

व्यक्ति की मृत्यु उस दिन नहीं होती जिस दिन वह पांच तत्वों से निर्मित शरीर को त्याग कर अदृश्य जगत में कहीं लीन हो जाता है बल्कि उस दिन होती है जिस दिन समाज में उसके विचारों की प्रासंगिकता समाप्त हो जाती है। डॉ. भीमराव अंबेडकर मात्र एक व्यक्ति नहीं हैं अपितु वे तो विचारों से निर्मित एक ऐसी महान शख्सियत हैं जिन्होंने वंचितों एवं शोषितों के जीवन का उद्धार कर उन्हें मानवीय गरिमा प्रदान की है। उनके विचार आज भी लोगों के मानस में जिंदा हैं। कवि संतोष पटेल ने अपनी कविता ‘मैं अंबेडकर हूँ’ में इसी तथ्य को सृजनात्मक रूप में उद्घाटित किया है। बाबा साहब की मौजूदगी हर उस व्यक्ति के भीतर है जो समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व की भावना को आत्मसात करता है। कवि संतोष पटेल समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के विचारों का समाजीकरण कर जन-जन के भीतर

लोकतंत्र की भावना का प्रचार करना चाहते हैं। इस प्रकार 'मैं अंबेडकर हूँ' कविता डॉ. अंबेडकर के मानवतावादी विचारों को चित्रित करती है-

‘मैं, अंबेडकर हूँ
जिंदा हूँ मैं उनमें
जो रखते हैं विश्वास
स्वतन्त्रता में, समानता में और बंधुत्व में।’²

सामाजिक न्याय और समानता की पक्षधरता में संतोष पटेल की कविताएं खड़ी हैं। अतः इस संग्रह की कविताओं की विषयवस्तु समाजोपयोगी है जिसमें व्यक्तिवाद के लिए कोई स्थान नहीं है। उनकी संवदेना का फलक उनके सृजन के निजी घरे से निकल कर गरीबों, मजदूरों, बेसहारों, दलितों, स्त्रियों और बाल मजदूरों तक व्याप्त है जिसका चित्रण उन्होंने अपनी कविता 'हाँ, मैं कवि हूँ' में किया है। वे निडर भाव से अपने कवि कर्म की स्पष्ट घोषणा करते हुए कहते हैं-

‘हाँ, मैं कवि हूँ- चारण नहीं
दरबारी नहीं
किसी दल का भोंपू भी नहीं
मैं कवि हूँ बेसहारों का
कचरे में भविष्य तलाशते बच्चों का
मैं मिथ्यावाचन की हाँ में हाँ नहीं मिलाता
झूठ पर स्वयं को नहीं जिलाता।’³

हिन्दी व्याकरण में आठ 'कारक' होते हैं और इन कारकों को प्रकट करने के लिए संज्ञा या सर्वनाम के साथ जो चिन्ह लगाए जाते हैं उनका प्रयोग बड़े ही सटीक ढंग से करते हुए कवि ने अपनी कविता 'कारक के चिन्ह' का सृजन किया है। यह कविता वंचित समाज के भीतर कारक के चिन्हों का अर्थात् शोषण के षड्यंत्र का बोध रचती है और उन्हें जागरूक कर ऐसे सकारात्मक स्वरों का निर्माण करती है जो कि चेतनायुक्त हैं। कविता का एक अंश देखिए-

‘कर्ता 'ने'
मतलब उन्होंने
जिन्होंने सदियों से खटमल की तरह
चूसा है खून और
पकड़ कर रखे हैं सारे अवसर
कर्म 'को'
अपने भाइयों और बिरादरी वालों को
करण 'से' समस्त सरकारी संसाधनों से’⁴

‘साहित्य की महत्ता’ नामक निबंध में पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि साहित्य में जो शक्ति छिपी रहती है, वह तोप, तलवार और बम के गोलों में भी नहीं पायी जाती। संतोष पटेल की कविताओं से गुजरते हुए इस शक्ति को महसूस किया जा सकता है जिसमें एक ओर शोषण, अन्याय और अपमान के प्रति आक्रोश है तो दूसरी ओर समतामूलक समाज की निर्मित की ललक है। इस दृष्टि से ‘लिखो साथियो!’ कविता को देखा जा सकता है। इस कविता में अंबेडकरवादी चेतना के दर्शन होते हैं जिसमें दीन-हीन भावना से ऊपर उठकर स्वाभिमान की भावना का साक्षात्कार है। कवि संतोष पटेल वंचित समाज को लिखने के लिए प्रेरित करते हुए कहते हैं-

“लिखो भाई कि कलम अब तुम्हारे हाथ आई है।
अपने इतिहास को करो जीवंत
जो अब तुमने ताकत पाई है।”⁵

लोकतन्त्र के संदर्भ में युवाल नोआ हरारी ने अपनी पुस्तक ‘21 वीं सदी की 21 सबक’ में लिखा है कि लोकतन्त्र अब्राहम लिंकन के इस सिद्धांत पर आधारित है- आप सारे लोगों को कुछ समय के लिए, और कुछ लोगो को सारे समय बेवकूफ बना सकते हैं, लेकिन आप सारे लोगों को सारे समय बेवकूफ नहीं बना सकते। अगर कोई सरकार भ्रष्ट है और लोगों के जीवन में सुधार लाने में विफल रहती है, तो पर्याप्त संख्या में नागरिक अंततः इस बात को समझ जाएंगे और सरकार को बदल देंगे। भारत एक लोकतान्त्रिक देश है जहां भारत के प्रत्येक नागरिक को समान रूप से मत देने का अधिकार प्राप्त है। कवि संतोष पटेल लोकतन्त्र की ताकत से भली-भांति परिचित हैं तभी तो वे अपनी कविता ‘हम किसी के मोहताज नहीं हैं’ में कहते हैं-

“यह लोकतन्त्र है दोस्तों
अब किसी के सिर पर ताज नहीं है
खुद बनाएँगे अपना अवसर
हम किसी के मोहताज नहीं हैं।”⁶

इस प्रकार उनकी कविताओं में शोषकों के विरुद्ध क्रांति का शंख नाद है। इस संदर्भ में शरण कुमार लिंबाले का कथन बड़ा ही सटीक जान पड़ता है- “शोषितों का पक्ष लेकर शोषकों के विरुद्ध नकार, विद्रोह और प्रतिशोध की भूमिका लेना ही तो दलित साहित्य का प्रयोजन है।”⁷

संग्रह की कविताओं में विचारों की तेज धार है जो कि शोषण की तमाम रस्सियों को काटकर वंचित समाज की मुक्ति का आवाहन करती हैं। साथ ही पाठक के मानस को प्रभावित कर उन्हें झकझोरने का प्रयास भी करती हैं।

संतोष पटेल एक संवेदनशील और सजग कवि हैं जो अपने आस-पास की घटित होने वाली घटनाओं को गहराई से महसूस करते हैं। उनकी कविताओं का जन्म अनुभव की कोख से हुआ है। संतोष पटेल की कविताओं में विचार तत्व कल्पना और भावना के सांचे में ढलता हुआ नजर आता है।

इस प्रकार उनकी कविता विचार से भावना की ओर उन्मुख है जो कि पाठक को विचार और भाव दोनों की दृष्टि से आंदोलित करने का उपक्रम करती है। एक ओर वह उसे मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित समाज की स्थिति पर सोचने पर मजबूर करती है तो दूसरी ओर उसके भीतर उनके प्रति संवेदना का संचार करने का प्रयास भी करती है।

कवि संतोष पटेल का विजन बहुत साफ है। उनकी प्रतिबद्धता में कहीं कोई धुंधलापन नहीं है। वे अपने को भक्त कहते हैं किंतु वे अंधभक्त नहीं हैं। वे स्वयं को ऐसे भक्त के रूप में चित्रित करते हैं जो किसी अज्ञात सत्ता का भक्त नहीं है अपितु इस जीवनदायनी प्रकृति का भक्त है, विज्ञान का भक्त है जो अंधविश्वास और पाखंड के आंखों पर पड़े पर्दों को हटा देता है। इसी प्रकार वह किसानों, मजदूरों और शहीदों का भी भक्त है। कवि उन तमाम लोगों का भक्त है जो अपनी मेहनत, लगन और ईमानदारी से अपना कर्म कर मानव जीवन के विकास में सहयोग करते हैं। वे ऐसे साहित्य के भक्त हैं जो अन्यायियों के कुकृत्य का भांडाफोड़ करते हो। जाहिर है उनके भीतर की यह चेतना ज्योतिबा फुले, डा० अंबेडकर, पैरियार आदि विचारकों से आयी है। 'हाँ! मैं भक्त हूँ' कविता से एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

“मैं भक्त हूँ विज्ञान का
जो पाखण्डों और अंधविश्वासों की छाती पर
दलता है मूंग
और मरता है जिसकी चोट से
पुष्यमित्र शृंग
तिल-तिल कर।”⁸

यह कविता भले ही मैं शैली में लिखी गई है, किंतु इस कविता में मौजूद विचार संपूर्ण वंचित समाज का मूल स्वर है। यह स्वर गुलाम का गुलामी के एहसास से फूटा है।

प्रेम मानव हृदय का सबसे खूबसूरत भाव होता है। कवि संतोष पटेल के लिए प्रेम की जो परिभाषा है वह दशरथ मांझी के प्रेम में प्रतिफलित होती है। उनके अनुसार प्रेमी तो मांझी जैसा होना चाहिए। वे मजनुँ, रांझा, फरहाद और देवदास जैसे प्रेमियों से ऊपर मांझी का प्रेम मानते हैं जिसे 'प्रेमी बनो तो मांझी जैसे' कविता में देखा जा सकता है-

“बनना है प्रेमी तो बनो
दशरथ मांझी जैसा...
इस प्रेम में है जिजीविषा
इस प्रेम में है समर्पण
इस प्रेम में है संघर्ष की ज्वाला
इस प्रेम में है स्वेद श्रम की ताकत
और इस प्रेम में है जज्बा कुछ कर गुजरने का।”⁹

देश के किसानों द्वारा भारतीय संसद द्वारा पारित तीन कृषि अधिनियमों के विरुद्ध जो आंदोलन किया गया था। वह कवि की संवेदना को आंदोलित कर उसे 'पिरान्हा' जैसी कविता लिखने पर मजबूर करता है। जहां सत्ताधारियों की शोषणकारी नीतियों पर तंज कसा गया है। इस प्रकार समसामयिक मुद्दे उनकी कविता के विषय बनते हैं। इस दृष्टि से 'दुष्कर्म', 'देशद्रोही', 'हद है कोरोना', 'परेशान हैं रंग भी' आदि कविताएं महत्वपूर्ण हैं। इसके अतिरिक्त 'बड़े हिसाब से आते हैं बड़े वाले', 'मोबाइल धरवा', 'यह बच्चा कौन है ?' आदि कविताओं में व्यंग्य का पुट मौजूद है।

समग्रतः कवि संतोष पटेल का यह कविता-संग्रह व्यवस्था की शोषणकारी नीतियों की अभिव्यक्ति है। जिसमें वर्चस्वशाली वर्ग को खुली चुनौती दी गई है। सही मायने में देखा जाए तो इस संग्रह की कविताएं बहुजन समाज के भीतर ऊर्जा का संचार कर उनमें चेतना जाग्रत करने का प्रयास करती हैं। अतः यह कविता-संग्रह शोषण की परंपरा के विरुद्ध एक समतामूलक दृष्टि का विकास कर भेदभाव रहित समाज का मॉडल प्रस्तुत करता है। साथ ही वंचित समाज में अधिकार की चेतना का संचार कर उन्हें आंदोलित करना उसका ध्येय रहा है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. जाति, स्त्री और साहित्य, प्रो. रजत रानी 'मीनू, एकेडमिक पब्लिकेशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2020, पृ. 100
2. कारक के चिन्ह, डॉ. संतोष पटेल, नवजागरण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष, 2022, पृ. 9
3. वही, पृ. 12
4. वही पृ. 10
5. वही, पृ. 31
6. वही, पृ. 17
7. डॉ० शरण कुमार लिंबाले, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, वाणी प्रकाशन, पृ० 111
8. कारक के चिन्ह, डॉ. संतोष पटेल, नवजागरण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष, 2022, पृ. 14
9. पृ. 18

उपनिषदीय आध्यात्मिकता

डॉ० अजित कुमार जैन
एसो० प्रोफेसर एवम् अध्यक्ष,
संस्कृत विभाग, एस०वी० कॉलेज,
अलीगढ़, (उ०प्र०)

अपना ज्ञान, आत्मज्ञान, एकत्व का ज्ञान, वास्तविक स्वरूप का ज्ञान इत्यादि सारे शब्द आध्यात्मिकता के अंतर्गत ही हैं। भारतीय उपनिषद् साहित्य का वर्ण्यविषय मुख्यतः ज्ञान, विद्या, अपरा विद्या, अलौकिक विद्या, आत्मनिष्ठ आदि विविध शब्दावली किन्तु भाव आत्मज्ञान ही है। भारतीय ज्ञान परम्परा का उत्स ही है—

“कोऽहम् ? कः म.प. धर्मः?”¹

यही भाव पुनः कथनीय है— “कोऽहम् ? कुतायातः ?” इसका भाव/जानने का भाव जागना ही आध्यात्मिकता है। इस प्रकार भारतीय चिन्तन में आध्यात्मिकता वस्तुनिष्ठ ज्ञान है।² इसी क्रम में यहाँ यह कहना भी समीचीन है कि वेदान्त (उपनिषद्) “सच्चिदानन्दानन्ता द्वयब्रह्म वस्तु। ततो अन्यत् सर्वम् अवस्तु” कहता हुआ संदेश दे रहा है कि ब्रह्म ही वस्तु है जो सत्य है और परिवर्तन रहित है जबकि इसके अतिरिक्त सब कुछ अर्थात् संसार सब मिथ्या है और परिवर्तनशील है, अतः अवस्तु है। सत्य ही कहा है— “ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।”³

आध्यात्मिकता का मार्ग पूर्णरूपेण सम्यक्तया उपनिषद् साहित्य में प्राप्य है। कठोपनिषद् में वर्णन है⁴—

“पराञ्चि खानि.....आवृत्त चक्षुरमृतत्वमिच्छन्”

अर्थात् कोई विरला ही है जो इंद्रियों को बाह्य व्यापार से निवृत्त कर लौटाता हुआ आत्म अमरत्व की इच्छा कर अंतराभिमुख होता है।

आत्म और परमात्म के एकत्व का भाव आने पर—

“तत्र कः मोह कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः”⁵

फिर मोह/शोक को स्थान ही नहीं है।

कठोपनिषद् का प्रसंग अत्यंत शिक्षाप्रद और यहाँ समीचीन है जहाँ नचिकेता ने यम से तीन वरदान माँगे। तब तृतीय वरदान के रूप में नचिकेता ने आत्मज्ञान/आत्मविद्या पाने की बात कही। तब यहाँ श्रेय और प्रेय मार्ग दो उपस्थित हैं किन्तु आध्यात्म ज्ञान की लालसा युक्त मोक्षमार्गी की भावना आत्मस्वरूप की ओर ही उन्मुख होती है।⁶

ईशावास्योपनिषद् में मंत्रस्रष्टा दिव्यज्ञान सम्पन्न ऋषि ने कहा है— “मा गृधः”⁷ अर्थात् संसारी प्राणी के अध्यात्म मार्ग के अनुसरण में सर्वाधिक वारक तत्व “लालच” है जो उसे सन्मार्ग में आने के बजाय उमार्ग अर्थात् संसार भ्रमण हेतु बाध्य कर देता है।

सत्, चित् और आनन्द रूप परम तत्व के साक्षात्कार में सत्य का आश्रय, सत्यनिष्ठता, सत्यवक्ता, सत्यान्वेषक सत्यदृष्टा हुए बिना कदापि संभव ही नहीं है। यह उल्लेख/मन्तव्य ईशोपनिषद् में प्राप्य है—

“हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।

तत्त्वं पूषन्नावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।”⁸

सत्य ही, प्रकारान्तर से, ब्रह्म का स्थान है। यह उद्घोष उपनिषद् साहित्य में सर्वत्र विद्यमान है—

“सत्यमेव जयते नानृतम्”⁹

उक्तञ्च अन्यत्र—

“सत्येन लभ्यस्तयसा ह्येष आत्मा”¹⁰

संसारसक्ति से दूर रहकर कर्म के प्रति जागरूकता का ही संदेश श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीमत् कृष्णचन्द्र भी अर्जुन को उपदेश माध्यम से दे रहे हैं—

“कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्”¹¹

बन्धनों, फल लालसा, आसक्ति, अकर्मण्यता आदि से बचने के बाद ही किए गये कर्म परमसत्ता के पाने का एकमात्र मार्ग है—

“कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छते समाः”¹²

विश्वविश्रुत श्रीमद्भगवद्गीता का “कर्मयोग” यह उद्घोष करता है—

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचरः।

आसक्तो ह्याचारकर्म परमाप्नोति पुरुषः।।¹³

आत्मस्वरूप की शाश्वत सत्ता का संकेत इस प्रकार दृष्टव्य है—

“नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि.....।”¹⁴

और कहा है¹⁵—

“हस्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम्।

उभौ तौ न विजानीतौ नायं हन्ति न हन्यते।।”

सारतः, इस शोधालेख के आलोक में यह कहा जा सकता है कि उपनिषद् साहित्य में मंत्र सृष्टा पूज्य ऋषियों/महर्षियों ने अपने दिव्य और अनुभूत ज्ञान से संसारी प्राणी को उस परम तत्व सत्य स्वरूपी ब्रह्म के साक्षात्कार हेतु संसारोन्मुख होने के स्थान पर आत्मोन्मुख होकर साधना/आराधना और सत्यनिष्ठ जीवन जीने की सलाह दी है। इस प्रकार उपनिषदीय आध्यात्मिकता वर्तमान भौतिकवाद से बचाने को एक सशक्त माध्यम है।

।।इति शम्।।

संदर्भ :

1. पं० आशाधर जी, सागार धर्मामृतम्।
2. ब्रह्मसूत्र शंकरभाष्य, सूत्र-2 (जन्माद्यस्य)
3. वेदान्तदर्शन
4. कठोपनिषद् अध्याय-2/वल्ली-प्रथम/श्लोक-1
5. ईशावास्योपनिषद्, श्लोक सं० 7
6. "श्रेयश्चाप्रेयश्च...." कठोपनिषद्- 1/2/1
7. ईशावास्योपनिषद्, श्लोक सं० 1
8. ईशोपनिषद्, श्लोक सं० 15
9. मुण्डकोपनिषद्
10. मुण्डकोपनिषद् 3/1/151
11. श्रीमद्भगवद्गीता- 2/47
12. ईशावास्योपनिषद्, श्लोक सं० 2
13. श्रीमद्भगवद्गीता- अध्याय 3, श्लोक सं० 19
14. श्रीमद्भगवद्गीता
15. कठोपनिषद्- 1/2/19

शिक्षक—शिक्षा की चुनौतियाँ एवं सुझाव

डॉ० सुधा राजपूत

एसो० प्रोफेसर शिक्षक—शिक्षा विभाग,
श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़

सारांश:—

यह सर्वविदित है कि शिक्षक किसी भी राष्ट्र का निर्माता होता है। योग्य शिक्षकों के लिये उच्चकोटि की शिक्षाव्यवस्था की जरूरत है जो किसी उत्तम कोटि के शिक्षण संस्थानों में ही सम्भव है। शिक्षक—शिक्षा की गुणवत्ता को कायम रखने के लिये विभिन्न शिक्षा आयोगों ने अपनी संस्तुतियाँ प्रस्तुत की हैं।

स्वायत्त संस्था के रूप में राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद ने 1993 से शिक्षक—शिक्षा की गुणवत्ता को बरकरार रखने के लिए कार्यरत रही है, बावजूद इसके वर्तमान समय में शिक्षक—शिक्षा कार्यक्रम (प्रशिक्षण) में अनेकों दोष विद्यमान हैं। जिनको आगे शोधार्थी द्वारा पत्र में उजगार किया गया है।

प्रस्तावना:—

शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य छात्र का सर्वांगीण विकास करना है, अर्थात् शिक्षा द्वारा छात्र का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास किया जाता है। इस प्रकार शिक्षा ही समाज की महत्वपूर्ण व्यवस्था है अतः प्रत्येक राष्ट्र को ऐसी शिक्षा व्यवस्था विकसित करनी चाहिए जो समाज में उपयोगी हो। अच्छी शिक्षा के लिये योग्य शिक्षकों की आवश्यकता है। योग्य शिक्षकों के लिये उच्चकोटि के शिक्षण संस्थानों की। सभी शिक्षक जन्मजात कुशल नहीं होते अतः शिक्षण कला में दक्षता एवं पूर्णता हेतु प्रशिक्षण आवश्यक है।

स्वतन्त्र होते ही हमारे देश में शिक्षा के प्रसार के लिए प्रयत्न शुरू किए। परिणामतः शिक्षकों की मांग बड़ी। शिक्षकों की पूर्ति के लिए शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थापना शुरू की गई जहाँ भावी शिक्षकों का निर्माण किया जाता है। शिक्षक—शिक्षा की गुणवत्ता को कायम रखने के लिए विभिन्न शिक्षा आयोगों ने अपनी संस्तुतियाँ प्रस्तुत की हैं। कुल मिलाकर शिक्षक शिक्षा का पर्याप्त प्रसार कर दिया गया इसकी सबसे बड़ी समस्या थी इसके उन्नयन की इसकी दशा में सुधार करने की, इसका स्तर ऊँचा उठाने की। अतः शिक्षक—शिक्षा कार्यक्रम (प्रशिक्षण) में अनेकों दोष विद्यमान हैं।

वर्तमान शिक्षक—शिक्षा की समस्याएँ:—

भारत में समय — समय पर गठित आयोगों तथा विश्वविद्यालय शिक्षा नीति आयोग (1948), शिक्षा आयोग (1952—53) शिक्षा आयोग (1964—65) और राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के द्वारा शिक्षक शिक्षा की खामियों का उल्लेख किये जाने के बावजूद भी स्थिति में आशानुरूप परिवर्तन नहीं हो सका है। जैसा कि शिक्षा की चुनौतियाँ एक नीति संदेश (1985) नामक दस्तावेज में कहा गया है कि शिक्षक शिक्षा भारत में नियोजित एवं संगठित नहीं है। शिक्षक शिक्षा की प्रमुख समस्याएँ निम्नलिखित हैं :—

1. छात्राध्यापकों के प्रवेश की समस्या :-

शिक्षक शिक्षा के प्रवेश की समस्या एक विकट रूप में शिक्षा विभागों के सम्मुख एक बाधा बनी रहती है। इसमें प्रवेश के लिये जो छात्र आते हैं वे शैक्षणिक योग्यता की दृष्टि से हीन होते हैं एवं उन्हें रोजगार नहीं मिल पाता है इससे शिक्षा का स्तर दिन-प्रतिदिन गिरता जा रहा है। अतः प्रवेश सम्बन्धी नियम कड़े किये जाये तथा बुद्धि परीक्षा एवं सामान्य ज्ञान आदि के द्वारा चयन कार्य सम्पन्न किया जाना चाहिए।

2. अनुपयुक्त पाठ्यक्रम :-

शिक्षक – शिक्षा संस्थाओं का पाठ्यक्रम अत्यन्त संकुचित, निर्जीव एवं पुराना है। प्रशिक्षण की अवधि में सैद्धांतिक पक्ष पर ज्यादा जोर दिया जाता है और अभ्यासात्मक पक्ष उपेक्षित रहता है। पाठयोजना की घिसी-पिटी परिपाटी अपनाई जाती है। प्रशिक्षण में अर्जित ज्ञान अध्यापकगण वास्तविक परिस्थितियों में प्रयोग नहीं लाते हैं।

3. सुयोग्य एवं अनुभवी अध्यापकों का अभाव :-

हमारे शिक्षा विभागों में ज्यादातर अध्यापक शैक्षणिक योग्यता, रुचि व अभिवृत्ति तथा अनुभव की दृष्टि से अनुपयुक्त है। इसके फलस्वरूप अध्यापक शिक्षा सम्बन्धी कार्यों को सुचारु रूप से सम्पन्न नहीं किया जाता है एवं सिर्फ खाना पूर्ति ही की जाती है।

4. स्वतन्त्र वातावरण का अभाव :-

शिक्षा विभागों एवं प्रशिक्षण विद्यालयों में आज भी छात्राध्यापकों को स्वतंत्र वातावरण प्रदान नहीं किया जाता है छात्र प्रायः चापलूसी करते रहते हैं तथा अध्यापक श्रेणी के भय से उन्हें डराते रहते हैं यह समस्या लगातार बल पकड़ती जा रही है।

5. सैद्धांतिक पक्ष पर अधिक बल :-

प्रशिक्षण की अवधि में सिद्धांत को ज्यादा महत्व दिया जाता है। कुछ शिक्षा विभागों व प्रशिक्षण संस्थाओं में तो शिक्षणम्यास केवल दो सप्ताह में पूरा कर दिया जाता है और इसको सिर्फ औपचारिक क्रिया मात्र समझा जाता है। अतः शिक्षा के व्यवहारिक पक्ष की पूर्णरूप से अवहेलना की जाती है।

6. पृथकता की समस्या :-

यह समस्या शिक्षक शिक्षा में तीन रूपों में व्याप्त है। प्रथम विश्वविद्यालय एवं कॉलिज के अन्य विभागों में पृथकता, दूसरे शिक्षा विभागों का माध्यमिक स्कूलों से अलगाव, तीसरा प्रशिक्षण महाविद्यालयों में प्राथमिक व माध्यमिक स्तरों में परस्पर सहयोग का अभाव पाया जाता है। इससे एक विभाग के अध्यापक दूसरे स्तर के अध्यापकों को हेय दृष्टि से देखने लगते हैं। यह शिक्षक शिक्षा हेतु बहुत अहितकर है। कोठारी आयोग ने इस समस्या को हल करने हेतु जोरदार सिफारिश की है।

7. व्यावसायिक प्रशिक्षण में सुधार की समस्या :-

शिक्षा विभागों के शिक्षकों की व्यावसायिक कुशलता में कमी होने से शिक्षा का स्तर निरंतर गिर रहा है। साथ ही साथ शिक्षण में प्रचलित कार्यक्रमों पर जोर दिया जाता है, वे अत्यंत परम्परागत एवं रूढ़िबद्ध हैं अतः व्यावसायिक शिक्षण को संजीव बनाना जरूरी है।

8. प्रदर्शनात्मक विद्यालयों का अभाव :-

शिक्षा विभाग की मान्यता का आधार विभाग से सम्बद्ध प्रदर्शनात्मक विद्यालय की सुविधा होना चाहिए। जिन विभागों के पास अपना शिक्षण विद्यालय नहीं है उन्हें मान्यता ही न दी जाये क्योंकि दिन

प्रतिदिन के शैक्षिक प्रयोगों तथा अध्यापन के कार्यों में कठिनाई होगी। बहुत कम शिक्षा विभाग ऐसे हैं जिनके पास अपना प्रदर्शनात्मक विद्यालय है जिस प्रकार विज्ञान विषय प्रयोगशाला के बिना नहीं पढ़ाया जा सकता ठीक इसी प्रकार अध्यापक शिक्षा के लिए प्रदर्शनात्मक विद्यालय है।

9. उचित निरीक्षण का अभाव :-

छात्राध्यापकों के अध्यापन के समय अध्यापक निरीक्षण कार्य करते हैं। इसमें प्रायः लापरवाही बरती जाती है। खानापूरी अधिक रहती है इस ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। निरीक्षण पूर्ण। वह पूर्णतया वस्तुनिष्ठ हो। सुझाव वास्तविक तथा ठोस हो और उनके द्वारा छात्राध्यापक के अध्यापन में उन्नति संभव हो। वास्तव में अध्यापन में सुधार अच्छे निरीक्षण पर निर्भर करता है। निरीक्षकों का दृष्टिकोण स्वस्थ होना चाहिए और वे छात्रों को नवीन विधियों के प्रयोग के लिए प्रोत्साहित करें।

10. शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम में प्रयोगात्मक अनुसंधान की कमी :-

शिक्षा में अनुसंधान अपेक्षित है इसके द्वारा नये अविष्कार एवं चिन्तन, मनन, सर्जन की क्षमताओं का विकास होता है शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम में अति अल्प अनुसंधान किये जाते हैं और जो किये जाते हैं उनका स्तर निम्न होता है। शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम को किसी व्यवस्थित अनुसंधान द्वारा उचित ढंग से करके नई खोजों पर बल दिया जाना चाहिए, जो वर्तमान शैक्षिक संस्थाओं में नहीं दिखता। यहाँ पर यह कहना उचितसंगत होगा कि योग्य प्रशिक्षक के अभाव में अन्वेषण कार्यों को वरीतयता नहीं दी जा रही है।

शिक्षण संस्थाओं में पर्याप्त सुविधाओं का अभाव :-

शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम के अन्तर्गत संस्थान संबंधी मानक एवं सुविधाओं को भी गौण कर दिया गया है। जिसके अभाव में छात्र-अध्यापकों का प्राशिक्षण कमोवेश प्रभावित हो रहा है। आज 50 प्रतिशत शिक्षण संस्थाओं के पास प्रयोगशाला, पुस्तकालय, अभ्यास विद्यालय, उपकरणों, कक्षा-कक्ष तथा संतुलित पर्यावरण एवं पाठयक्रियाओं के लिए जगहों की कमी देखी जा रही हैं। भला, उपर्युक्त सुविधाओं के अभाव में एक सर्वगुण सम्पन्न अध्यापक का निर्माण असम्भव है।

शिक्षक शिक्षा और सुधार सुझाव :-

शिक्षक शिक्षा से सम्बन्धित विभिन्न आयोगों, समितियों, नीतियों के सुझावों को यदि अब भी किसी तरह लागू कर सकें तो निश्चय ही इस क्षेत्र की तस्वीर कुछ और होगी।

1. सर्वप्रथम हमे वर्तमान भारतीय परिस्थिति के अनुकूल शिक्षक-शिक्षा के लक्ष्य को कुशलता, रुचि, मनोवृत्ति आदि व्यवहारगत उपलब्धियों के आधार पर निर्धारित करना चाहिये।
2. शिक्षक-शिक्षा की विभिन्न प्रकार की संस्थाओं के मध्य भी अध्यापकों का अदान-प्रदान अनेक मध्य पृथकता का अन्त करने के लिये आवश्यक है।
3. शिक्षक-शिक्षा संस्थानों के लिये यह भी आवश्यक है कि वह अपनी पुरातन छात्र परिषद को अधिकाधिक सक्रिय बनायें उनसे अधिकाधिक सम्पर्क पत्राचार या अन्य माध्यमों से बढ़ाया जाये और शिक्षा की विभिन्न समस्याओं पर मिलजुलकर बातचीत करायी जाये।
4. शिक्षक शिक्षा संस्थानों में राष्ट्रीय एवं स्थानीय वांछित विकास नहीं किया जा सका है। इस बीच शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में कई नई समस्याएं भी उठ खड़ी हुई हैं। यदि देखा व समझा जाए तो अब शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में विशेष अधिवेशन एवं संगोष्ठी की आवश्यकता नहीं है। सुझावों को कार्यान्वित किया जाना ही नितान्त आवश्यक है व इन सब समस्याओं का सबसे कारगर उपाय ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठा है यदि शिक्षा से जुड़े सभी व्यक्ति ईमानदार और कर्तव्यनिष्ठ हो जाएं तो कम साधनों से भी शिक्षा के उद्देश्यों को अधिक से अधिक प्राप्त किया जा सकता है।

निष्कर्ष :-

यदि शिक्षक-शिक्षा की समस्याओं के समाधान के लिए सुझाए गए उपायों पर तथ्यात्मक रूप से ध्यान दिया जाता है तो निश्चित रूप से शिक्षक-शिक्षा की शिथिलताओं को दूर कर योग्य, कर्तव्यनिष्ठ, निष्ठावान तथा राष्ट्र निर्माता अध्यापकों का निर्माण संभव हो सकेगा तथा भारत विश्व शिक्षा मंच पर महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकेगा।

संदर्भ :-

1. प्रो० रमन बिहारी लाल एवं डॉ० कृष्ण कान्त शर्मा: भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएँ, आर०लाल बुक डिपो, मेरठ
2. पी०डी० पाठक : भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा-2।
3. मालती सारस्वत : भारतीय शिक्षा का विकास और समस्यायें, रस्तोगी पब्लिकेशन शिवाजी रोड़, मेरठ।
4. गुप्ता, डॉ० एस०पी०: भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्यायें, शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद।
5. करिकुलम फ्रेमवर्क फार टीचर एजुकेशन : डिस्कशन डाक्यूमेन्ट (1996) एन०सी०टी०ई० नई दिल्ली।
6. कपूर, बीना एंड पाण्डेय (1998) शिक्षा के दार्शनिक आधार, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा-2।
7. सिंह एन०पी० (2003) शिक्षा के दार्शनिक आधार, मेरठ : आर लाल बुक डिपो।

छायावादी काव्य में नारी का उदात्त स्वरूप

गीता देवी

अतिथि प्रवक्ता, हिन्दी विभाग,
ज०ने०रा०म०, पोर्ट ब्लेयर, अ० तथा नि० द्वीप समूह

मनुष्य को अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व की अपेक्षा सदैव रही है क्योंकि व्यक्तित्व के विकास से ही व्यक्ति की अपनी और सामाजिक उपादेयता संभव है। हृदय और मस्तिष्क के सम्पूर्ण विकास पर उसके सामाजिक रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो सकते हैं, चाहे वह नारी हो चाहे पुरुष। यद्यपि पुरुष और नारी के हृदयगत और मानसिक विकास भिन्न है। इसी कारण ये दोनों एक दूसरे हैं।

नारी आदिम संस्कृति का उद्गम स्थल है, नारी पुरुष की प्रेरणा है और पुरुष संघर्ष का प्रतीक है। दोनों की भिन्न प्रकृति से ही परस्पर पूरकता और जीवन की पूर्णता संभव है। याज्ञवल्क्य ने कहा है - “जिस तरह चने अथवा सीप का आधा दल दूसरे से मिलकर पूर्ण होता है उसी प्रकार पुरुष के सामने का खाली आकाश नारी के साथ मिलने से पूर्ण होता है।”¹ अर्थात् पुरुष और नारी दो विरोधी नहीं, वरन् एक-दूसरे के पूरक तत्व हैं।

वैदिक और उत्तर-वैदिक काल के पश्चात् हमारे समाज की मौलिक व्यवस्थाएं रूढ़ियों के रूप में परिवर्तित होने लगीं थीं जिसके फलस्वरूप स्त्रियों में लज्जा और ममता के गुणों को उनकी दुर्बलता समझकर पुरुष ने उनका मनमाना शोषण करना आरम्भ कर दिया। पुरुषों ने शक्ति के लोभ में महिलाओं के पारिवारिक अधिकार तक छीन लिये। इन परिस्थितियों का परिणाम यह हुआ कि मध्य काल के हिन्दू समाज में महिलाओं की स्थिति एक दासी से अधिक नहीं रह गयी। सती प्रथा के प्रचलन, विधवा पुनर्विवाह पर प्रतिबन्ध, पर्दा प्रथा का प्रचलन एवं बहुपत्नी विवाह जैसी थोपी गयी सामाजिक व्यवस्था के कारण भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति बहुत नाजुक हो गयी। मध्ययुगीन “सामन्ती वातावरण में नारी भोग्य सम्पदा के रूप में ग्रहण की जाने लगी थी। नारी प्राप्ति हेतु युद्ध भी होने लगे थे। स्त्री किसी न किसी पुरुष के अभिभावकत्व में रहने लगी और उसके अधिकार कम होने लगे थे।”² प्राकृतिक गुणों से सम्पन्न, करुणा, ममता और त्याग की प्रतिमूर्ति नारी को समाज में कभी भी वह स्थान नहीं मिला जिसकी वह अधिकारिणी थी।

छायावादी साहित्यकारों ने नारी को एक सर्वथा नवीन दृष्टि से देखा। वह पूर्व की दृष्टियों से भिन्न होने के साथ-साथ नारी जाति को एक नवीन गरिमा और उसके अस्तित्व को एक नयी अर्थवत्ता प्रदान करने वाली थी। इन कवियों ने नारी को समस्त बन्धनों से

मुक्त करने तथा उसे समाज में सम्मानजनक स्थान देने का प्रस्ताव रखा। छायावादी काव्य में नारी निर्जीव सम्पत्ति मात्र नहीं रही, बल्कि इसमें उसकी इच्छा-आकांक्षाओं, सुख-दुखों की अभिव्यक्ति भी हुई। प्राचीन जर्जर मान्यताओं को समाप्त कर नवीन समतावादी धरातल पर उसकी प्रतिष्ठा की गयी उसके अधिकारों की ही चर्चा नहीं हुई, अपितु उसकी प्रणय लीला तक का खुलकर वर्णन हुआ।

छायावादी कालखण्ड राजनैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक तथा काव्यरूप की दृष्टि से जागृति का काल था। फिर भी काल्पनिकता, प्रकृति प्रेम के अतिरिक्त स्त्री विमर्श की दृष्टि से आदरणीय भाव प्रकट किया गया है और उसमें गुणों एवं मूल्यों का आधार माना गया है और वह इन समस्त गुणों के द्वारा पुरुष की उन्नति में सहायता प्रदान करती है---

" दया माया ममता लो आज

मधुरिमा लो अगाध विश्वास ।

हमारा हृदय-रत्न निधि स्वच्छ खुला है सदैव तुम्हारे पास ॥"³

वास्तव में हिन्दी साहित्य में छायावाद से पूर्व किसी भी युग में नारी को वो गौरव नहीं मिला, जो छायावाद में आकर नारी को दिया गया। इस युग में आकर नारी को दया के स्थान पर अपने अधिकार की माँग को उठाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस अधिकार की भावना ने स्त्री-पुरुष में समानता और स्पर्धा का भाव जगाया तथा स्त्री की शक्ति को जानने-समझने में सहयोग किया। डॉ० नामवर सिंह के अनुसार, "नारी के प्रति पहले जो दया का भाव था, वह बदल गया। इस युग में नारी ने पुरुष से दया के स्थान पर अपने अधिकारों की माँग की। इस अधिकार भावना ने नारी-पुरुष के बीच कहीं समानता का भाव पैदा किया, कहीं स्पर्धा का भाव और कहीं उसकी शक्ति स्वीकार का भाव। कुल मिलाकर भिखारिणी अब मानसिक रूप से स्वामिनी बनी।"⁴

छायावाद से पूर्व नारी पराजित एवं शोषित रूप में ही चित्रित की गई, उनकी मुक्ति की कामना एवं पीड़ा का यथार्थ चित्रण छायावाद में ही पाया जाता है। सुमित्रानन्दन पंत ने नारी के प्रति समाज में हो रहे शोषण का विरोध किया और उसे मुक्त करने की आवाज उठायी। वे नारी की वास्तविक सामाजिक स्थिति के प्रति चिन्तित हैं। वे चिन्तित हैं पुरुषों द्वारा नारी के किए जाने वाले दुरुपयोग एवं शोषण के प्रति इसका भाव वह अपनी 'नारी'नामक कविता में निम्न प्रकार व्यक्त करते हैं--

"हाय, मानवी रही न नारी लज्जा से अवगुंठित,

वह नर की लालसा प्रतिमा,शोभा,सज्जा से निर्मित ।

युग-युग की वंदिनी,देह की कमरा में निज सीमित,

वह अवश्य,अस्पृश्य विश्व को,गृह-पशु सी ही जीवित ॥"⁵

उनके काव्य में नारी में विश्वकल्याण की भावना पुरुषों से अधिक है। नारी का त्यागमय जीवन पुरुष की अपेक्षा अधिक प्रशंसनीय है। पंत समस्त जड़ परम्पराओं से नारी को मुक्त करना चाहते थे। उन्होंने मुक्त स्वर में कहा है---

“मुक्त करो नारी को, मानव चिर बन्दिनी नारी को,
युग युग की बर्बर कारा से जननी, सखी, प्यारी को।”⁶

इन्हीं भावनाओं का पोषण करते हुए युग-युग से उपेक्षित नारी को छायावादी कवियों ने अपनी कल्पना के माध्यम से ऊँचे स्थान पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। पंत के मतानुसार नारी को पुरुष के समान अधिकार प्राप्त नहीं होंगे तो मानव-जीवन के विकास का रथ आगे नहीं बढ़ेगा-

“नर-नारी दो भवनों में, हो बंटे क्षुद्र जिस जग में,
प्राणों के स्वप्न पथिक को, रुकना पड़ता पग-पग में।”⁷

सूर्यकान्त त्रिपाठी ‘निराला’ नारी को शक्ति के रूप में देखते हैं। उनका मानना है कि नारी में ही वह क्षमता है जिसकी भैरवी नृत्य से समस्त जड़ पुरातन परम्परा समाप्त हो जायेगी व मुक्ति के द्वार खुलेंगे-

“तोड़ो, तोड़ो, तोड़ो कारा
पत्थर से निकले फिर, गंगा-जल की पार्वती।
पुनः सत्य-सुन्दर शिव को संवारती
उर-उर की बनी आरती।।”⁸

निराला ने नारी में जहाँ पुरुष के मन को बरबस अपने आकर्षण में बाँध लेने की क्षमता देखी है वहाँ उसे लज्जा, शील, सामाजिक विभीषिकाओं की कारा में स्वयं बंद पाया है। वह स्वाभिमान से भरी प्रेयसी भी है और पथ प्रदर्शिका भी।

छायावादी नारी मुक्ति का स्वरूप परम्परा की अपेक्षा स्वस्थ -सात्विक मनोवृत्ति का परिचायक है। आज के संघर्षशील यथार्थवादी युग में जीने वाली शिक्षित नारी को कवि भावना के प्रवाह में बहने वाली नहीं मानता। वह स्वाभिमान और समता की चाह में उद्वेलित नारी का मानसिक विश्लेषण भी करता है।

छायावादी कवियों ने नारी की दीनता, शोषण, कठोर श्रम का मानवीय धरातल पर वर्णन कर नारी मुक्ति की आकांक्षा व्यक्त की है। सूर्यकान्त त्रिपाठी ‘निराला’ ने नारी के पारस्परिक सौन्दर्यपरक कोमल अर्थ देने के साथ-साथ उन अर्थों की भी अभिव्यक्ति की है जिसे नारी ने अपने स्वाभिमान एवं परिश्रम से अर्जित किया है। उन्होंने इलाहाबाद के सड़कों पर पत्थर तोड़ती अभागी युवती को बिम्ब के माध्यम से मजदूर स्त्री के कठोर एवं थका देने वाले श्रम की कारुणिक अभिव्यक्ति देकर उसके श्रम के महत्व को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं-

“वह तोड़ती पत्थर।
कोई न छायादार पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार,
श्याम तन, प्रिय-कर्म-रत मन,
गुरु हथौड़ा हाथ, करती बार-बार प्रहार।
सामने तरु मालिका अट्टालिका प्रकार ॥”⁹

वहीं सुमित्रानन्दन पंत ने नारी-श्रम की महत्ता को निम्नवत् प्रतिष्ठा प्रदान की है-

“निज द्वन्द्व प्रतिष्ठा भूल, जनों के बैठ साथ,
जो बँटा रही तुम काम-काज में मधुर हाथ,
तुमने निज तन की तुच्छ कंचुकी को उतार,
जग के हित खोल दिए नारी के हृदय-द्वार।”¹⁰

ग्रामीण नारी के साथ होने वाले इन शोषणों के विरुद्ध सशक्त स्वर छायावादी युग की कविता में सुनाई देते हैं। ग्राम्य युवती की दयनीय दशा का यथार्थ अंकन सुमित्रानन्दन पंत ने इस प्रकार किया है-

“दुखों में पीस दुर्दिन में घीस
जर्जर हो जाता उसका तन।
ढह जाता असमय यौवन धन।
बह जाता वह तट का तिनका
जो लहरों में हंस खेला कुछ क्षण।”¹¹

छायावादी काव्य में भारतीय विधवा नारी की दुर्दशा का भावपूर्ण चित्रण करते हुए उनके प्रति होने वाले अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाई गयी है। ‘दीपशिखा’ की इन पंक्तियों में विधवा नारी का करुण एवं हृदय विदारक चित्र द्रष्टव्य है-

“वह इष्ट देव के मंदिर की पूजा सी
वह दीप-शिखा-सी शान्त भाव में लीन,
वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति रेखा सी,
वह टूटे तरु की टूटी-लता-सी दीन
दलित भारत की ही विधवा है।
वह दुनिया की नजरों से दूर बचाकर,
रोती है अस्फुट स्वर में,
दुःख सुनता है आकाश धीर, निश्चय समीर।”¹²

महादेवी वर्मा ने नारी के हृदय में बसी हुई पीड़ा एवं उसकी करुणापूर्ण परतंत्रता का चित्रण कर मुक्ति की आकांक्षा व्यक्त की है-

“विस्तृत नभ का कोई कोना, मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही उमड़ी कल थी मिट आज चली।”¹³

छायावादी कवि नारी की सार्थकता जीवन के सुन्दर समतल में प्रवाहित होना बताते हैं। साथ ही उसे यह प्रेरणा देने हैं कि अपनी स्मित रेखा से संधि पत्र लिखे। यह आदर्श संस्कृति के रंग में रंगी हुई प्रत्येक भारतीय नारी के जीवन के लिये उपादेय है और यही नारी मुक्ति का एक रूप और नारी मुक्ति की कामना भी है-

“आँसू से भीगे अंचल पर, मन का सब कुछ रखना होगा,
तुमको अपनी स्मित रेखा से, यह संधिपत्र लिखना होगा।”¹⁴

जयशंकर प्रसाद नारी की छवि को संसार के सौंदर्य और सुख का मूल कारण मानते हैं। कवि स्थूल सौंदर्य के स्थान पर भाव-सौंदर्य की ओर अधिक झुक जाता है-

"मैं भी भूल गया हूँ कुछ हाँ स्मरण नहीं होता, क्या था!

प्रेम, वेदना, भ्रांति या कि क्या? मन जिसमें सुख सोता था!
मिले कहीं वह पड़ा अचानक, उसको भी न लुटा देना;
देख तुझे भी दूँगा तेरा भाग, न उसे भुला देना! ”¹⁵

वास्तव में छायावादी कवि की नारी कल्पना ही नैसर्गिक है। “कवि की प्रेयसी स्थूल पार्थिव रूप की राशि नहीं है वरन् प्रकृति के संचित कोष से निर्मित नैसर्गिक सौंदर्य की प्रतिमा है।”¹⁶ कवि प्रकृति की इस सुषमा में खो जाता है और तन्मय होकर समूचे प्रकृति का मानवीकरण करने लग जाता है। यह मानवीकरण छायावादी कवियों की सामान्य विशेषता है। प्रसाद के काव्य में प्रकृति का यह मानवीकरण बहुत ही उदात्त रूपों में व्यंजित हुआ है। ये तो प्रकृति से इतने अधिक तादात्म्य का अनुभव करने लगते हैं कि उसे पुकार -पुकार कर चेतावनी देने में भी नहीं चूकते-

“फटा हुआ था नील वसन क्या
ओ यौवन की मतवाली।
देख अकिंचन जगत लूटता
तेरी छवि भोली-भाली!”¹⁷

प्रसाद ने ‘कामायनी’ में श्रद्धा के रूप में नारी का एक बहुत ही सौम्य, सरल और अकृत्रिम सौंदर्य चित्रित किया है, जिसमें कहीं कोई बनावट न होकर भी सब कुछ स्पष्ट और गंभीर है-

“यों सोच रही मन में अपने, हाथों में तकली रही घूम ;
श्रद्धा कुछ-कुछ अनमनी चली, अलके लेती थीं गुल्फ चूम।”¹⁸

छायावादी कवियों ने नारी को पुरुष की प्रेरक शक्ति के रूप में स्वीकार किया। उनकी नारी दया, क्षमा, करुणा, प्रेम जैसे गुणों से सम्पन्न है और श्रद्धा की पात्र भी। 'कामायनी' की ये पंक्तियाँ सम्पूर्ण नारी जाति के लिए चरितार्थ हैं-

“नारी! तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पग तल में,
पीयूष स्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में।”¹⁹

छायावादी अपनी भावना की मुक्ति और आकांक्षा की पूर्ति की कामना तो रखते थे , किन्तु समाज में उन्हें वह स्वतंत्रता उपलब्ध नहीं हो पा रही थी। कामना और निषेध की टकराहट से जो बोध पैदा हुआ , उसकी मार्मिक अभिव्यक्ति प्रसाद के 'आँसू' काव्य-संग्रह की इन पंक्तियों में दृष्टिगोचर होती है-

“चातक की चकित पुकार, श्यामा ध्वनि सरल रसीली
मेरी करुणार्द्र कथा की, टुकड़ी आँसू से गीली।”²⁰

मन, भावना और विचार के स्तर पर ही सही , छायावादी एक नयी समाज व्यवस्था का निर्माण करना चाहते थे। यह काम पूर्व की स्थापित सामाजिक व्यवस्था का विध्वंस किए बिना सम्भव नहीं था। प्राचीन रूढ़ियों का विध्वंस और नयी समाज -व्यवस्था का निर्माण इन दोनों ही बातों को हम छायावाद में पाते हैं। तभी तो पंत कहते हैं 'दुरत झरो जगत् के जीर्ण पत्र'। स्पष्ट है कि जीर्ण पत्रों के झरने की आकांक्षा रखने छायावादी नयेपन का आह्वान करते हैं।

अनेक विद्वानों ने छायावाद में स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह और पलायनवाद एवं निराशावाद का प्राधान्य माना है , परन्तु डॉ० रामविलास शर्मा ने इस धारणा का खण्डन करते हुए कहा है - “क्या जीवन से परागमुख कोई भी व्यक्ति ऐसी सुंदर पंक्तियाँ लिख सकता है? क्या स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह कहने से उस ठोस जीवन -आकांक्षा की व्याख्या की जा सकती है। निराला सब कुछ नया चाहते हैं। पुराना कुछ भी उन्हें स्वीकार्य नहीं।”²¹

इस नयी रोशनी में छायावादियों ने नारी को देखा , तो वह एक अपूर्व अश्रुपूरित और अर्थवत्ता से युक्त दिखी। यही नयापन चारों प्रमुख छायावादियों में अलग -अलग रूपों में दृष्टिगोचर होता है। 'कामायनी' में जयशंकर प्रसाद की नारी भावना की प्रवक्ता बनी श्रद्धा कहती है-

छायावाद में नारी सौन्दर्य का पुंज है और प्रेरणा का स्रोत भी। जयशंकर प्रसाद कृत 'कामायनी' की 'श्रद्धा' तथा सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' कृत 'तुलसीदास' की 'रत्नावली' ऐसी ही नारियाँ हैं जो पुरुष की प्रेरक शक्ति को उजागर करती हैं। “पंत के उच्छ्वास में किसी परिणत विरही का ताप नहीं , बल्कि अनुभवहीन युवक की प्रथम विरह -व्यथा का उद्गार है।

यह उच्छ्वास बाल-बादल की तरह अभी-अभी उठा है, साथ ही वह 'सरल' और 'अस्फुट' भी है। अभी उसे अपने व्यथा का पूरा-पूरा बोध भी नहीं है। इसीलिए उसमें युवा-सुलभ प्रगल्भता नहीं है, बल्कि उसके स्थान पर किशोर संकोच है। यही वजह है कि यह प्रणय अस्फुट रूप में अभिव्यक्त हुआ है।" कवि 'निराला' कुरूपता में भी सौन्दर्य देख लेते हैं और पत्थर तोड़ती मजदूरनी का सौन्दर्य वर्णन "श्याम तन, भर बँधा यौवन, नत नयन, प्रिय-कर्म-रत-मन। कह कर करते हैं। सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के नारी मुक्ति की कामना पर प्रकाश डालते हुए डॉ० वल्लभ दास तिवारी लिखते हैं- "निराला ने नारी में जहाँ पुरुष के मन को बरबस अपने आकर्षण में बाँध लेने की क्षमता देखी है वहाँ उसे लज्जा, शील, सामाजिक विभीषिकाओं की कारा में स्वयं बंद पाया है। वह स्वाभिमान से भरी प्रेयसी भी है और पथ प्रदर्शिका भी।"²²

नारी-स्वतंत्रता का सबसे मौलिक और निर्णायक प्रदर्शन प्रेम और विवाह में उसकी अपनी इच्छा के चुनाव में प्राप्त होता है। अगर वह इस मामले में स्वतंत्र नहीं है तो वास्तव में वह स्वतंत्र नहीं है। नारी के प्रति छायावादी कवि के दृष्टिकोण का यह सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू है। छायावाद युग के कवियों ने अनुभव किया कि मूल प्रश्न नारी-स्वाधीनता का है। प्रश्न विवाह का नहीं, प्रेम का है, बंधन का नहीं, मुक्ति का है। यदि विवाह में बंधन है तो चाहे वह विधवा-विवाह हो अथवा कुमारी का दोनों का आग्रह व्यर्थ है।

आधुनिक युग के प्रारम्भिक चरणों में जाति-भेद, धर्म-भेद, सम्प्रदाय-भेद अधिक था। इसलिए व्यक्ति की स्वतंत्रता का मूल्य बहुत कम था। समाज के जीवन में एक ठहराव आ गया था। यही ठहराव सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश में सड़न पैदा कर रहा था। छायावादी भावधारा तथा विचारधारा ने इस सांस्कृतिक स्थिति को पहचाना था। उसने समाज में वंदनीय नारी को दयनीय रूप में देखा। नारी के उत्पीड़न को भी देखा। छायावादी कवियों ने नारी के महत्व को स्वीकार किया तथा जो सदियों से तिरस्कृत थी, जिन्हें केवल भोग्या मात्र समझा जाता था, उन्हें इष्टदेव के मंदिर की पूजा सी पवित्र कहा तथा अपमान के पंक और वासना के पर्यक से ऊपर उठाया।

छायावादी कवियों ने काव्यगत रूढ़ियाँ तोड़ीं, पुरानी मान्यताओं को ध्वस्त किया और नया का सृजन किया। नैतिक मर्यादाओं और बन्धनों को तोड़ा चाहे वे सामाजिक हों या राजनैतिक या धार्मिक। पाखंड, बाह्याडम्बर के प्रति विद्रोह का स्वर फूटा और मर्यादावाद के बन्धन तोड़ दिये गये। इसके कारण काव्य अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर सका।

हिंदी साहित्य के छायावादी युग की प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित कवियत्री महादेवी वर्मा की गद्य एवं पद्य की रचनाओं से उनके व्यक्तित्व के दो पहलू देखने को मिलते हैं। उनकी कविता में रहस्यवादी प्रवृत्ति और दुखवाद की अधिकता है, भावुकता है। लेकिन गद्य में विचारक के रूप में उनका बौद्धिक पक्ष प्रखर है। 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएं', 'श्रृंखला की कड़ियाँ' जैसी रचनाओं के ज़रिए महादेवीजी ने भारतीय स्त्री-जीवन के अनदेखे

पहलुओं पर प्रकाश डाला है। इसी कारण , स्त्री विमर्श के संदर्भ में उनकी गद्य रचनाओं का मूल्यांकन आवश्यक हो जाता है। महादेवी नारी -चेतना की भारतीय परंपरा पर विचार करनेवाली अद्वितीय विचारक रही हैं। उनके विचार रेखाचित्रों से होकर श्रृंखला की कड़ियाँ बनकर हमारे सामने उभर आते हैं | 'श्रृंखला की कड़ियाँ' भारतीय नारी की समस्याओं का जीवंत विवेचन ही है।

महादेवी एक प्रभावशाली सक्रिय महिला कार्यकर्ती थीं पर विरोधी नारी अधिकारवादी नहीं थी। उन्होंने अपनी रचना 'श्रृंखला की कड़ियों' में भारतीय नारी की दयनीय दशा , उनके कारणों और उनके सहज नूतन सम्पन्न उपायों के लिए अपने सारगर्भित विचार प्रस्तुत किए हैं। इतना ही नहीं , उन्होंने उन विचारों पर स्वयं जी कर भी दिखाया है। महादेवी वर्मा को 'आधुनिक मीरा' भी कहा जाता है। उन्होंने अपनी कृति 'दीपशिखा' के लिए बहुत से वर्णन चित्रित किए हैं निम्न पंक्ति द्रष्टव्य है।

"भारतीय शास्त्रों में महिलाएं पुरुष की संगिनी रही है, छाया मात्र नहीं ।"²³

उन्होंने नारी जगत को भारतीय संदर्भ में मुक्ति का संदेश दिया। नारी मुक्ति के विषय में उनका विचार है कि भारत की स्त्री तो भारत माँ की प्रतीक है। वह अपनी समस्त सन्तान को सुखी देखना चाहती है | उन्हें मुक्त करने में ही उनकी मुक्ति है। मैत्रेयी , गोपा, सीता और महाभारत के अनेक स्त्री पात्रों का उदाहरण देकर वह निष्कर्ष निकालती हैं कि उनमें से प्रत्येक पात्र पुरुष की संगिनी रही है , छाया मात्र नहीं। छाया और संगिनी का अंतर स्पष्ट है - 'छाया का कार्य, आधार में अपने आपको इस प्रकार मिला देना है जिसमें वह उसी के समान जान पड़े और संगिनी का अपने सहयोगी की प्रत्येक त्रुटि को पूर्ण कर उसके जीवन को अधिक से अधिक पूर्ण बनाना ।

'नारीत्व एक अभिशाप है'

'हमारी श्रृंखला की कड़ियाँ' लेख उन्होंने साल 1931 में लिखा था। स्त्री और पुरुष के पति-पत्नी संबंध पर विचार करते हुए महादेवीजी ललकार भरे स्वर में सवाल उठाती हैं - अपने जीवनसाथी के हृदय के रहस्यमय कोने -कोने से परिचित सौभाग्यवती सहधर्मिणी कितनी हैं? जीवन की प्रत्येक दिशा में साथ देनेवाली कितनी हैं?

रामायण की सीता पतिव्रता रहने के बावजूद पति की परित्यक्ता बन गयी। नारी की नियति ऐसी क्यों ? महादेवीजी इसे नारीत्व का अभिशाप मानती है। 1933 ई. में उन्होंने नारीत्व के अभिशाप पर लिखा है - "अग्नि में बैठकर अपने आपको पतिप्राणा प्रमाणित करने वाली स्फटिक सी स्वच्छ सीता में नारी की अनंत युगों की वेतना सा कार हो गयी है। "सीता को पृथ्वी में समाहित करते हुए राम का हृदय विदीर्ण नहीं हुआ ।"²⁴

‘भारतीय संस्कृति और नारी’ शीर्षक निबंध में उन्होंने प्राचीन भारतीय संस्कृति में स्त्री के महत्वपूर्ण स्थान पर गंभीर विवेचना की है। उनके अनुसार मातृशक्ति की रहस्यमयता के कारण ही प्राचीन संस्कृति में स्त्री का महत्वपूर्ण स्थान रहा है , भारतीय संस्कृति में नारी की आत्मरूप को ही नहीं उसके दिवात्म रूप को प्रतिष्ठा दी है।

महादेवी आधुनिक नारी की स्थिति पर नज़र डालते हुए भारतीय नारी के लिए समाज में पुरुष के समकक्ष स्थान पाने की ज़रूरत पर जोर देती हैं। 1934 ई. में लिखित ‘आधुनिक नारी-उसकी स्थिति पर एक दृष्टि’ लेख में वे कहती हैं - "एक ओर परंपरागत संस्कार ने उसके हृदय में यह भाव भर दिया है कि पुरुष विचार, बुद्धि और शक्ति में उससे श्रेष्ठ हैं और दूसरी ओर उसके भीतर की नारी प्रवृत्ति भी उसे स्थिर नहीं करने देती।"²⁵

महादेवी अपनी लेखनी से सजगता और निडरता के साथ भारत की नारी के पक्ष में लड़ती रहीं। नारी शिक्षा की ज़रूरत पर जोर से आवाज़ बुलंद की और खुद इस क्षेत्र में कार्यरत रहीं। उन्होंने गांधीजी की प्रेरणा से संस्थापित प्रयाग महिला विद्यापीठ में रहते हुए अशिक्षित जनसमूह में शिक्षा की ज्योति फैलायी थी। शिक्षा प्रचार के संदर्भ में वे सुधारकों की अदूरदर्शिता और संकुचित दृष्टि पर खुलकर वार करती हैं। वह लिखती हैं - "वर्तमान युग के पुरुष ने स्त्री के वास्तविक रूप को न कभी देखा था , न वह उसकी कल्पना कर सका। उसके विचार में स्त्री के परिचय का आदि अंत इससे अधिक और क्या हो सकता था कि वह किसी की पत्नी है। कहना न होगा कि इस धारणा ने ही असंतोष को जन्म देकर पाला और पालती जा रही है।"²⁶

नारी में यौन तत्व को ही प्रधानता देनेवाली प्रवृत्तियों का उन्होंने विरोध किया | उनके अनुसार निर्जीव शरीर विज्ञान ही नारी के जीवन की सृजनतात्मक शक्तियों का परिचय नहीं दे सकता। उनका मानना है कि ‘अनियंत्रित वासना का प्रदर्शन स्त्री के प्रति क्रूर व्यंग ही नहीं जीवन के प्रति विश्वासघात भी है।

संदर्भ सूची--

1. आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी/ संपादक- जे.एम.देसाई/ पृष्ठ9
2. वही.../पृष्ठ 18
3. कामायनी /जयशंकर प्रसाद
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास /डॉ.नगेन्द्र/पृष्ठ342
5. नारी /सुमित्रानंदन पंत
6. वही...
7. वही.....

8. विधवा /सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला
9. वह तोड़ती पत्थर / सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला
10. /सुमित्रानंदन पंत
11. / सुमित्रानंदन पंत
12. दीपशिखा /महादेवी वर्मा
13. मैं नीर भरी दुःख की बदली / महादेवी वर्मा
14. आँसू/जयशंकर प्रसाद
15. कामायनी /जयशंकर प्रसाद
16. आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी/सम्पादक-जे.एम.देसाई/ पृष्ठ 12
17. कामायनी /जयशंकर प्रसाद
18. वही....
19. वही....
20. आँसू/ जयशंकर प्रसाद
21. भारतीय नारी:दिशा और दशा/आशारानी व्होरा/पृष्ठ 132
22. वही.../पृष्ठ 135
23. दीपशिखा कविता/ महादेवी वर्मा/
24. श्रृंखला की कड़ियाँ/ महादेवी वर्मा/ पृष्ठ 13
25. वही../पृष्ठ14
26. वही... /पृष्ठ18

तीसरी कसम : अधूरी प्रेम कहानी के दिवास्वप्न का कारुणिक अंत

डॉ० पंकज राय

सहायक प्राध्यापक

हिन्दी विभाग

जे०बी०एस०डी० कॉलेज, बकुची

बी०आर०ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

बॉलीवुड में कथा साहित्य पर आधारित अनेक फिल्मों का निर्माण हुआ है जो आज तक निरंतर जारी है। प्रेमचन्द की रचनाओं पर आधारित अनेक फिल्मों का निर्माण हुआ है। जब सवाक फिल्म बननी शुरू हुई तब प्रेमचंद ने फिल्मों के प्रति अपनी दिलचस्पी दिखायी थी। उनकी कहानी पर मोहन भावनानी ने 1934 ई० में 'मजदूर' नामक फिल्म का निर्माण किया था, जिसमें क्रांतिकारी चेतना होने के कारण प्रतिबंधित भी किया गया था। इनके प्रथम उपन्यास 'सेवासदन' पर नानूभाई ने 'वकील' नामक फिल्म का निर्माण किया था। सिनेमा और साहित्य में बुनियादी अन्तर यह है कि साहित्य सृजन में वैयक्तिकता की प्रधानता होती है जबकि सिनेमा के निर्माण में सामाजिक चेतना सर्वोपरि होती है। विमल मित्र के संश्लिष्ट उपन्यास 'साहब बीबी गुलाम' को गुरुदत्त एवं अबरार अल्बी ने सामाजिक अनुभूतियों के साथ जीवंत कर दिया। फिल्मों के निर्माण के लिए कहानी की जरूरत होती है, जिसकी पूर्ति साहित्य के द्वारा होती रही है। कुछ फिल्मों के निर्माण के लिए भी साहित्यिक रचना किया गया है। हिन्दी के रचनाकारों की रचनाओं पर भी फिल्मों का निर्माण होता रहा है। बासु भट्टाचार्य ने रेणु की कहानी 'मारे गए गुलफाम' पर 'तीसरी कसम' नामक फिल्म का निर्माण किया। मन्नु भंडारी की कहानी 'यही सच है' पर बासु चटर्जी ने 'रंजनीगंधा' नामक फिल्म बनाई। "साहित्य पढ़ते समय हम सिर्फ मनोरंजन की उम्मीद नहीं रखते हैं पर सिनेमा देखते समय हम मनोरंजन की बड़ी उम्मीद देखते हैं। सिनेमा में मनोरंजन को प्राथमिकता है—सिनेमा की पहली माँग है मनोरंजन।"¹ साहित्यिक रचनाओं में मनुष्य की अनेकानेक अनुभूतियों को कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की जाती है। समाज में मूल्यों की स्थापना करने में साहित्य की भूमिका अग्रणी होती है। सिनेमा कुछ उद्देश्यों को समाज के सामने प्रस्तुत करता है। सिनेमा न केवल मनोरंजन करती है बल्कि इसके द्वारा ज्ञान की भी प्राप्ति होती है। साहित्य और सिनेमा अनेक मामलों में एक-दूसरे के पूरक हैं। दोनों में जनजीवन, समाज आदि घटकों की ध्वनियाँ मौजूद होती है।

'तीसरी कसम' अर्थात् 'मारे गए गुलफाम' कहानी का आधार महुआ घटवारिन नामक लोकगीत है। इसी गीत का विस्तार 'तीसरी कसम' के कथानक में हो जाता है। संगीत की परख संवेदनशील एवं भावुक मनुष्य में सर्वाधिक होती है, इसीलिए रेणु की रचनाओं में लोकगीत निर्बाध रूप में मिलते हैं। रेणु की पात्रों के अन्तर्मन में भी वाद्ययंत्र विद्यमान हैं जो समय-समय पर झंकृत होता रहता है। "हिरामन ने आँख की कनखियों से देखा, उसकी सवारी... मीता... हीराबाई की आँखें गुजुर गुजुर उसको हेर रही है। हिरामन के मन में कोई अजान रागिनी बज उठी।"² उन्होंने अपनी रचनाओं को संवेदनशील बनाने के लिए लोकगीतों का बहुत ही सार्थक प्रयोग किया है। 'विदापत नाच' नामक रिपोर्टाज में भी अनेक लोकगीतों का प्रयोग किया गया है।

"अरे, चलु मन, चलू मन—ससुरार जइवे हो रामा कि आहो रामा

नैहिरा में अगिया लगायब रे — की।"³

'तीसरी कसम' में भी एक काफी मार्मिक लोकगीत है जो महुआ अपनी मरी हुई माँ को याद करके रो रही है।

"हूँ – ऊँ-ऊँ रे जाइनियाँ मैयो मोरी – ई – ई
नोनवा चटार्ई काहे नाहि मारालि सौरी-घर-अ-अ
एहि दिनवाँ खातिर छिनरो धिया
तेहूँ पोसलि कि नेनू-दूध उटगन।"⁴

यह लोकगीत काफी मर्मस्पर्शी भाव लिए है जिसमें एक बेटी जो मातृत्व की सुख छाया से वंचित है, उसकी पीड़ा छलक रही है। रेणु ने प्रसंगवश लोकगीतों की तरह लोकगाथाओं का भी भरपूर इस्तेमाल किया है। भारतीय संस्कृति के प्रमुख कारकों में लोकगाथाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। रेणु ने अपनी रचनाओं में लोकगाथाओं का व्यापक प्रयोग किया है। लोकगाथाओं के मिथक, फैंटेसी, विश्वास जैसी मान्यता भी इनकी रचनाओं में सर्वत्र विद्यमान है। 'तीसरी कसम उर्फ मारे गये गुलफाम' कहानी में लोकगाथाओं का समुचित प्रयोग किया गया है। हीरामन लोकप्रचलित नामलगर ड्यौढी की कथा सुनाता है। "देखा नहीं सुना है। राज कैसे गया, बड़ी हैफवाली कहानी है। सुनते हैं, घर में देवता ने जन्म ले लिया। कहिए भला देवता आखिर देवता हैं, है या नहीं? इन्द्रासन छोड़कर मिरतूभवन में जन्म ले ले तो उसका तेज कैसे सम्हाल सकता है कोई। सूरजमुखी फूलों की तरह माथे के पास तेज खिला रहता। लेकिन नजर का फेर, किसी ने नहीं पहचाना।"⁵

लोकगाथा जनमानस में व्याप्त सत्यकथा की तरह होते हैं, जिसे देखा किसी ने भी नहीं है, परंतु विश्वास सभी करते हैं। लोकगाथाओं के द्वारा मनुष्य के मन की गूढ वृत्तियों, समस्याओं, पीड़ा, आशा-विश्वास आदि को अभिव्यक्ति प्रदान की जाती है। लोकगाथाओं के प्रयोग के कारण रचनाओं में लोकतत्व जीवंत रूप में सामने आता है। इन कथाओं में वर्णित घटनाएँ मनुष्य की कोमल कल्पना को पंख लगा देते हैं, जो असहाय एवं पीड़ित अवस्था में जीवनयापन कर रहे हैं। रेणु ने महुआ घटवारिन, नामलगर ड्यौढी और गुलफाम तथा सब्जपरी की लोकगाथाओं का इस्तेमाल 'तीसरी कसम' कहानी में किया है। इन लोकगाथाओं के माध्यम से रेणु ने हीरामन और हीराबाई के बीच प्रेम की विभिन्न स्थितियों को अभिव्यक्त किया है। इन लोकगाथाओं का प्रतीकात्मक अर्थ भी है—जैसे नामलगर ड्यौढी में जन्म लेने वाले देवता ने पहले दोनों दंतार हाथी मारे, फिर घोड़ा, फिर पटपटांग अर्थात् धन-दौलत, माल-खजाना आदि सभी कुछ नष्ट हो गया, उसी तरह देवी सदृश हीराबाई भी हीरामन की सबकुछ उजाड़ गयी, उसकी सारी दुनिया वीरान हो गयी।

रेणु की रचनाओं में लोकजीवन के बहुरंगी चित्र उपलब्ध है। लोकजीवन की उत्सवधर्मिता, लोकनृत्य, लोकगीत, लोक कथाएँ आदि इनकी रचना के अभिन्न अंग बन गये हैं। इनकी रचनाओं में लोकरंग, गन्ध, इन्द्रिय-स्पर्श, स्थानीय शब्द, रोमानियत आदि भाव काफी गहरी है। वे बहुत बड़े 'किस्सागो' हैं, जिसमें हर घटना के पीछे कोई न कोई कहानी मौजूद है भले ही वह जनश्रुति के रूप में ही क्यों न हो। 'किस्सागोई' की प्रवृत्ति के कारण कथानक के विकास में घटनाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है। "कथा के भीतर कथा और अतीत के भीतर धड़कते हुए वर्तमान को रेणु बड़ी सहजता से प्रस्तुत करते हैं। कथा वचन की स्तरीयता में मौजूद जातीय संभावनाओं का उपयोग रेणु ने अपने आशय को व्यक्त करने के लिए किया है।"⁶

"महुआ घटवारिन की कथा प्रतीकात्मक बनकर हीराबाई और हीरामन के सम्बन्धों को वह संवेदनात्मक सघनता एवं व्यापकता प्रदान कर देती है जो लोक कथाओं के पात्रों में ही होती है।" 'तीसरी कसम' में महुआ घटवारिन की कथा प्रतीकात्मक रूप में समायोजित है, जो इसे न केवल आगे बढ़ती है बल्कि सघनता भी प्रदान करती है। महुआ ही हीराबाई के रूप में बदल गयी है, जिसे अभाव एवं गरीबी की मार के कारण सौदागर ने खरीद लिया है। हीरामन उस सौदागर के नौकर के समान है जो महुआ को अपना जीवन साथी बनाना चाहता है। लेकिन नियति को तो कुछ और ही मंजूर है। रेणु की संवेदनशीलता और लोक संस्कृति में व्याप्त मानवीयता का कलात्मक सौन्दर्य उपस्थित हो सका है। लोक संस्कृति की इतनी गहरी समझ बहुत कम साहित्यकारों में पायी जाती है।

रेणु ने लोकगीतों को दुख सहने की औषधि माना है। इन गीतों के कारण लोग अपने सारे दुख-दर्द भूल जाते हैं। 'तीसरी कसम' में हीरामन को छोकरा नाच के गीत में अपने भाग्य का दुख-दर्द स्मरण हो उठता है।

"सजनवा बैरी हो गये हमार।
चिठिया हो तो सब कोई बाँचे
भाग न बाँच कोय
हाय! करमवा बैरी हो गए हमार.....
सजनवा बैरी हो गए हमार!"⁸

रेणु की रचनाओं में लोकगीतों का दोहरा प्रयोजन है। ये गीत आम जनों की पीड़ा का मरहम तो है ही दूसरी तरफ ये लुप्त होती जा रही लोक कलाओं एवं संस्कृति का भी पोषक है। लोक संस्कृति की सजग चिंतन उनकी रचनाओं में प्रायः दिखायी पड़ती है। 'तीसरी कसम' में रेणु ने लुप्त होती जा रही लोकगीतों को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया है। "हिरामन का मन आज हल्के सुर में बँधा है। उसको तरह-तरह के गीतों की याद आती है। बीस-पच्चीस साल पहले, बिदेशिया, बलवाही, छोकरा नाचवाले एक-से-एक गजल-खेमटा गाते थे। अब तो भोंपा में भोंपू-भोंपू करके कौन गीत गाते हैं लोग! जा रे जमाना!"⁹ रेणु ने लोक संस्कृति के ठेकेदारों की जमकर आलोचना की है। पूँजीवादी दौर में लोक कला और लोक संस्कृति बाजार में बिकने की वस्तु बन गई है। लोक संस्कृति के सौदागर लोक कलाकारों की मजबूरी और भोलेपन का फायदा उठाकर हर प्रकार से शोषण करते हैं।

रेणु ने अनुभव की प्रमाणिकता और कटु यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए जनजीवन की भाषा का प्रयोग किया है। जिससे पात्रों के मन मिजाज के साथ-साथ उसके सोचने के मिजाज का भी पता चल जाता है। स्थानीय भाषा के प्रयोग के कारण अनुभव की सच्ची अभिव्यक्ति संभव हो पाती है। वातावरण और परिवेश के कारण अनुभव के संसार का निर्माण होता है। रेणु के पात्रों का अनुभव संसार और सौन्दर्य-बोध अद्वितीय है। "हिरामन परदे के छेद से देखता है। हीराबाई एक दिया सलाई की डिब्बी के बराबर आईने में अपने दाँत देख रही है।..... मदनपुर मेले में एक बार बैलों को नन्हीं चित्ती कौड़ियों की माला खरीद दी थी हिरामन ने। छोटी-छोटी नन्हीं कौड़ियों की पाँत।"¹⁰ हिरामन को हीराबाई के दाँतों की सुन्दरता के आगे सारी वस्तुएँ फीकी दिखाई पड़ती है। स्मृति की अंग होने के लिए जीवन में घटित घटनाओं की अनुभूति होनी चाहिए। हिरामन का सौन्दर्य-बोध उसके अनुभव संसार से उत्पन्न हुई है। रेणु ने वातावरण के चित्रण में सच्चाई के ब्यौरों को उपस्थित किया है। अनुभूति की प्रमाणिकता रेणु के लिए अनिवार्य तत्व है।

'तीसरी कसम' में हिरामन और हीराबाई परिस्थितियों एवं विवश रागात्मक संबंधों के बीच पीसते हुए दिखायी पड़ते हैं। मतलबी और व्यावसायिक दुनिया मानवीय संबंधों को किस प्रकार नष्ट कर देती है? इस कहानी में सफलतापूर्वक चित्रित हुई है। रेणु की तरह ही हीराबाई के पास उदात्त एवं विशाल हृदय है। हिरामन काला-कलूटा, हट्टा-कट्टा चालीस वर्षीय विधुर व्यक्ति है परन्तु उसका हृदय कितना सुन्दर है इसकी पहचान हीराबाई को है जो स्वयं समाज की निगाह में निरर्थक एवं बजारू है। जीवन की विषम परिस्थितियों के बीच भी उसे ज्ञात है "हिरामन सचमुच हीरा है।"¹¹ 'तीसरी कसम' में कल्पना और यथार्थ समान परिमाण में उपलब्ध है क्योंकि प्रेम में स्वप्न और यथार्थ का संतुलन आवश्यक होता है। हिरामन और हीराबाई में परस्पर प्रेम होने के बाद भी परिस्थितियाँ उन्हें एक नहीं होने देती है। "दाम्पत्य जीवन की आत्मीयता हीराबाई के लिए दुर्लभ है। हिरामन के लिए भी दुर्लभ हो चली है। दाम्पत्य दोनों के जीवन में अघटित है-अघटित कहानी के बाद भी रह जाता है। लेकिन दाम्पत्य का जो स्वप्न इस कहानी में घटित होता है और वह इस कहानी का मुख्य व्यापार है।"¹² इस परिघटना में यथार्थ-स्वप्न की त्रासदी घटित होती है। बैलगाड़ी की यात्रा में यह स्वप्न घटित होता है। हीराबाई का सौन्दर्य, अपनापन और आकर्षण कहानी को त्रासद बनाता है। 'बाजार' की चकाचौंध हीराबाई को अपने गिरपत से बाहर नहीं निकलने देती है, चाहे उसे कोई 'पतुरिया', 'नेमवाली रंडी' कहता है तो कहे।

उसका अद्वितीय सौन्दर्य एक बाजारू माल की तरह है जिसकी बिक्री हर शाम होती है। उसका सौन्दर्य केवल वासना को जगाने का उपकरण मात्र के अलावा और कुछ भी नहीं है। हीराबाई कोई 'परी' अथवा 'दैवी स्त्री' नहीं है बल्कि भोगवादी समाज में केवल स्त्री ही रह जाय तो बहुत बड़ी बात है। जीवन की विसंगतियाँ उसे स्त्री से उत्पाद के रूप में परिणत कर देती है जहाँ वह बिकाऊ वस्तु बनने के लिए अभिशप्त है।

रेणु ने हीराबाई के माध्यम से स्त्री की विसंगतियों को उद्घाटित किया है। समाज में कमजोर और असहाय स्त्री के शोषण के अनेक तंत्र विद्यमान हैं। बाजार में स्त्री की हैसियत वेश्या से अधिक नहीं रह जाती है, जहाँ वह तय कीमत पर बिकने के लिए अभिशप्त है। महुआ घटवारिन और हीराबाई के त्रासदी से इन विसंगतियों को समझा जा सकता है। मानवीय संवेदना की सघनता के बीच हिरामन और हीराबाई की प्रेम कहानी समाप्त हो जाती है। हिरामन को छोड़कर हीराबाई शहर लौट जाती है जिसके लिए भौतिक आवश्यकताएँ और बाजार की महत्वपूर्ण भूमिका है। इस प्रकार सांसारिक दृष्टिकोण से यह अधूरी प्रेम कहानी नितांत अधूरी नहीं है बल्कि इसने अपना अर्थ प्राप्त कर लिया है।

सन्दर्भ—सूची :

1. हंस (पत्रिका) मासिक, संपादक—राजेन्द्र यादव, फरवरी 2013 अंक, पृ० 118
2. तीसरी कसम अर्थात् मारे गये गुलफाम, रेणु रचनावली-1, पृ० 141
3. रसप्रिया, रेणु रचनावली भाग-1, पृ० 135
4. तीसरी कसम उर्फ मारे गये गुलफाम, रेणु रचनावली भाग-1, पृ० 149
5. वही, पृ० 143
6. आजकल (पत्रिका), विद्या सिन्हा का आलेख 'सोने की कलम वाला हीरामन', पृ० 7
7. तीसरी कसम उर्फ मारे गये गुलफाम, रेणु रचनावली-1, पृ० 148
8. वही, पृ० 144
9. वही, पृ० 144
10. वही, पृ० 142
11. वही, पृ० 141
12. फणीश्वरनाथ रेणु अर्थात् मृदंगिये का मर्म (सं०—भारत यायावर), विश्वनाथ त्रिपाठी का आलेख, पृ० 177

ऋग्वेदकालीन शिक्षा

डॉ० अजित कुमार जैन
एसो० प्रोफेसर एवम् अध्यक्ष,
संस्कृत विभाग, एस०वी० कॉलेज,
अलीगढ़, (उ०प्र०)

भारतीय ज्ञान परम्परा में वेदों को ज्ञानकी अक्षुण्ण निधि कहा गया है। यहाँ चिंतनीय विषय है कि ऋग्वेद काल में प्राचीन भारतीय शिक्षा की स्थिति कैसी थी और क्या थी?

वेदों का भाष्य आचार्य सायण ने सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया है। ऋग्वेद में प्रयुक्त 'शिक्षोः' पद के भाष्य में आचार्य सायण ने लिखा— 'शिक्षते दान कर्मणः अभिताफलप्रदाने शक्तुं शिक्षो'¹ अर्थात् सामूहिक अर्थ में दानशीलता से किया गया है।

वैदिक काल में यज्ञ, कर्मकाण्ड, अन्य पठनीय विषय, उपविषय इत्यादि थे। यहाँ मेरा स्पष्ट अभिमत है कि वैदिक शिक्षा/ज्ञान वैज्ञानिक रूप से सुसम्बन्ध है जो आज भी अकाट्य एवं प्रामाणिक है।

ऋग्वेद काल में शिक्षा श्रुत परम्परा से कही गयी है। आचार्य के श्रीमुख से शिष्य सुनते थे और पुनः पुनः उच्चारण कर कंठस्थ करते थे। यह श्रुत परम्परा कही गई है।

ऋग्वेद काल में शिक्षा की दूसरी परम्परा स्वाध्याय के द्वारा कही गई है। इस परम्परा में छात्र/अध्येता स्वतः ज्ञानाध्ययन में लीन होते थे और दक्षता प्राप्त करते थे। इस प्रकार, ऋग्वेद कालीन शिक्षा के प्रायः दो रूप प्राप्य हैं— (1) श्रुत परम्परा (2) स्वाध्याय परम्परा।

ऋग्वेदीय ज्ञान में ज्योतिषशास्त्र, अंतरिक्ष ज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, आयुर्विज्ञान, शल्यचिकित्सा अनेक बहुविध ज्ञान का उल्लेख यथावसर प्राप्त है।²

कन्याओं के लिए ऋग्वेदकालीन समाज शिक्षा के अवसर प्राप्त थे। उन्हें अनेक कलाओं नृत्य, काव्य, अभिनय, संगीत आदि को सीखने के प्रसंग प्राप्त होते हैं।³

उस समय नारियों के पूर्ण वैदुष्य के प्रसंग भी मिलते हैं। गार्गी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा आदि परम विदुषियों के नाम प्राप्य हैं। शैक्षिक दृष्टि से उच्च एवम् सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए वेदाध्ययन में रत होती थी।⁴

मैं यहाँ प्रसंगवशात् यह कहना समीचीन मानता हूँ कि वैदिक ज्ञान में नैतिकता सर्वोच्च थी। यह पाद पदे पदे प्राप्त है। वैदिक काल में परदाराभिगमन, बहुविवाह, वेश्यावृत्ति आदि की निन्दा की गई है।⁵

वैदिक शिक्षा में लालच, प्रमाद, नशाखोरी जैसे दुर्गुणों से दूर रहने का उद्घोष प्राप्त है। यथा— ईशावास्योपनिषद में कहा है⁶—

“ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्चित् जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्याविद्धनम्।।”

वैदिक उद्घोष है— “स्वाध्यायान्माप्रमदः”।

वैदिक कालीन शिक्षा सभी के लिए विकास और ज्ञान की बात कहती है। यह अमूल्य घोषणा ऋग्वेद में प्राप्त है⁷—

“संगच्छध्वं संबदध्वं सं वो मनांसिजा”

सारतः, यह कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति का मूलाधार “वसुधैवकुटुम्बकम्” का शाश्वत उद्घोष वैदिक शिक्षा में सर्वत्र व्याप्त है। यह वैदिक मंत्र यहाँ उल्लेख है⁸—

“समानी व आकृतिः समाना हृदयानि वः

समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहवसा।”

संदर्भ :

1. ऋग्वेद 3/19/3 सायणभाष्य
2. ऋग्वेद : 2/59/9, 1/6/2, 1/50/13 इत्यादि
3. वैदिक साहित्य का इतिहास— आचार्य बलदेव, पृ0 402
4. अथर्ववेद— 11/5/18
5. ऋग्वेद— 10/10/1-14, 10/102/5, 6, 8, 9
6. ईशावास्योपनिषद् 1
7. ऋग्वेद— संज्ञानसूक्त— 10/111
8. ऋग्वेद— 10/191/4

वर्चश्व को चुनौती देती चेतना से लैश कविताएँ

डॉ. मधुलिका बेन पटेल

सहायक प्राध्यापक

हिन्दी विभाग

तमिलनाडु केन्द्रीय विश्वविद्यालय, तिरुवारूर

हाल ही में 'कारक के चिन्ह' संतोष पटेल का नया काव्य संग्रह आया है। इनकी चिंता के केंद्र में एक ऐसा तबका है जिसे संगठित और सचेत करने की जरूरत अभी भी बाकी है। अपने हितों को साधने के लिए किसी खास वर्ग द्वारा सदियों से बुनी जा रही साजिशों से कवि को शिकायत है। वे दूसरे के अधिकारों को चतुरता से हथियाने वाली बर्बर ताकतों की शिनाख्त करते हैं और सहज मनुष्यता से भरे हुए कमजोर समझे जाने वाले तबकों को अपने ज़हन का हिस्सा बनाते हैं। समय के निरंतर और अधिक जहरीले होते चले जाने के बावजूद हमारी निश्चिंत बेरुखी और सब कुछ जानते हुए भी जन संघर्ष में न शामिल होने वाले बुद्धिजीवियों का कायर आचरण आज चिंता का विषय बना हुआ है। ऐसे समय में समाज की घिनौनी हरकतों पर कवि की पैनी नजर है। ब्राह्मणवादी मकड़जाल से मुक्ति के लिए वे बहुजन को अपने अधिकारों के प्रति सजग व सतर्क करना चाहते हैं। इस अनैतिक लंपट दौर में दहशतगर्दी से मुठभेड़ के लिए आमजन की चेतना को जगाने की बेहद जरूरत है। सामंतवादी, पूंजीवादी, बाजारवादी ताकतों के खिलाफ कवि अपना प्रतिरोध दर्ज कराते हैं। पाखंडों का विरोध करते हैं और तानाशाही के खिलाफ आक्रामक तेवर के साथ आवाज उठाते हैं। इनकी कविताएँ कल्पनालोक में नहीं भटकाती। ये खलिश वास्तविकता की उपज हैं। यहां कोई बनावट का भाव नहीं है। कवि अपनी बातों को सीधे ढंग से कहने के आदी हैं। इनमें सादगी से भरा बेबाकपन है।

फूले, अंबेडकरवादी चिंतन पर आधारित इनकी कविताएं अतीत और वर्तमान की सामाजिक राजनैतिक सांस्कृतिक आलोचना भी करती हैं। आज जबकि परंपरागत सामंती ब्राह्मणवादी दमन पद्धति लगातार नए-नए रूप धारण कर उत्पीड़ित समाज के लिए कठिन चुनौती बनी हुई है ऐसे समय में कवि दमन के सूक्ष्म और जटिल रूपों की पहचान कर विध्वंसकारी मनुष्यता को खतरे में डालने वाली प्रवृत्ति की आलोचना करते हुए स्वतंत्रता समानता और बंधुत्व की बात करते हैं। हमारे समाज और परिवेश की विकृतियों को कविता का विषय बनाते हैं – "मैं अम्बेडकर हूँ / जीवित हूँ उनमें / जो करते हैं 'जाति का विनाश' / और करते हैं अंतर्जातीय विवाह / मैं अम्बेडकर हूँ / प्राणवान हूँ उनमें / जो साथ देते हैं महिलाओं की प्रगति में / और उनके विकास के हैं साथी / मैं अम्बेडकर हूँ / चेतनशील हूँ उनमें / जिनमें शील है, प्रज्ञा है, करुणा और दया है / बुद्ध की भांति / मैं अम्बेडकर हूँ / जीवंत हूँ संविधान में / जो बांध कर रखता है / हम सभी को एक सूत्र में।"

इस व्यवस्था में सदियों से एक बड़े वर्ग को असम्मान का पात्र बनाया गया. वह दुःख, पीड़ा झेलता हुआ ब्राह्मणवादी व्यवस्था का शिकार बना हुआ है. मानव रक्तचूसक व्यवस्था को ध्वस्त किये बगैर उसकी मुक्ति संभव नहीं है. सड़ी-गली परम्पराओं, खोखली मान्यताओं को मिटाना आज बेहद ज़रूरी है. पीड़ित वर्ग की व्यथा, सामाजिक भेदभाव जनित पीड़ा को बड़ी इमानदारी से कवि ने अपनी कविता का विषय बनाया है. खास वर्ग के हिस्से आई वेदना, यातना तथा शोषक वर्ग की प्रवृत्ति और खांटी सच को वे अपनी कविताओं के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं. इनकी कविताएँ समाज में परिवर्तन का माहौल पैदा करने के साथ ही हमारे मन, मस्तिष्क पर भी अपना स्थाई प्रभाव छोड़ती हैं. वर्चस्वशाली वर्ग के गौरवमयी तिलिस्म को छिन्न-भिन्न करती सवर्णी बर्बरता और उनकी शतरंजी चालों को भी उजागर करती हैं. इनमें सदियों की पुरानी जड़ता, दबंगई के विरुद्ध तीव्र आक्रोश व्यक्त किया गया है. कवि ने इस अतार्किक, अमानवीय संकीर्ण समाज व्यवस्था में परिवर्तन के लिए खुलकर हल्ला बोला है - “कर्ता ‘ने’ / मतलब उन्होंने / जिन्होंने सदियों से खटमल की तरह / चूसा है खून और / पकड़ रखा है सारे अवसर / कर्म ‘को’ / अपने भाइयों और बिरादरी वालों को / करण ‘से’ / समस्त सरकारी संसाधनों से / सम्प्रदान के लिए / अपनी जातीय एकता बनाये रखने के लिए / अपादान ‘से’ / अलग करके दूसरों से / संबंध का के की / अपनों का अपनों के अपनों की / अधिकरण में पर / अपने संस्थानों / विश्वविद्यालयों / अकादमियों में / समस्त अपने हड़पे मंचों पर / जमे रहने की व्यवस्था है.”

दमनकारी शक्तियां कदम कदम पर रास्ता रोक हीनता बोध पैदा करने के लिए षड्यंत्र रचती हैं. इनसे जूझते हुए कुछ नया रचने के लिए दृढ़ आत्मविश्वास का होना बेहद ज़रूरी है. तमाम तरह के शोषण चक्र और उसको जीवित रखने तथा पोषित करने वाली जाहिल मानसिकता की बुनियाद पर वार करना उसे तोड़ने की लगातार कोशिश करना आज आवश्यक हो गया है. कवि समझौता नहीं बल्कि संघर्ष के कठिन पथ को चुनने की वकालत करते हैं. गुलामी के खिलाफ शोषण चक्र को तोड़ना चाहते हैं. उनकी कविताएं स्वाभिमान और मुक्ति के लिए संघर्ष की भाव भूमि तैयार करती हैं. हमारी संवेदनाओं को झकझोरती हैं. दूसरों का शोषण कर जीवन जीने वाले निकृष्ट परजीवियों को वे आईना दिखाते हैं. वर्णवादी, ब्रह्मणवादी, सामंतवादी व्यवस्था पर प्रहार करते हैं. तमाम संसाधनों पर जड़ जमा कर बैठे मठाधीशों को चेतावनी भी देते हैं. - “रखे रहो अपना मंच, माला, माइक / रखे रहो अपनी मचान / रखे रहो अपना छल ज्ञान / रखे रहो अपना धर्मग्रन्थ पुराण / है हमारे पास हमारी भाषा / है हमारे पास हमारा नृत्य / है हमारे पास हमारा गान / खुद हैं जो नकलची और बनते ज्ञानी / पर हमारे ज्ञान की नहीं है कोई सानी / क्या चित्रकारी, क्या लोकगान, क्या किसानी / दुनिया ने हमारी हैसियत मानी / यह लोकतन्त्र है दोस्तों / अब किसी के सिर पर ताज नहीं है / खुद बनायेंगे अपना अवसर / हम किसी के मोहताज नहीं हैं.”

सही मायने में साहित्य का काम आमजन के जीवन में परिवर्तन लाना उन्हें चेतनशील बनाना, प्रेरणा देना और भविष्य की राह को आसान बनाना है. संतोष पटेल ने कविता को यथार्थ की जमीन से

जोड़कर उसे और भी जीवंत तथा सशक्त बनाया है. वे सचेत चिंतक हैं. उनकी कविताएं गहन चिंतन का ही परिणाम हैं. ये किसी रहस्य का आवरण नहीं बनाती बल्कि आक्रोशित करती हैं, फटकारती हैं और सचेत भी करती हैं. इनकी कविता का मूल स्वर मनुष्यता है. जब मनुष्यता होगी तभी समाज में शांति, सद्भाव, आत्मविश्वास होगा और जीवन का अन्धकार मिटेगा. वे जीवन के जटिल संघर्षों को, राजनीतिक, सामाजिक विकृतियों को पहचानते हैं और उसे अभिव्यक्त भी करते हैं. अंधकार पर विजय प्राप्त के लिए लगातार संघर्ष को और अधिक धार देने में जुटे हुए हैं. मेहनतकश लोगों के जीवन संघर्षों और उनकी गहन पीड़ा को देख आहत होते हैं. आमजन को अपने परिवेश के प्रति सचेत और जागरूक करने की कोशिश करते हैं. उनका सशक्त लेखन इस बात का गवाह है. - “होता है जुल्म किसानों पर / हम बस चुप रहते हैं / होता रहता है शोषण मजदूरों का / हम बस चुप रहते हैं / होती रहती हैं बेआबरू स्त्रियाँ / हम बस चुप रहते हैं / खेल करता है सत्ता और सत्तासीन / तब भी हम चुप रहते हैं / बेदखल होते आदिवासी अपनी जमीं से / जल और जंगल से / फिर भी हम चुप रहते हैं / दुष्कर्म होता रहता है बच्चियों के साथ / पर हम चुप रहते हैं / हाँ हम जब बोलते हैं / तब होता है कोई प्रायोजित जलसा / या हो कोई साजिश हंगामा / हाँ जब टूटती है हमारी चुप्पी / तब हमारा बोलना / बन जाता है किसी के फायदे का हथियार.”

भारत में बड़े पैमाने पर किसान आत्महत्याएं कर रहे हैं. पूंजीवाद और भूमंडलीकरण के दौर में पाखंड बर्बरता का और अधिक विस्तार हुआ है. साहित्य आज वह नहीं रह गया जिसके बारे में प्रेमचंद ने कहा था कि वह राजनीति के आगे चलने वाली मशाल है. साहित्य में मूल्यों, सामाजिक सरोकारों की बात करने वाले को महत्व नहीं दिया जा रहा. यह दुखद स्थिति है. इस पर गंभीरता से विचार होना चाहिए. अगर हमारा साहित्य साधारण जन की समस्याओं से नहीं जुड़ता आम आदमी के जीवन संघर्ष से नहीं जुड़ता तो वह महज हवाई कलाबाजी ही कहा जाएगा. चिंता की बात है कि खेतिहर समाज श्रमिक बेरोजगारों का तिल तिल संघर्ष, जीवन संकट आज हमारे कवियों को समस्या के रूप में नहीं दिख रहा. मेहनतकश इंसानों के संकट और संघर्ष को देखने कि आज किसी को फुर्सत नहीं. जहां आमजन रोटी के लिए एक टुकड़ा जमीन और आत्म सम्मान के लिए कठिन संघर्ष कर रहा है वहीं लाभ के गणित में रमी पूंजीपतियों की हृदयहीन दुनिया संपूर्ण प्रकृति से सहजता, मासूमियत सोख उसे बंजर बनाने में लगा हुआ है. कवि संतोष पटेल अपनी कविताओं के माध्यम से जुल्म के खिलाफ आवाज उठाते हैं. समता, स्वतन्त्रता, बन्धुत्व की स्थापना के स्वर के साथ ही अधिकारहीन, श्रमशील वर्ग के वजूद की ये कविताएँ जुल्म के खिलाफ एक आवाज हैं. इनकी मारक क्षमता अद्भुत है - “नहीं सुनाई देती तुम्हें / किसानों की बात / उनकी वाज़िब मांग / उनका हक हुकूक / नहीं दिखाई देती / तुम्हें किसानों की तकलीफ़ / उनकी दर्द और परेशानी / उनकी आत्महत्या/उनकी मृत्यु / नहीं बोल सकते तुम / मूर्तिवत हो गये हो तुमलोग / मूर्ति तो लगते हो / किसान आन्दोलन के प्रणेता का / विश्व की सबसे बड़ी मूर्ति / नाम एकता की देते हो / पर काम क्या है तुम्हारा / किसानों को घोषित करना आतंकवादी / खिलस्तानी, पाकिस्तानी.”

आज आमजन के शोषण, दमन लूट की स्थितियों में बेतहासा विस्तार हुआ है. विचारों को खत्म करने की साजिश रची जा रही है. बाजार और मीडिया के मायाजाल ने शब्दों का आशय बदल दिया है. सच्चाई के उलट झूठ को स्थापित करने में पूरी कुब्रत लगा दी है. मन मस्तिष्क पर कब्जा करने की उनकी कोशिश लगातार जारी है. भेदभाव से भरी हुई समाज व्यवस्था के खिलाफ बोलने की जगह मौन बने रहना भी किसी न किसी रूप में उसका समर्थन ही है. सत्ता की चालबाजियों से वाकिफ कवि लिखते हैं - “हमें पता है कि तुम क्या क्या नाम दोगे / क्या क्या आरोप लगाओगे / हमें पता है कि तुम्हारा भोपू मीडिया / कितना सत्य बोलेगा /...वह जहर घोल रहा है / पूरे वातावरण में / वह ती कीटनाशक नहीं / मानवता का ही नाशक है.”

सामाजिक बदलाव में कविताओं की अहम भूमिका होती है. कविता और साहित्य आदमी को इंसान बनाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता आया है. आज ठहरे पानी की तरह सड़ी और दुर्गन्ध मारती ब्राह्मणवादी मानसिकता का इलाज करना बेहद जरूरी हो गया है. ऐसे में कवि संतोष पटेल वर्चस्वशाली सभ्यता और संस्कृति के लंबे इतिहास पर प्रश्नचिन्ह खड़ा कर कविता और उसके सौंदर्य बोध को नए रूप में चेतना से लैश कर हथियार की तरह प्रस्तुत करते हैं. वे कविताओं के माध्यम से समाज के बीच पैदा की गई गहरी खाईयों को पाटने की कोशिश करते हुए समता स्थापना के लिए बेचैन प्रतीत होते हैं. अपने समय की समस्याओं के पर्दाफास करने का साहस है उनमें. आत्मचिंतन करने के लिए बाध्य करती ये कविताएं श्रमशीलों के वजूद और जुर्म के खिलाफ दूर तक गूंजने वाली आवाज हैं. यह कृति हमारी सोच को एक नई दिशा में ले जाने की पहल करती है और कवि को एक क्रान्तिकारी, प्रतिबद्ध और समर्पित व्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करती है.

स्त्री विमर्श का नया फलक और उषाकिरण खान

डॉ. चन्दन कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर

विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग

जमालपुर कॉलेज, जमालपुर

मुंगेर विश्वविद्यालय, मुंगेर, बिहार

हिन्दी और मैथिली कथा साहित्य में समान रूप से गतिशील वरिष्ठ साहित्यकार उषाकिरण खान कथालोक में एक चमकीले नक्षत्र की भांति ऐसे समय में उदित होती हैं, जब उत्तर आधुनिकता के आयातित वाद के धमक से भारत की ग्रामीण कहानियाँ कथा - संसार से गायब हो रही थी। चूंकि भारत गाँवों का देश है और साहित्य के फलक से जब गाँव बेदखल हो रहा है तब उषाकिरण खान ग्रामीण भावबोध और ग्रामीण स्त्रियों की पीड़ा को अपने साहित्य में दर्ज करते हुए हिन्दी मैथिली कथा - संसार में प्रवेश करती हैं। उन्होंने अपनी कहानियों और उपन्यासों के माध्यम से अस्मितामूलक विमर्श को समग्रता से देखने की कोशिश करती हैं। वे सहज रूप से गाँव और शहर के बीच देशकाल की सेतु बन जाती हैं और साहित्याकाश की उस शून्यता को भरने की कोशिश करती हैं, जहाँ सदियों से ग्रामीण प्रश्न अपने हल के इंतजार में खड़े हैं। फणीश्वरनाथ रेणु और नागार्जुन की कथा परंपरा को आगे बढ़ते हुए उषा किरण जब गाँव के प्रश्नों को हमारे सामने रखती हैं, तब एक साथ ही वृद्ध विमर्श, स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, किसान विमर्श, बाल विमर्श, लोक संस्कृति विमर्श, श्रमिक विमर्श, निर्धन विमर्श, पर्यावरण विमर्श आदि के अध्याय एक-एक कर खुलते चले जाते हैं और साथ ही साथ गाँव और शहरी संस्कृति के बीच जो संवादहीनता एवं संवेदनहीनता बोध है, वह भी सहजता से सामने आ जाती है।

उषाकिरण का रचना संसार स्त्री को केंद्र मानकर तमाम विमर्शों और अस्मितामूलक प्रश्नों पर हमारा ध्यान आकृष्ट करता है। उन्होंने कहानी, उपन्यास, नाटक, बाल साहित्य, कविता, निबंध आदि के माध्यम से अपने समय की मुख्य चिंताओं को न केवल कलमबद्ध किया है, बल्कि उसके निदान के लिए लोकसांस्कृतिक हल भी निका ला है। उनकी सभी रचनाएं हमें यह प्रेरणा देती है कि हमारे समाज की विसंगतियाँ, समस्याएं और जटिलताओं का हल हम स्वयं ही कर सकते हैं न कि कोई विदेशी दर्शन हमारा मार्गदर्शन कर सकता है, जो हमारे समाज से परिचित ही नहीं है। उन्होंने विदेशी विचारों और स्थापित वादों के सामने समाज का वह तथ्य पेश किया है जिसका हल उस आयातित विचार में नहीं था। अगर उनकी रचनाधर्मिता के लोकधर्मी तत्व को देखें तब हमें इसका अहसास होता है कि उषाकिरण भारतीय वैचारिकी के क्षेत्र में अपने आप में एक मौलिक व्यक्तित्व हैं। अपने छः मैथिली उपन्यासों जिसमें 'अनुत्तरित प्रश्न' (1980), 'हसीना मंजिल' (1995), 'दूर्वाक्षत', 'भामती' (2008), 'पोखरी रजोखरि' (2016), 'मनमोहना रे' (2020) के माध्यम से उषाकिरण

स्त्री जीवन के हर पहलू का अध्ययन करती हैं, जो देखने में एकबारगी ऐसा लगता है कि क्षेत्रीय संदर्भों में रचा गया उपन्यास हो, किन्तु उसका प्रभाव समूचे स्त्री विमर्श की वैचारिकी को प्रभावित करता है। मैथिली में इनकी रचनाएं जिस भ्रमसपन के साथ घटनाओं का ताना - बाना प्रस्तुत करती हैं, उससे न केवल मैथिल समाज बल्कि पूरा भारतीय समाज जुड़ाव महसूस करता है। दूसरी ओर उषाकिरण के छः हिन्दी उपन्यासों की चर्चा करें तो 'फागुन के बाद' (1995), 'सीमांत कथा' (2001), 'रतनारे नयन' (1995), 'पानी पर लकीरें' (2008), 'सिरजनहार' (2011), और 'गई झूलनी टूट' (2011) उनकी बेहद महत्वपूर्ण कृतियां हैं। इन उपन्यासों में स्त्री का निःस्वार्थ प्रेम, दाम्पत्य का सुखद भाव, रिश्तों की टूटन, विछोह का घुटन, माँ - बेटे का संबंध, स्त्री - स्त्री का आपसी कलह और स्त्री - स्त्री का जुड़ाव जैसे मुद्दे हैं, जो अपने तरह से स्त्री विमर्श के खाँचों में कई बार फिट नहीं बैठते हैं।

बहरहाल मेरे शोध का विषय उषाकिरण खान की कहानियों से संबंधित है, इसलिए मैं उनकी कहानियों में स्त्री विमर्श के विविध आयामों और उनकी अलग परिधियों की तरफ सबका ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगा। उषाकिरण अपनी आठ कहानी संग्रहों के द्वारा कथा जगत में सक्षम उपस्थिति दर्ज करती हैं। उनके कथा - संग्रहों में 'विवश विक्रमादित्य' (1981), 'दूबधान' (1983), 'गीली पाँक' (1995), 'कासवन' (2000), 'जलधार' (2002), 'जनम अवधि' (2011), 'घर से घर तक' (2012) और 'खेलत गेंद गिरे यमुना में' (2020) अबतक की महत्वपूर्ण कृति है। इसके अलावा उनकी कहानियों की लोकप्रियता के कारण अलग - अलग प्रकाशनों ने कई संकलन निकाले गए, जो पाठकों द्वारा हाथों - हाथ लिए गए। इसमें 'लोकप्रिय कहानियाँ' (2011), 'संकलित कहानियाँ' (2015), 'मौसम का दर्द' (2016) और 'दस प्रतिनिधि कहानियाँ' (2017) उषाकिरण की चुनी हुई महत्वपूर्ण कहानियों का संकलन है। गौरतलब है कि उषाकिरण लगभग पिछले चालीस सालों से साहित्य सेवा कर रही हैं। डॉ गोपाल राय लिखते हैं - "उषाकिरण खान ने आठवें दशक के अंत में कहानी लेखन आरंभ कर दिया था। उनकी पहली कहानी 'आँखें स्निग्ध तरल और बहुरंगी मन' (1978) 'कहानी' पत्रिका में पहला कहानी - संग्रह 'विवश विक्रमादित्य' (1980) में पारिजात प्रकाशन, पटना से प्रकाशित हुआ।"¹ ध्यान रखने वाली बात यह है कि बाद में 'दूबधान और अन्य कहानियाँ' संग्रह में 'नीली चिड़िया' शीर्षक से प्रकाशित हुई। उनकी पहली ही कहानी स्त्री विमर्श के वैचारिकी से जुड़ती भी है और उससे विमुख राह भी लेती है। कहानी में श्रीमती चौधरी के व्यक्तित्व के बारे में लेखिका जो कहती हैं उससे स्त्री की मुक्तिकामी छवि का स्वरूप निर्मित होता जान पड़ता है, वे लिखती हैं - "क्या पर्सनैलिटी हैं श्रीमती चौधरी की भी। जब से इस कस्बे में आई है काया ही पलट दी है। कैसी तर्क बुद्धि और क्या व्यवहार है। सिर पर आँचल डालकर बड़े - बूढ़ों का मन जीत लिया। हमें हवेलियों की कैद से छुड़ा कर नए क्लब खोल कर बचा लिया। असीम क्षमता है उसकी भी, चाची जी की भी सहेली और हमारी भी अंतरंग, लायन्स क्लब से लियो क्लब तक सारे लोगों को लगता है वही सबसे ज्यादा निकट है उनके।"² किन्तु इस संदर्भ पर यदि हम गौर करें तो पाते हैं कि श्रीमती चौधरी

¹ भूमिका, संकलित कहानियाँ, सं - गोपाल राय, पृ. - 7

² आँखें स्निग्ध तरल बहुरंगी मन, उषाकिरण खान, संकलित कहानियाँ, सं - डॉ गोपाल राय, पृ. -

स्त्रीमुक्ति के प्रति सजग तो हैं पर वे पितृसत्ता से सीधे टकराव नहीं मोल लेना चाहती हैं। इसे इस रूप में भी समझ सकते हैं कि छोटे शहर या गाँव के परिवेश में जहाँ पितृसत्ता की दीवारों में स्त्रियाँ सहज ही कैद हो जाती हैं वहाँ इतना भी बहुत है। दूसरी दृष्टि से देखें तो उषा जी पर यह भी आरोप लगता है कि वे दक्षिणपंथी हैं और कुछ हद तक सामाजिक आदर्शों के दबाव में कई बार समझौता करती हुई भी प्रतीत होती हैं। इसी कहानी में जब कहानी की नायिका नव ब्याहता के रूप में पल्लू (जिसे वह भोलू कहती है) से ब्याही जाती है तो दोनों पति - पत्नी के बीच उद्दाम प्रेम के बिम्ब नजर आते हैं। नायिका कहती है - “भोला है पर कितना गहरा और कैसी उद्दाम है उसकी प्रेम तरंग कि ठीक आठ बजे सवेरे तैयार होकर सदर दरवाजे की चौड़ी सीढ़ी उतर कर दुकान की ओर जाता है.... मुंशी जी को बिठा, सबकी निगाह बचा कर ठीक नौ बजे पिछले दरवाजे से दाखिल हो जाता है।”¹ आगे जब यही नायिका अपने पति के दोस्त सत्येन के दैहिक छुअन को याद कर भावनात्मक रूप से कमजोर होती हैं तो उसके मानसिक व्यभिचार को बल मिल जाता है - “अभी तक उसका पति नहीं आया है। उसने नीली रोशनी का बेड लेम्प जला कर मरकरी ऑफ कर दिया। लेटते ही सत्येन एक छल्लाँग में उसके दिमाग पर हावी हो गया। कैसा है वह साहसी लड़का। उस दिन नाव पर बिल्कुल उसके साथ सटकर बैठा था। उस पर नाव से उतरते हुए महिलाओं के लिए पटरे लगा दिए गए थे, कदम तोल - तोल कर रखते हुए भी मिसेज शर्मा फिसल गई। शुक्र कि किनारा था। फिर तो मौका मिल गया। आगे बढ़कर उसने हाथ थाम लिया। वह देर तक, जब तक सुखी जमीन तक न पहुँच गई, हाथ थामे रहा था। जरूर कुछ लोगों ने इसके अंगूरी लबों का थरथराना देख लिया होगा, इसकी कसती हुई देह और लड़खड़ाती हुई चाल ने ही चुगली की होगी तभी तो दूसरे ही दिन से पल्लू भी सोशल वर्क में जाने लगा।”² व्यभिचार के लिए ललचाये मन को कभी सत्येन, कभी क्लब का साँवला अधिकारी और अंत में पल्लू के क्लब का अध्यक्ष नायिका के रातों की चैन हर लेता है। दरअसल नायिका को जिन तीन पुरुषों ने आकर्षित किया है, वह प्रेम तो नहीं ही है, बस प्रथम दर्शन का आकर्षण भर है। आमतौर पर पति - पत्नी के प्रेम संबंधों के साथ - साथ हमारा समाज किसी भी तीसरे रिश्ते की इजाजत नहीं देता है, इसलिए पल्लू उसके साथ सोशल वर्क में जाने लगा, जिससे पितृसत्ता को बल मिल जाता है। दूसरी बात ये है कि एक औरत के व्यभिचार के कारण भी स्त्री का अस्तित्व स्वयं कमजोर हो जाता है, जिसकी इजाजत स्त्रीवादी विचारधारा नहीं देती है। हाँ यदि स्त्री मुक्त है और किसी वैवाहिक बंधन में नहीं है या तलाकशुदा है तब उसकी स्वच्छंदता को स्त्रीवादी दर्शन का साथ मिल सकता है। मगर इस कहानी में जिस तरह नायिका पति के परिधि को लांघती है और उसे अंततः लायन्स क्लब का ग्रीक गॉड अफसर अपनी स्निग्ध आँखों की तरलता से आकृष्ट करता है जिससे उसका बहुरंगी मन एक अव्यक्त पुकार करता है - “तुम कहाँ हो ? कौन हो ?”³ नायिका की यह पुकार इतनी तीव्र होती है कि वह उस अध्यक्ष की यादों में इस तरह खो जाती है कि बिना अपने पति का इंतजार किए बगैर ही बेड स्विच ऑफ कर सो जाती है। इन घटनाओं के आधार पर जब हम इसके दूरगामी परिणाम के बारे में सोचते हैं तो भारतीय परिप्रेक्ष्य में (खासकर हिन्दी

¹ आँखें स्निग्ध तरल बहुरंगी मन, उषाकिरण खान, संकलित कहानियाँ, सं - डॉ गोपाल राय, पृ. - 82

² आँखें स्निग्ध तरल बहुरंगी मन, उषाकिरण खान, संकलित कहानियाँ, सं - डॉ गोपाल राय, पृ. - 84

³ आँखें स्निग्ध तरल बहुरंगी मन, उषाकिरण खान, संकलित कहानियाँ, सं - डॉ गोपाल राय, पृ. - 84

प्रदेश में) पितृसत्ता को आधार देनेवाली विवाह नामक संस्था खतरे में पड़ जाती है और इस तरह की परिस्थितियों से उपजी धारणा हमें यह सोचने को मजबूर करती है कि कहीं एक समय ऐसा न आए जबकि पुरोहितों द्वारा तय किए गए रिश्तों की अहमियत कम हो जाए और प्रणय केवल एक पूरा काम हो जाए।

इसी तरह लेखिका की बहुचर्चित कहानी 'मौसम का दर्द' भी इसी कथा पैटर्न पर चलती है। बल्कि यों कहें कि उषाजी के रचनाकार के विकास के साथ - साथ ही इस कहानी की घटनाएं पिछली वर्ण्य कथा से कई कदम आगे निकल जाती हैं। कथा के अनुसार एक ओवरसियर की नौकरी सुदूर पूर्व में कोशी क्षेत्र में लगती है, वही उसे अड़हुल नामक दलित स्त्री से प्रेम हो जाता है। चूंकि उस इलाके में कोई होटल वगैरह नहीं है इसलिए ओवरसियर के लिए मुखिया जी के यहाँ से अड़हुल के माध्यम से रोज खाना आता है। एक दिन जब गाँव में अचानक बाढ़ आ जाती है तो सभी लोगों को नाव द्वारा सुरक्षित स्थान पर पहुंचा दिया जाता है। अंत में उस डूबे हुए गाँव में केवल ओवरसियर और अड़हुल ही रह जाते हैं। दोनों के बीच हंसी - मजाक होता है और इसी क्रम में दोनों करीब हो जाते हैं। तदन्तर अड़हुलिया कहती है - "सच पूछिए तो हाकिम हमको बड़ा सोहा रहा है सबकुछ।"¹ यहाँ 'सोहना' बाढ़ का पानी और प्राकृतिक सुहावना मौसम तक सीमित नहीं है, बल्कि उस समय उसे जो ओवरसियर का साथ और स्पर्श मिल रहा था एवं पूरी प्रकृति का उद्दीपक रूप अड़हुल को सोह रहा था यानी अच्छा लग रहा था। आगे वह समग्र रूप में दोनों के प्रणय क्रीड़ा में परिणत हो जाता है। उस रात को दोनों प्रेमालाप करते हुए खुले आसमान के नीचे सो जाते हैं। लेखिका ने रात की घटना का विशद वर्णन नहीं किया है और घटना सीधे सुबह में परिणत हो जाती है। "भोरकवा आने पर नींद खुली। मेरे साथ अड़हुल चिपकी सोई थी निश्चिंत। उसके घने काले बिखरे केश मुंह पर छितरा आए थे। भरे - भरे होंठ तृप्ति के मुस्कान से आवेष्टित थे।"² लोग बाग ओवरसियर साहब को लेने आते हैं और फिर नाटकीय रूप से घटनाक्रम बदल जाता है। ओवरसियर को पता चलता है कि अड़हुल पहले से ही शादीशुदा है और शादी के दो वर्ष बीत जाने पर उसका पति उसे लेने आया है। पीहर जाने के पहले लगातार तीन दिन ओवरसियर के सामने ना आने वाली अड़हुल 'असीरबाद' लेने आती है। ओवरसियर अड़हुल की पिछले जीवन से बिल्कुल अपरिचित होते हुए उससे बड़ी व्यग्रता से मिलता है। उसे यह लगता है कि शायद वह पति और समाज के दबाव में जा रही है और इसलिए ओवरसियर उससे शादी की बात करता है एवं बाढ़ वाली रात की याद दिलाकर उसके और अपने प्रेम की दुहाई भी देता है पर अड़हुल कहती है - "हाय हाकिम, आप हमें जात बाहर करवाइएगा? जब दो साल की थी तभी बियाह हुआ, गवना हुआ, मेरा कमाह मरद है। उसको छोड़कर... । नहीं - नहीं आप अपने जात की लड़की से शादी कर लीजिए।"³ ओवरसियर के ये कहने पर कि "भूल जाओगी, जो उस रात हुआ" - अड़हुल पलटवार करती है - "अरे हाँ - हाँ - हाँ... हाय राम, राह चलते पियास लगे बाट - घाट के कुँ से पी नहीं ले आदमी पानी, की घर आ कर पानी पीने के सोच में हलकान होवे। रात का मसिम था आग और खड़ एक ठड़याँ हुआ लेस दिया। जाइए बाबू आप मर्द होकर तिरिया चरित्तर

¹ मौसम का दर्द , उषाकिरण खान, संकलित कहानियाँ, सं - डॉ गोपाल राय, पृ. - 90

² मौसम का दर्द , उषाकिरण खान, संकलित कहानियाँ, सं - डॉ गोपाल राय, पृ. - 90

³ मौसम का दर्द , उषाकिरण खान, संकलित कहानियाँ, सं - डॉ गोपाल राय, पृ. - 91

दिखाते हैं। असीरबाद दीजिए। राजी खुशी जाएं।”¹ इस कथा पर टिप्पणी करते हुए डॉ गोपाल राय कहते हैं - “ स्त्री - पुरुष का एक अनुभव व्यक्त हुआ है; है तो यह मात्र प्रसंग ही पर ऐसा प्रसंग जो नैतिक दृष्टि से वर्जित माना जाता रहा और कोई स्त्री इसे लिखे, इसकी उम्मीद नहीं की जाती थी। पर यह वर्जना टूटती दिखाई पड़ती है और प्रबुद्ध पाठक इस पर त्योंरियाँ नहीं चढ़ाता। यह बदलते दृष्टिकोण का परिचायक है।”²

यहाँ अगर हम गोपाल राय के कथन को विश्लेषित करें तो देखेंगे कि ओवरसियर को अड़हुल के शादीशुदा होने का पता नहीं था, उसे यदि मालूम होता तो शायद वह शारीरिक संबंध नहीं बनाता और उससे शादी की तो सोचता ही नहीं, आगे जब बात - बात में नायक को अड़हुल के शादीशुदा होने का पता चलता है तो वह ये सोचता है कि कहीं अड़हुल की शादी जोर जबरदस्ती तो नहीं हुई है, इसलिए वह उससे शादी करने की बात रखता है और अपने तरफ से ‘अवैध रिश्ते’ को ‘वैध’ बनाने की कोशिश करता है, पर अड़हुल उल्टे ही उसे कमजोर समझती है और उसपर व्यंग्य करते हुए उसे ‘तिरिया चरित्तर’ वाला कहती है। दरअसल अड़हुल को उससे प्रेम नहीं था, बल्कि वह तो बस अपना ‘पियास’ बुझाने के लिए उससे देह का रिश्ता बनाती है। उसे बाट - घाट के कुएं से पानी पीने में कोई परहेज नहीं है। वह घर पहुँचने तक हलकान नहीं रह सकती है। इस तरह देखें तो कहानी में लेखिका शायद स्त्रियों के छद्म नैतिक आचरण का पर्दाफाश करती हैं और दूसरी ओर बताती है कि ऐसी अधिकांश स्त्रियों को विजातीय विवाह की हिम्मत तो नहीं है पर वह सजातीय विवाह की संस्था को मान कर भी सेक्स की जरूरतों के लिए कथित नैतिकता के सीमा को लांघने से हिचकती नहीं है। इस तरह लेखिका अड़हुल के माध्यम से स्त्रीवादी पक्ष का अतिक्रमण करते हुए नए सिरे से ‘व्यभिचार’ शब्द की परिभाषा पर समाज को पुनर्विचार की प्रेरणा देती है।

आगे उषा जी के कथाकार के विकासक्रम को उनकी सबसे हालिया रचनाओं में देखें तो सन 2020 में ‘खेलत गेंद गिरे यमुना में’ नामक कथा - संग्रह की पहली ही कहानी ‘पीड़ा के दंश’ में संज्ञावती और विपिन के गृहस्थी में अनुषा नामक महिला आती है और विपिन और संज्ञा का दाम्पत्य प्रेम एक छत के नीचे ही अप्रासंगिक हो जाता है। अर्धे विपिन अपनी पत्नी संज्ञा से कहता है - “मैंने पूरा जीवन तुम्हारे साथ गुजार दिया। अब एक बार अनुषा के साथ सोना चाहता हूँ। तुम्हें कोई ऐतराज हो तो बताओ।”³ अनुषा के दाम्पत्य का भी यही हाल है। कहानी से ही हमें यह सूचना मिलती है कि “इसके पति को भी किसी संबंध पर ऐतराज करने की औकात नहीं है।”⁴ कहानी में ये सभी किरदार वैवाहिक रिश्ते में भी बने रहते हैं और अपनी सेक्स या ‘संभोग के आस्वादन की विविधता’ (Variety in teste of intercourse) की आकांक्षा को बाहर वालों से पूरा भी करते हैं। विपिन और अनुषा जैसे पात्रों को किसी एक औरत या आदमी के साथ आजीवन बंध कर रहना ऊब लगने वाला और एकरस होने जैसा लगता है। कहानी में ही संज्ञा की समानधर्मा शांता है, जो पति के प्रेम से बेदखल संज्ञा की पीड़ा बांटती है। शांता जब संज्ञा से विपिन के बारे में पूछती है कि

¹ मौसम का दर्द , उषाकिरण खान, संकलित कहानियाँ, सं - डॉ गोपाल राय, पृ. - 91

² भूमिका, संकलित कहानियाँ, सं - डॉ गोपाल राय, पृ. - 10

³ पीड़ा के दंश, खेलत गेंद गिरे यमुना में, उषाकिरण खान, पृ.- 12

⁴ पीड़ा के दंश, खेलत गेंद गिरे यमुना में, उषाकिरण खान, पृ.- 13

वह कहाँ है तो वह कहती है “हम साथ ही, एक ही घर में हैं।”¹ यहाँ यह बात हमें परेशान करती है कि एक घरवाली से जब घर में हो कर भी अपने पति को बाहरवाली से बांटने को मजबूर होती है तो बच्चों पर ऐसे उखड़े संबंधों का क्या असर होगा? इसके साथ ही सबसे बड़ा सवाल ये कि परंपरागत विचारों वाली एक ‘भारतीय औरत’ संझा मानसिक उत्पीड़न झेल कर जिस तरह ‘आँसू’ बहा रही है उसे किस विमर्श के खाने में दर्ज किया जाएगा ? क्या अनौपचारिक और अवैध सौतिया डाह को स्त्री की चिंताओं से जोड़ कर देखा गया है ? इन सब सवालों के बाद उत्तर आधुनिकता धमक से जिस तरह समाज बदल रहा है उस परिप्रेक्ष्य में स्त्रीवादी विमर्श अपनी किस प्रकार समीक्षा करेगा यह देखने वाली बात होगी।

निष्कर्ष रूप में हम ने जिन तीन कहानियों के आधार पर उषाजी की वैचारिकी को देखने की कोशिश की है, उसमें ‘आँखें स्निग्ध तरल बहुरंगी मन’ उनकी पहली कहानी है। दूसरी मध्यांतर समय की कहानी ‘मौसम का दर्द’ में उनके रचनात्मक कालावधि की मध्यकालीन रचना है जो स्वयं लेखिका की प्रतिनिधि कहानी होने के साथ - साथ सबसे अधिक पढ़ी गई है। तीसरे अंतराल की कहानी ‘पीड़ा के दंश’ है, जो उनकी बिल्कुल नई रचना है। ऊपर हमने कहानियों के विवेचन के दौरान यह तत्व स्थाई रूप से देखा है कि विवाह संस्था के प्रति प्रत्यक्ष विरोध तो कहीं नहीं है पर विवाह का कोई अर्थ भी नहीं रह जाता है। जिस परंपरागत रूढ़ि के आधार पर रिश्तों को सात जन्मों तक निबाहने का यत्न किया जाता है, वह एक ही जन्म के कुछ सालों में ही ऊब पैदा करने लगता है। उषाजी की पहली ही कहानी की नायिका अपने शयन कक्ष में पति के आने का इंतजार करते हुए पति के दोस्तों के छुआन और लायन्स क्लब के अध्यक्ष को याद करते हुए सो जाती है। दूसरी कहानी में स्त्री (अड़हल) शादीशुदा होने के बावजूद परपुरुष से शारीरिक संबंध बनाती है और उसके प्रेम के पीड़ा को बिना तरजीह दिए पति के साथ ससुराल चली जाती है। उन की हालिया रचना ‘पीड़ा के दंश’ तो और भी कई कदम आगे बढ़ कर विवाह संस्था को महत्वहीन बना देती है। इस तरह सभी क्रमागत चरणों में हम देखते हैं कि जैसे - जैसे उषाजी का लेखकीय व्यक्तित्व सांद्र और गठित होता है, वैसे - वैसे वह चिन्हित करती है कि विवाह के बजाय प्रणय को अधिक स्पेस मिल रहा है और उसके कारण बने बनाए ढांचे टूट रहे हैं। हालांकि स्त्री विमर्श अवैध संबंधों को सही नहीं मानता पर लेखिका ये नोटिस करती है कि समाज में प्रेम का ‘अवैध’ माने जाने वाला स्वरूप ही अधिक स्वीकृति पा रहा है, जो विमर्श के फलक को नए सिरे की ओर फैलाव देता है। और इस नए फलक पर आ कर हम कविवर आलोक धन्वा कि कविता ‘भागी हुई लड़की’ की पंक्ति से लेखिका का वैचारिक तालमेल पा सकते हैं, जबकि धन्वा कहते हैं -

“तुम
जो
पत्नियों को अलग रखते हो
वेश्याओं से
और प्रेमिकाओं को अलग रखते हो
पत्नियों से

¹ पीड़ा के दंश, खेलत गेंद गिरे यमुना में, उषाकिरण खान, पृ.- 13

कितना आतंकित होते हो जब स्त्री बेखौफ भटकती है
दूँढती हुई अपना व्यक्तित्व
एक ही साथ वेश्याओं और पत्नियों
और प्रेमिकाओं में !
अब तो वह कहीं भी हो सकती हैं
उन आगामी देशों में
जहाँ प्रणय एक काम होगा पूरा का पूरा ..”

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. भूमिका, संकलित कहानियाँ, सं - गोपाल राय, पृ. - 7
2. आँखें स्निग्ध तरल बहुरंगी मन, उषाकिरण खान, संकलित कहानियाँ, सं - डॉ गोपाल राय, पृ.- 83
3. मौसम का दर्द, उषाकिरण खान, संकलित कहानियाँ, सं - डॉ गोपाल राय, पृ. - 90
4. पीड़ा के दंश, खेलत गेंद गिरे यमुना में, उषाकिरण खान, पृ.- 12
5. भागी हुई लड़की, आलोक धन्वा

गोदान के काल्पनिक कथानक की वास्तविकता

डॉ रोशन रवि

विभागाध्यक्ष

हिंदी विभाग

केडीएस कॉलेज, गोगरी, खगड़िया

(मुंगेर विश्वविद्यालय, मुंगेर, बिहार)

गोदान किसान आंदोलन के दौर में लिखी गई एक यथार्थवादी रचना है। गोदान 1936 में लिखी गई है। उस समय हिंदुस्तान में किसान आंदोलन जोरों पर था, जमींदारों की स्थिति भी अच्छी नहीं थी, किसान अनेक समस्याओं से जूझ रहा था, दलित चेतना भी गाहे-बगाहे उभर कर सामने आ रही थी। यही कारण है कि तत्कालीन समस्याओं को कथानक के माध्यम से प्रेमचंद ने गोदान में अभिव्यक्ति प्रदान की है। भारतीय हिंदू समाज में जन्म से लेकर मृत्यु तक सोलह संस्कारों की चर्चा की जाती है। गोदान मृत्यु संस्कार से जुड़ा हुआ है, जिसका वर्णन गरुड़ पुराण में किया गया है। हिंदू समाज में यह मान्यता है कि मरने के बाद मनुष्य की आत्मा वैतरणी नामक नदी पार करती है और इस नदी को पार करने में मृत्यु के समय दान में दी गई गाय कर्षणों को दूर करने में मदद करती है। यही कारण है कि हिंदू समाज में गोदान का बहुत अधिक महत्व है। धार्मिक स्तर पर गोदान से जुड़ी हुई कथाएं काल्पनिक हैं तथा इसका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है, लेकिन यह संस्कृति भारतीय समाज की वास्तविकता से जुड़कर लोगों के वास्तविक जीवन का अभिन्न अंग बन चुका है। इस तरह गोदान से जुड़ी हुई काल्पनिक घटना समाज की वास्तविकता से जुड़ गई है।

गोदान के कथानक पर यदि विचार करें तो हम देखते हैं कि होरी अपना सामाजिक जीवन किसान के रूप में जीता है, जो उनके यथार्थ जीवन को निरूपित करता है, कथाकार प्रेमचंद इनकी कहानी को पृष्ठभूमि बनाते हैं। होरी के जीवन की जो कहानी है, वह साहित्य लेखन में काल्पनिकता को लिए हुए है। वास्तव में होरी नामक पात्र समाज में नहीं मिलेगा, लेकिन उनकी स्थितियों में जीवन व्यतीत करने वाले किसान जरूर मिल जाएंगे। साहित्य के स्तर पर यथार्थ और कल्पना का मेल होता है, जिसमें कथानक भले ही काल्पनिक लगे, लेकिन तथ्य प्रायः यथार्थ से जुड़ा हुआ होता है। प्रेमचंद ने साहित्य में एक अनूठा प्रयोग किया है, जिसमें काल्पनिक कथानक के माध्यम से यथार्थ की व्याख्या प्रस्तुत की है।

प्रेमचंद अपने आरंभिक दिनों के लेखन में आदर्शमुख कथा संसार रचते हैं, जो गोदान तक आते-आते यथार्थवादी रूप में परिणत हो जाती है। आदर्शमुख साहित्य में प्रेमचंद सामाजिक-

सांस्कृतिक समस्याओं को उठाते हैं तथा उसका आदर्शपरक समाधान देने की भी कोशिश करते हैं। प्रेमचंद्र ने सेवासदन, गबन, निर्मला, रंगभूमि, कर्मभूमि इत्यादि उपन्यासों में पहले समस्याओं को उठाते हैं और फिर उसके बाद उसके समाधान की भी कोशिश करते हैं। इस तरह प्रेमचंद्र के कथा साहित्य में आदर्श और यथार्थ का मिला जुला रूप उभर कर सामने आता है।

प्रेमचंद्र ने गोदान में होरी के माध्यम से कृषक जीवन के नग्न यथार्थ को चित्रित किया है। कृषक जीवन की पारिवारिक समस्या को यदि देखें तो पता चलता है कि होरी मरजाद का निर्वाह करने के लिए जहां कर्ज लेकर अपनी बड़ी बेटी सोना की शादी बड़े ही धूमधाम से करता है, वहीं दूसरी ओर मरजाद के निर्वाह और कर्ज की आपसी तालमेल की परिणति होरी को वहां लाकर खड़ा कर देती है, जहां उसे अपनी दूसरी बेटी रूपा की शादी अपनी उम्र के एक अधेड़ व्यक्ति से करनी पड़ती है। गोदान में जो सामाजिक समस्या है- वह मातादीन और सिलिया के प्रेम के रूप में उभर कर सामने आती है। मातादीन ब्राह्मण है और सिलिया चमारिन। सिलिया जब गर्भवती हो जाती है, तो मातादीन उससे विवाह करने से इसलिए मना कर देता है कि सिलिया छोटी जाति की है। इस बात को लेकर चमार और ब्राह्मण समाज के बीच संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसी को लेकर सिलिया के परिवार और समाज वाले कहते हैं कि यदि सिलिया ब्राह्मण नहीं बन सकती है तो तुम्हें चमार बनना पड़ेगा और इतना कहकर सिलिया के परिवार वाले मातादीन के मुंह में गाय की हड्डी ठूस देते हैं। यहां दलित चेतना का उभार स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

गांव से शहर की ओर पलायन की समस्या तथा शहर में मजदूरों की हड़ताल की समस्या को प्रेमचंद्र ने गोबर के माध्यम से दिखाया है। गोबर गांव को छोड़कर शहर की ओर पलायन कर जाता है। शहर में वह मजदूरों के हड़ताल में हिस्सा लेता है। इसके अतिरिक्त प्रेमचंद्र ने पति-पत्नी के संबंधों से जुड़ी हुई समस्या, पिता-पुत्र के संबंधों से जुड़ी हुई समस्या, शिक्षित वर्ग से जुड़ी हुई समस्याओं को भी अलग-अलग घटनाओं के माध्यम से दिखाने की कोशिश की है।

प्रेमचंद्र अपने साहित्य में काल्पनिक घटनाओं और पात्रों के माध्यम से ऐसी कथा संसार की रचना करते हैं, जो वास्तविक घटनाओं और पात्रों के बेहद करीब होते हैं। प्रेमचंद्र के कथा साहित्य को पढ़ते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि उसमें जो घटना घट रही है वह काल्पनिक घटना ना होकर हमारे आस-पड़ोस में घटने वाली वास्तविक घटनाएं हैं, उसमें जो पात्र हैं वह हमारे समाज के इर्दगिर्द ही मौजूद हैं और वो विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र हैं। गोदान उपन्यास में भारत के गांवों में प्रचलित आचार-विचार, व्यवहार, संस्कृति इत्यादि को उसके तमाम अच्छाइयों और बुराइयों के साथ चित्रित किया गया है। पाठकों को काल्पनिक कथानक में वास्तविक घटनाओं की अनुभूति प्राप्त होती है। समाज में अमीर-गरीब के बीच भेदभाव, जातिगत असमानता, किसानों की दयनीय स्थिति जिस तरह से मौजूद है, वह विकराल रूप धारण किए हुए है। सभी परेशानियों को झेलते हुए किसान अंततः मृत्यु के गाल में समा जाता है। पुलिस की नाइंसाफी से लोग परेशान हैं, समानता का अधिकार

मिलने के बावजूद भी वह असमानता का दंश झेलने को मजबूर है. अमीर-गरीब का भेदभाव, जातिगत असमानता, कृषक समस्या, पुलिस की नाइंसाफी का अनुभव पाठक गोदान को पढ़ते हुए करता है.

गोदान के काल्पनिक कथानक में वास्तविकता की अनुभूति होने के कारण ही इस उपन्यास की प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है और भविष्य में भी बनी रहेगी. गोदान के पात्रों के नामों पर गौर करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि आर्थिक विपन्नता और संपन्नता उनके नामों के द्वारा भी प्रकट होती है। जहां एक तरफ होरी, झुनिया, पुनिया जैसे नाम इसकी आर्थिक विपन्नता को ही प्रकट करते हैं, वहीं दूसरी तरफ उपाधियों से सुशोभित नाम जैसे झिंगुरीसिंह, दुलारी साहुआइन आदि जैसे नाम उसकी आर्थिक संपन्नता को ही प्रकट करते हैं। भारतीय किसानों की विवशता होरी के इस कथन से भी प्रकट हो जाती है- “जब दूसरों के पांव तले अपनी गर्दन दबी हो, तो उन पांव को सहलाने में ही कुशल है।” (गोदान-प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या-1)

स्वतंत्रता पूर्व रचित गोदान उपन्यास में समाजवादी और समतावादी समाज की स्थापना का स्वप्न झिलमिला रहा है। होरी जब कहता है- “क्या खाकर मोटा होऊं। मोटा होना बेहायाई। मोटे तो वह होते हैं, जिन्हें ऋण की चिंता होती है और ना मरजाद की। अकेले मोटे होने में क्या सुख, सुख तो इसमें है कि सब मोटे हों।” (गोदान-प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस इलाहाबाद) क्या होरी का यह कथन स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात लिखित संविधान द्वारा प्रदत्त समता के अधिकारों की वकालत नहीं करता है? क्या इस कथन में समतावादी समाज के स्थापना की चिंता नहीं दिखाई पड़ रही है? क्या इस कथन से समाज में व्याप्त असमानता पर प्रश्नचिन्ह नहीं लगाया जा रहा है? क्या इस कथन से समाज में व्याप्त ऊंच-नीच के भेद की झलक नहीं दिखलाई पड़ती है? क्या इस कथन से यह पता नहीं चलता है कि केवल पढ़े-लिखे लोग ही समानता की चाहत नहीं रखते हैं, बल्कि होरी जैसा अनपढ़ गरीब किसान भी समाज में समता लाने की चाहत रखता है। समानता के अधिकार की वकालत केवल गोदान में ही दिखाई नहीं पड़ता है, बल्कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात लिखे गए कई साहित्य में किसी ना किसी रूप में समता के अधिकार की वकालत की गई है। दिनकर के ‘कुरुक्षेत्र’ में समता के अधिकारों की बात की गई है-

“शांति नहीं तब तक, जब तक,
सुख-भाग ना नर का सम हो।
नहीं किसी को बहुत अधिक हो,
नहीं किसी को कम हो।”

(कुरुक्षेत्र-रामधारी सिंह ‘दिनकर’-राजपाल एंड संस प्रकाशन, संस्कारण-2011, पृष्ठ संख्या-23)

‘गोदान’में भारतीय किसान की विवशता पूरी वास्तविकता के साथ उपस्थित हुई है। होरी सामान्य भारतीय कृषक का प्रतिनिधित्व करता है, इसलिए उसमें अच्छाइयां भी हैं और कमियाँ भी. वह सत्य भी बोलता है और झूठ भी, उसमें मर्यादा बोध का भी भाव है और वह कभी-कभी चाटुकारिता

भी करता है, उसमें संयुक्त परिवार का मोह भी है। वह दिन-रात मेहनत कर फसल उगाता है, ताकि उसका और उसके परिवार का जीवन सुख से बीते, लेकिन ऐसा हो नहीं पाता है क्योंकि होरी फसल तो उगाता है, लेकिन उसका आर्थिक लाभ प्राप्त नहीं कर पाता है। होरी का आर्थिक शोषण तो प्रत्यक्ष रूप से कोई नहीं करता फिर भी वह तबाह रहा है। उसकी तबाही में किसी एक व्यक्ति का हाथ नहीं है, बल्कि पूरी व्यवस्था इसके लिए जिम्मेदार है। पूंजीवादी, सामंतवादी और इस तरह की तमाम शोषणकारी व्यवस्था ने होरी को तबाह कर उसे अंततः मृत्यु की परिणति तक ले जाता है। होरी ऋण जाल में उलझा हुआ एक ऐसा किसान है, जो इसमें लगातार उलझता ही चला जाता है। उसे कभी सुलझने का मौका ही नहीं मिलता है और अंततः होरी की मौत ही उसे इस उलझन से निजात दिला सका। होरी कहता है- “ऋण वह बिन बुलाया मेहमान है, जो आने के बाद जाने का नाम ही नहीं लेता।” (गोदान-प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद) होरी को प्रत्यक्ष रूप से कोई परेशान नहीं करता है, लेकिन उसकी पूरी जिंदगी परेशानियों को झेलते-झेलते ही गुजर जाती है। होरी अपनी पूरी जिंदगी भी कहां जी पाता है। वह तो आधी-अधूरी जिंदगी जी कर मौत का ग्रास बन जाता है, क्योंकि उसकी उम्र ही अभी क्या थी, हां यह बात अवश्य है वक्त और हालात ने उसे असमय ही उम्र दराज बना दिया था। होरी के साथ घटित घटनाएं क्या हमारे समाज के कृषक समुदाय के साथ घटित होने वाली वास्तविक घटना प्रतीत नहीं होती है? क्या आज भी हमारे समाज में किसान ऋण जाल में उलझे हुए नहीं हैं? क्या आज भी हमारे समाज में ऋण जाल में उलझा हुआ किसान आत्महत्या नहीं कर रहा है? इसलिए तो कहा जाता है कि प्रेमचंद के कथा साहित्य में काल्पनिक कथा के माध्यम से वास्तविकता को अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। प्रेमचंद का कथा साहित्य सच्ची घटनाओं का जीवंत दस्तावेज प्रतीत होता है। प्रेमचंद अपने पात्रों के माध्यम से जो विचार व्यक्त करते हैं, वह समाज के हित में नजर आता है- “जिस समाज में गरीबों के लिए स्थान नहीं, वह उस घर की तरह है जिसकी बुनियाद ना हो! कोई हल्का सा धक्का भी उसे जमीन पर गिरा सकता है। मैं अपने धनवान और विद्वान और सामर्थ्यवान भाइयों से पूछता हूँ, क्या यही न्याय है कि एक भाई तो बंगले में रहे, दूसरे को झोपड़ा भी नसीब ना हो? क्या तुम्हें अपने जैसे मनुष्य को इस दुर्दशा में देखकर शर्म नहीं आती? तुम कहोगे, हमने बुद्धि के बल पर धन कमाया है, तो क्यों ना उसका भोग करें। इस बुद्धि का नाम स्वार्थ बुद्धि है और जब समाज का संचालन स्वार्थ बुद्धि के हाथ में आ जाता है, न्याय बुद्धि गद्दी से उतार दी जाती है तो समझ लो कि समाज में कोई विप्लव होने वाला है।” (कर्मभूमि-प्रेमचंद, सुमित्रा प्रकाशन, संस्करण-2018, पृष्ठ संख्या-263)

प्रेमचंद युग के पूर्व हिंदी कथा साहित्य में कल्पना का इंद्रजालिक कथा संसार रचा जाता था। इस तरह के साहित्य में मनोरंजन के साथ-साथ उपदेशात्मक प्रवृत्ति भी दिखाई पड़ती है। प्रेमचंद पूर्व उपन्यासों में उपन्यासकार का एक ऐसा वर्ग था, जो तिलिस्मी ऐय्यारी उपन्यास की रचना करते थे जिसका वास्तविकता से कोई लेना-देना नहीं था। प्रेमचंद के आने के बाद हिंदी में तिलिस्मी ऐय्यारी उपन्यासों का दौर खत्म हुआ। उपन्यास लेखन में क्रमशः आदर्श से होकर यथार्थ की ओर यात्रा प्रारंभ होने लगी। प्रेमचंद के कथा साहित्य का विकास भी आदर्श से यथार्थ की ओर उन्मुख है। इसलिए प्रेमचंद के संपूर्ण कथा साहित्य को आदर्शोन्मुख यथार्थवाद से प्रेरित रचना की संज्ञा दी जाती है।

‘गोदान’ तक आते-आते प्रेमचंद आदर्श से पूरी तरह यथार्थ के धरातल पर पहुंच चुके थे। यही कारण है कि ‘गोदान’ में वास्तविकता का रंग गहरा है। इस संबंध में डॉ नगेंद्र लिखते हैं- “गोदान में सामान्य जीवन धारा की अत्यंत सशक्त अभिव्यक्ति हुई है।” (हिंदी साहित्य का इतिहास-संपादक डॉ नगेंद्र, मयूर पेपर बैक्स, पृष्ठ संख्या-575)

कृषक संस्कृति की समस्याओं को उसके जड़ में जाकर पकड़ने के कारण ही गोदान को कृषक संस्कृति का महाकाव्य कहा जाता है। गोदान में ना केवल कृषक समस्याओं को दिखाया गया है बल्कि इसमें जाति-पाति की समस्या, पूंजीवादी शोषण के रूप, महाजनी शोषण को भी बड़ी बारीकी से दिखाने की कोशिश की गई है। यही कारण है कि प्रेमचंद के उपन्यास को साहित्यिक उपन्यास की संज्ञा दी जाती है। बच्चन सिंह लिखते हैं- “प्रेमचंद पहले उपन्यासकार हैं, जिन्होंने हिंदी उपन्यासों को साहित्यिक उपन्यास का दर्जा दिया। फिर भी गोदान के पूर्ववर्ती उपन्यासों का ऐतिहासिक महत्व ही शेष रहेगा। अपनी खामियों के बावजूद गोदान भारत के किसानों के उत्पीड़न का ही प्रमाणिक दस्तावेज नहीं है, बल्कि मानवीय संवेदना को भी वह गहरे और घने अर्थ में उजागर करता है। इसलिए उसका साहित्यिक महत्व नहीं है, जितना किसी अन्य महत्वपूर्ण उपन्यास का हो सकता है।” (आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास-बच्चन सिंह, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या-202)

काल्पनिक कथा के माध्यम से भारतीय समाज की वास्तविकता को अभिव्यक्ति प्रदान करने के कारण ही गोदान को हिंदी कथा साहित्य में सर्वोत्कृष्ट उपन्यास की श्रेणी में रखा जाता है।

संदर्भ सूची :

1. गोदान - प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद।
2. कुरुक्षेत्र - रामधारी सिंह ‘दिनकर’ राजपाल एंड सन्स प्रकाशन, संस्करण-2011।
3. कर्मभूमि - प्रेमचंद, सुमित्रा प्रकाशन, संस्करण-2018।
4. हिंदी साहित्य का इतिहास-संपादक डॉ नगेंद्र, मयूर पेपर बैक्स।
5. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास - बच्चन सिंह, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

कबीर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

डॉ० सुरेन्द्र पाण्डेय

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, कूबा पी०जी० कॉलेज,
दरियापुर, नेवादा, आजमगढ़

कबीर हिन्दुओं के लिए "वैष्णव भक्त", मुसलमानों के लिए "पीर", सिक्खों के लिए "भक्त", कबीर पंथियों के लिए "अवतार", आधुनिक राष्ट्रवादियों के लिए "ऐक्यविधायक" तथा प्रगतिशील तत्वों के लिए "समाजसुधारक" थे।

आधुनिक मानव समाज में "मूल्यों के विघटन" का कष्ट सभी जागरूक विचारकों को कचोट रहा है। इस कचोट की टीस का दिग्दर्शन विभिन्न साहित्यिक-कलात्मक अभिव्यक्तियों में भी होता रहा है। विभिन्न सामाजिक और धार्मिक तंत्र भी इस दिशा में पर्याप्त चिन्तित एवं सक्रिय दिखायी देते हैं। यहां तक की "आम जनता की नाड़ी के पारखी" कतिपय राजनीतिक विचारक भी विषय की चर्चा आवश्यक समझते हैं। लेकिन नैतिक मूल्यों के सम्बन्ध में सबसे बड़ी "अनैतिक" विडम्बना यह है कि इनके पतन, और ह्रास पर जितनी पीड़ा का अनुभव किया जा रहा है, उस पीड़ा को कम करने के लिए उसका सटीक उपचार का रचनात्मक प्रयास नहीं है। इसके लिए आज भी कबीर का काव्य प्रासंगिक और महत्वपूर्ण है।

कबीर का जन्म एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से हुआ। लोक-लाज के भय से उन्हें त्याग दिया। नीरू एवं नीमा नामक जुलाहा दंपति ने उनका पालन-पोषण किया। कबीर रामानन्द को अपना गुरु समझते थे, लेकिन रामानन्द जातिगत भेदभाव को नहीं मानने वाले थे वे मुस्लिम समुदाय के लोगों को अपना शिष्य नहीं बनाते थे। बावजूद इसके कबीर रामानन्द को प्रभावित करने के लिए, तड़के गंगा की सीढ़ियों पर लेट गये और फिर जब रामानन्द का पैर कबीर पर पड़ा तो राम-राम का शब्द बोलते हुए उन्होंने कबीर को देखा तथा यही राम-राम कबीर को गुरु-मंत्र के रूप में मिला। तत्पश्चात् कबीर रामानन्द के शिष्य बन गये। वे जाति-पांति, लिंग-भेद, साम्प्रदायिकता, बाह्याचार आदि पर तीव्रता से कटाक्ष करते थे। फलतः अधिकांश वर्ग में उनकी स्वीकार्यता सार्वभौमिक थी।

कबीर का सामाजिक दृष्टिकोण लोक व्यवहार पर टिका था। उन्होंने 'आंखो देखी' पर विश्वास किया 'कागज की लेखी' पर नहीं। उनके समय में सामाजिक स्तर पर भेद भाव बहुत बढ़ गया था। कबीर के बहुत बाद तुलसी जैसे वर्ण व्यवस्था के समर्थक ब्राह्मण को भी जातिगत उच्चता और नीचता के प्रश्न पर अपमानित होकर कहना पड़ा था -

धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ

काहू की बेटी सो बेटा न ब्याहब, काहू को जाति बिगार न सोऊ।¹

फिर कबीर तो शूद्रों के प्रतिनिधि थे उन्हें न मालूम क्या-क्या सहना पड़ा होगा? उनकी सहज मेधा में तो यह भेद धंसता नहीं था। जब सभी की उत्पत्ति एक ही ब्रह्म से हुई है तो यह भेदभाव क्यों है?² मानवीय स्तर पर तो सभी समान है। हिन्दू, मुसलमानों, पंडित, मुल्ला और औलिया का भेद किसने खड़ा किया। सबसे बड़ी सिद्धि तो समानता का व्यवहार करने में है। आत्म और पर के भेदों को मिटा देने में ही वास्तविक निर्वाण है। यह मन्दिर और मस्जिद वेद और कुरान, पूजा और नमाज तीर्थ और हज का आडम्बर किसलिए? क्या ईश्वर सर्वव्यापी नहीं है? क्या वह अणु में व्याप्त नहीं है? यदि वह मन्दिर मस्जिद में ही सीमित है तो शेष समाज में कौन रम रहा है। कौन-कौन साधक है? पंडित को पांडित्य का गर्व है, योगी अपने 'अहमेव' में ऐठें हैं, तपस्वी तपश्चर्या में लीन होकर मत्त हो गये हैं।³ ऐसे ज्ञानियों से संसारी जीव अच्छे हैं।⁴ ऐसा ज्ञान जो मुक्ति नहीं बन्धन की शिक्षा देते हैं उसे लेकर क्या होगा? फिर समाज में धार्मिक स्तर पर ही भेदभाव नहीं है, आर्थिक स्तर पर भी असमानता है। जो

निर्धन है, उनका कोई आदर नहीं करता। यदि निर्धन व्यक्ति धनी के घर जाता है तो वह मुंह फेर लेता है, किन्तु वही धनी जब निर्धन के घर जाता है तो वह आदर करता है। इन लोगों को कौन समझाये कि धनी और निर्धन तो भाई-भाई हैं। यह तो प्रभु की लीला है जो भिन्न-भिन्न रूपों तथा परिस्थितियों में मनुष्य को दिखाई पड़ते हैं। वास्तविक रूप से निर्धन तो वे हैं, जिनके हृदय में भक्ति नहीं है।⁵ ऐसे भेदभाव पूर्ण समाज को अस्वीकार कर देना ही कबीर ने उचित समझा। यह भेदभाव तब भी था और अभी है परन्तु वर्तमान समय में कबीर के समान समाज की सच्चाई को उजागर करने वाला सशक्त व्यक्तित्व नहीं है। कबीर का व्यक्तित्व ध्वंसात्मक प्रवृत्ति का था परन्तु उनके मन कुछ निश्चित जीवन मूल्य थे जिन पर उनका अखण्ड विश्वास था। प्रेम, अहिंसा और समता, मनोनिग्रह कर्तव्य विचार की एकता, जीवन की सहजता, आडम्बरहीनता, सत्यता, सत्संगति और विनय। कबीर की यही पूंजी थी इसके बल पर वे समाज की सच्चाई को उजागर कर सकें। ये जीवन मूल्यों शुद्ध मानवीय तत्व हैं जिनका समन्वित उत्कर्ष उस महामानव, दिव्य मानव या आदर्श मानव की सृष्टि करता है जिसे कबीर ने 'आत्माराम' और चंडीदास ने 'मनेर मानुष' कहा है। कवीन्द्र रवीन्द्र ने इन्हीं जीवन मूल्यों को मानव धर्म की संज्ञा दी है। इस ओर संकेत करते हुए वे कहते हैं कि "भारतवर्ष में ऐसे मनुष्य हुए हैं जिन्होंने मानव धर्म के विषय में अध्ययन पूर्ण ग्रन्थ नहीं रचे हैं, किन्तु जिनमें इनकी उपलब्धि की अदम्य इच्छा रही है और जिन्होंने इसके लिए सतत् अभ्यास किया है उनकी जिन्दगी प्रमाणित करती है कि उन्होंने उस व्यक्ति से जो सब व्यक्तियों में है और उसका निराकार मानव तत्व से जो सभी मानव-आकृतियों में है, नैकट्य प्राप्त किया था।"⁶

इस प्रकार कबीर की दृष्टि उस मानव सत्य को पहचानने में हमारी सहायता करती है, जिसके आधार पर समस्त भेदों से ऊपर उठकर व्यावहारिक स्तर पर मानवीय धर्म की प्रतिष्ठा की जा सकती है। कबीर जनता के गुरु, मार्गदर्शक, साथी, मित्र और साम्प्रदायिक ऐक्य के प्रतिष्ठाता थे। आज के भारतीय समाज में कबीर का सत्य बड़ा प्रासंगिक है। आज के भारतीय समाज के लिए कबीर का सच बहुत ही महत्वपूर्ण है। समाज की उन्नति के लिए उसकी महती आवश्यकता है।

सन्दर्भ :

1. तुलसी ग्रन्थावली पृ0सं0-223, कवितावली पद 106
2. गर्भवास महि कुल नहि जाति। ब्रह्मविंद ते सब उतपाती- कबीर ग्रन्थावली पद 61
3. कबीर ग्रन्थावली पृ0सं0-302, पद 131
4. भले इन ग्यानियन थे संसारी - कबीर ग्रन्थावली, पृ0सं0 182, पद सं0 276
5. कबीर ग्रन्थावली पृ0 सं0 302, परिशिष्ट
6. The Religions of the man by Ravindra Nath Tagore Page 112

The Menace of Cyber Crime

Khursheed Alam Khan

Assistant Professor

Department of Law

S. V. College, Aligarh

Abstract:-

We are living in the age of science and technology, new technology are being invented every day. In all these technologies the internet/cyber has affected the world most. The internet has made people lives easier, but along with the new dangers are also emerging every day. Through internet we can get all information from all over the world sitting at home and through internet we can connect from one person to another in today's era most of the people use facebook, instagram, whatsapp, twitter etc. to a large extent. While the internet has provide facilities to the people, it is also being misused. Criminals and terrorist are using them to commit new crimes. Cyber threat is the biggest threat in the world today. Cyber crimes is being carried out hackers. In view of the increasing threat of cyber crime, governments have made cyber laws and information technology act.

Key Words:-

Internet, cyber crime, cyber law, cyber criminals, hacker.

Introduction:-

Internet is a kind of medium through which people are able to connect from on part of the world to another. Social networking, online shopping, online transaction, online study, online game, getting information, looking for jobs online all these things man can imagine today. Internet is used in every field in today's era. With the increasing advantages of the internet, terrible crimes like cyber crimes are also increasing. Cyber crimes are increasing in different ways. Incident of cyber crime are happening in other contries as well as in india. Cyber crimes are so common today. We see it getting reported in media regularly. As per a joint study by PWC and ASSOCHAM, cyber attacks around the world are occurring at a great frequency and intensity. With increasing adoption of the internet and smartphone, India has emerged as one of the favourite countries among the cyber criminals. Information technology has undoubtedly increased the speed, the precision, and the volume of growth and business today, but the hazards of cyber threats are extremely high.

What is Cyber Crime:-

Difined simply, 'cyber crime' is the use of computer as an instrument to further illegal ends, such as committing froud, trafficking in child pornography and intellectual property, stealing identities, or violating privacy. Internet, mobile phones etc. are used illegally in cyber crime. Use of the internet has become wider and deeper as the computer has become central to commerce. Entertainment and government. The population using social networking sides on a large scale is unaware of the dangers of cyber crime.

But the servers of various social networking sites are kept focused in those countries, due to which there is a fear that they may be misusing personal information of our country people, this thing always boggled in mind. People keep sharing their personal information on social networking sites, due to which hackers can very easily hack all the information of those social networking accounts and they start misusing the information received.

Types of Cyber Crime:-

There are different names for different cyber crimes, such as computer network intrusions, password sniffers, industrial espionage, cyber fraud, cyber stalking, computer sabotage, identity theft, spam, phishing, password cracking, hacking, cyber squatting, software piracy, digital bullying, cyber terrorism, to name the important ones.

Hacking:-

Hackers are computer programmers, as soon as we create our account directly in that website without investigating any website in social media, we put all the information in our account. Due to which the risk of account being hacked remains. Protect your account information from hacking. We should first find out the veracity of all the information on that website. Then an account should be created. While using internet post photos and videos in social media so that no one can hack your data profile.

Virus:-

Viruses are present in mobile and computers, this virus causes interruption while running the computer system and affects the stored data. Having a virus in the computer completely destroys our system. Virus in computer spreads through internet and to eliminate virus of computer system. We should use antivirus tool.

Phishing:-

Fake websites are created on the internet by hackers, so that users share all their information or emails in that website and completely fall in to the hacker's web. Hackers steal all information through fraud and misusing personal information. This is the best way to get confidential information like credit card number and account number, ATM pin and PAN card number etc.

Sexual Exploitation:-

Through the internet, criminals win the trust of children and women and entangle them in the circle of friendship on social media, then slowly start sending wrong videos, in such a situation, wrong things start coming in the mind of the children and women and all this starts getting out of their control. By making friends through social media, they start exploiting them in a wrong way.

Extent Of The Menace:-

The creation of new technologies brings forth new criminal opportunities but few new types of crime. What distinguishes cyber crime from traditional criminal activity? Obviously, one difference is the use of digital computer, but technology alone is insufficient for any distinction that might exist between different realms of criminal activity. Criminals do not need a computer to commit fraud, traffic in child pornography and intellectual property, steal an identity, or violate someone's privacy. All those activities existed before the cyber prefix became ubiquitous. Cyber crime, especially involving the internet, represents an extension of existing criminal behaviour alongside some novel illegal activities. As the process of

globalisation has increased the levels and dimensions at which the nations of the world are interacting today, the threats of this crime have also multiplied in dimension. It seems as if greater globalisation leads to greater hazards of cyber crimes.

Cyber crime, in most cases, is an attack on information about individuals, corporations, or governments-the attacks are not on a physical body, they take place on the personal or corporate virtual body, which is set of information about people and institutions on the net. In the digital age, our virtual identities are essential elements of every day life we are a bundle of numbers and identifiers in multiple computer databases owned by governments and corporations. This crime highlights the centrality of networked computers in our lives, as well as the fragility of such facts as identities.

Measures to Prevent Cyber Crime:-

As the nature of this crime crosses physical boundaries of the nations, it is strongly felt that till there is an effective and concerted international corporation, checking the menace of this crime will not be possible. One nation, whatever be the level of its digital preparedness, cannot stop such crimes from happening.

As the international level many attempts have been made under the overarching united nation commission on international trade law (UNCITRAL) but they have till now been inconclusive. Nations had a consensus on the point that there has been growth in legitimate cross border computing, such as cloud computing, etc. which has been accompanied by growth in cross-border crime which calls for international laws accompanied by growth in cross-border crime which calls for international laws to be brought up to speed.

The government of india, in order of check the crime, has also adopted some of the clauses of the UNCITRAL, and passed the information technology act, 2000. This act has been framed for according legal recognition to the authentication of information exchanged in respect of commercial transactions conducted by means of electronic communication technology. The act, in to two categories of liabilities-civil and criminal has given legal recognition to:

1. Digital signatures, which include acceptance in lieu of hard written signature.
2. Electronic record, which includes retention, attribution, acknowledgement and dispatch, and security.
3. Creation of an infrastructure for issuance and regulation of digital signature certificates.
4. Creation of a cyber regulations appellate tribunal.
5. Amendments in existing laws to give recognition to electronic documents.
6. Offences and penalties for cyber crime.

As india is moving toward greater computerisation and putting more and more functions on the internet, from administration to surveillance to developmental programmes, the threats of cyber crime are increasing day by day. Before things take an ugly turn, the country needs to put in place an effective mechanism to check and prevent the rising menace of cyber crime.

Conclusion:-

In the end we can conclude that there is an urgent need for structural adjustment, personal motivation, technological development, training and attitudinal changes among the law enforcing personnel. Besides, the world immediately needs evolving of a global mechanism to check the expanding and perpetually changing face of cyber crime.

Reference:-

1. Pawan Duggal, Text on cyber law-Publication EBD, Year 2021
2. Peter stepherson and keith gilbert, investigation computer- Related Crime' Routledge, New your 2013
3. Yvonne Jewke and Majid Yad edited Hnad book of Internet crime, Routledge, Newyork 2009
4. Pawan Duggal, Protecting your reputation in cyberspace brief cases', New Delhi.
5. Protecting interconnected systems in the cyber Era; study by Assocham jointly with PWC, Assocham, N. Delhi, Agent, 26; 2016
6. Talet Fatima, cyber law in India EBC Publication 2022 Edition.
7. <http://www.academia.edu/7781826/IMPACT> of Social media on society and cyber law.
8. <http://www.cyberlawssindionet/cyber-india.html>.
9. Several articles, news analyses of newspapers, journals and magazines.

आधुनिक हिंदी काव्य में पर्यावरण चेतना

डॉ० सावित्री रावत

मो०— 8126278936

मेल —dr.savitrirawat@gmail.com

प्रकृति के वे नैसर्गिक तत्व जो हमें चारों ओर से घेरे हुए हैं, जिसके अन्तर्गत हम जड़ और चेतन जगत को देखते हैं, पर्यावरण कहलाता है। मनुष्य जीवन इन परिधियों से मुक्त नहीं हो सकता, यही कारण है कि हवा, पानी, मिट्टी, पेड़-पौधे सभी जीवन प्रदायी हैं, जिनका संरक्षण आवश्यक है। वस्तुतः पर्यावरण व्यक्ति के लिए प्राकृतिक दृश्यबंध प्रस्तुत करता है, जो हमारे दैनन्दिन जीवन को प्रेषित करता है और साथ ही हमारे चिन्तन, व्यवहार और अनुभूति को भी प्रभावित करता है। पर्यावरण एक विशाल तंत्र है जो मानव व्यक्तित्व, जीवन और व्यवहार को बहुत दूर तक निर्धारित करता है, इसमें जितने भी तत्व हैं, वे एक-दूसरे से संपृक्त हैं और पारस्परिक क्रिया तथा अनुक्रियाबद्ध हैं। “डॉ० देवराज के शब्दों में – मनुष्य केवल अपने चारों ओर के परिवेश को जानकर संतुष्ट नहीं होता, वह अपनी चेतना तथा दृष्टि के सम्मुख फैले हुए समस्त ब्रह्माण्ड को समझ और उससे संबंध स्थापित कर लेना चाहता है।”¹ इसी महत्व को आधुनिक कवियों ने पहचाना और जगत की संवेदनात्मक अनुभूतियों की सहज अभिव्यक्ति को व्यक्त किया। काव्य में आत्मिक अनुभूति की जितनी अधिक सघनता रही है, उतनी ही प्रगाढ़ता बाह्य परिवेश की भी रही। कवियों ने अपनी चिन्ता को स्वर देने के लिए अनेक प्रतीकों को माध्यम बनाकर अपना उद्देश्य पूर्ण किया और अपने इस अभीष्ट की पूर्ति के लिए उन्होंने प्रकृति को सबसे करीब पाया।

आधुनिक कवि की सामाजिक स्वाधीनता और वैयक्तिक विकास की भावना यदि एक ओर प्राचीन रूढ़मर्यादाओं के विरोध के रूप में प्रकट हुई तो दूसरी ओर प्रकृति के प्रति सचेतात्मक रूप में प्रकृति के सामाजिक सरोकारों के प्रति वह जागरूक है। प्रकृति के प्रति चिन्तन, मनन सभी से उसका जुड़ाव है, जब हम स्वच्छन्दतावादी कवियों के मुख से यह सुनते हैं कि कविता करने की प्रेरणा उन्हें प्रकृति से ही प्राप्त हुई है, यही कारण है कि कवियों को प्रकृति ने सबसे अधिक अपनी ओर आकृष्ट किया।

पर्यावरण कई तत्वों का संघात है। वन, नदी, पहाड़, सागर, पेड़-पौधे, जीव-जन्तु, आकाश सभी प्रकृति में संयुक्त हैं, ये सब मिलकर पारिस्थितिकी सन्तुलन बनाते हैं। सभी चर-अचर तत्व एक-दूसरे से जुड़कर अपना अस्तित्व निर्धारित करते हैं। इस सामंजस्य को कवि बहुत ही रागात्मक भाव के साथ व्यंजित करते हुए कहता है—

“प्रथम रश्मि का आना रंगिणि
तूने कैसे पहचाना?
कहाँ-कहाँ हे बाल विहंगिनि
पाया तूने यह गाना?”²

प्रातःकाल में उठी चिड़िया की चहक उसके लिए मात्र आनन्द या मानसिक तृप्ति का कारण नहीं है, वरन् उससे इतर प्रकृति के रहस्य को जानने की जिज्ञासा का स्रोत है। सूर्य की स्वर्णिम किरणों का प्रभाव कितना प्रखर-फलदायी है कि पक्षी तक उसके प्रभाव से प्रफुल्लित हो उठते हैं। स्वाभाविक है कि मानव जीवन के लिए भी ये प्रातःकालीन सूर्य की किरणें कितनी उपयोगी होंगी। सूर्य ऊर्जा का स्रोत है, उस ऊर्जा स्रोत के प्रथम किरण के आगमन का धरती से स्पर्श होते ही विहंगिनी अपने कोमल स्वर से वातावरण को मधुरि कर जीवन में नव संचार करती है।

वैदिक साहित्य में पृथ्वी को माँ कहा गया है, क्योंकि वह समस्त वन—संपदा की जन्मदात्री है। इसी परंपरा का अनुगमन हिंदी के कवियों ने भी किया, उन्होंने अपने काव्य—ग्रन्थों में प्रकृति को माँ की संज्ञा से नवाजा है।

“तू कितनी प्यारी है मुझको
जननी, कौन जाने इसको
यह जग का सुख जग को दे ये,
अपने को क्या सुख, क्या दुख?”³

कवि प्रकृति की महता को जननी के रूप में स्वीकार कर उसे ममतामयी बताता है, क्योंकि मनुष्य कितना ही क्रूरकर्मा क्यों न हो माँ सदैव उसके प्रति द्रवित, स्नेहिल, स्निग्ध है। अतः प्रकृति को माँ के रूप में व्यक्त करने के पीछे समाज का प्रकृति के प्रति भावात्मक लगाव पैदा करना है, क्योंकि प्रकृति कभी प्रतिदान नहीं चाहती। हमारा यह हरित जगत अरण्य सुरक्षित रह सके, इसलिए कवि उसे मानवीय चेतना से जोड़ता है और प्रकृति को जीवन का अभिन्न अंग मानता है। हिंदी कविता में कवियों को प्रकृति चित्रण का यह रूप परंपरा से प्राप्त है।

आदिकवि वाल्मीकि वनों को पुत्रवत् मानकर उनकी रक्षा के लिए सदैव तत्पर रहते हैं और चेतावनी देते हैं कि जो भी वन को पत्र और अंकुर का विनाश और फल—फूल का अभाव करेगा, वे निश्चित रूप से शाप के भागी होंगे। कवि प्रकृति रक्षण के लिए सचेत है, वह जानता है कि पर्याप्त वृक्षोपपन्न न होने की अवस्था में विनाश की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी, यही कारण है कि कवि पारिवारिक संबंधों के आलोक में प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित करना चाहता है, जैसे कष्टों के निवारण के लिए बालक माँ की गोद टटोलता है तो युवा प्रेयसी—पत्नी से सुख—दुख बांटता है, प्रकृति भी उनके भाव जगत से अभिन्न नहीं है, कहीं आलम्बन तो कहीं उद्दीपन रूप में वह मानव जीवन का हिस्सा बनी रहती है, उन्हीं मानवीय संबंधों को परिप्रेक्ष्य में प्रकृति को उद्घाटित करते हुए कवियों ने काव्य में प्रकृति चित्रण किया है ताकि समाज पर्यावरण से छेड़छाड़ न करे, उसके अस्तित्व को मिटाने के लिए प्रेरित न हो, प्रकृति प्रदत्त साधन सहज सलुभ संसाधन है जो मानव जीवन के आधार है, यही कारण है कि कवि इस प्रकृति सत्ता को सुरक्षित रखने के लिए प्रयासरत है।

स्वस्थ, सुगंधित समीकरण से रोमांचित कवि को ज्ञात है कि यह हवा प्राणदायिनी स्त्रोतस्विनी है जो संपूर्ण जीव मण्डल को स्फूर्ति प्रदान करने वाली है।

“सखि बसन्त आया,
भरा हर्ष वन के मन
नवोत्कर्ष छाया
किसलय—वसना नव—वय लतिका
मिली मधुर प्रिय—पुर तरु पतिका
मधुप वृन्द बन्दी
पिक स्वर नभ सरसाया।”⁴

प्रकृति और मानव के मध्य सुखद अनुभूति का यह संबंध अनादि काल से चला आ रहा है, भौतिक जगत की आपाधापी से प्रभावित होने के बावजूद प्रकृति के साथ रिश्तों के स्त्रोत अब भी शुष्क नहीं हुए हैं। यही कारण है कि ऋतु का परिवर्तन चक्र भी आधुनिक कवि के लिए आकर्षण प्रेरणा का केंद्र है, क्योंकि नव कोपलों के प्रस्फुटित होने से हरीतिमा बढ़ती जाएगी। वृक्ष सघन हो जाएंगे और समस्त पशुओं को पर्याप्त भोजन घास पत्ती प्राप्त हो सकेंगी और वे मानव जीवन के लिए विभिन्न क्षेत्रों में उपयोगी सिद्ध हो सकेंगे। उन्हीं पशुओं की प्रक्रिया से वनस्पति जगत को उर्वरा प्राप्त होगी। इस प्रकार पारिस्थितिकीय तंत्र संतुलित बना रहेगा। कवियों के लिए मात्र सुरम्य, अरण्य, कानन ही भावलीला का प्रांगण नहीं है, वरन् उन्हें पतझर के पत्रहीन शुष्क वृक्ष भी स्वीकार है। रूपक के माध्यम से चित्र उपस्थित करते हुए कवि कहता है कि —

“सखि! भिखारिणी सी तुम पथ पर
फैलाकर अपना अचल
सुखे पातों ही को पा क्या
प्रमुदित रहती हो प्रतिफल?”⁵

कवि पन्त जी ने प्रकृति के इस परिवर्तित रूप को भिखारिणी सदृश्य माना है, जैसे भिखारिणी अभावमय वैभवहीन होने से नकारात्मक जीवन जीने के लिए विवश हो जाती है, सामाजिक जीवन से सरोकारों में मृतवत् हो जाती है, उसी प्रकार वृक्षों के पत्रहीन होने से न केवल वे शोभारहित रहते हैं, वरन् उनके जीवन का अवसान भी होने लगता है, क्योंकि पत्तियों से भी वृक्ष अपना भोजन ग्रहण करते हैं और सूर्य की रोशनी को प्राप्त कर क्लोरोफिल बनाते हैं, जिसे साहित्य की भाषा में कवि हरितिमा कहता है।

कवि का प्रकृति राग का मुख्य कारण यही है कि उसके बिना कोई जीवधारी जीवित नहीं रह सकता। इतना ही नहीं, प्रकृति के संग समाज का परिवेश और संस्कृति का जुड़ाव भी है।

“हिलते द्रुम दल कल किसलय
देती गल बांही डाली
फूलों का चुम्बन छिड़ती
मधुपों की तान निराली?”⁶

कवि भी मानता है कि जीवन को रसमय बनाए रखने के लिए, उसकी तरलता बनाए रखने के लिए पर्यावरण को शुद्ध रखना आवश्यक है, जो वनों की हरियाली बनाए रखने के लिए संभव है। वनों का विस्तार तथा उनका संरक्षण वायुमण्डल में कार्बन डाइ आक्साइड की बढ़ती मात्रा को नियंत्रित करता है, वनों के विस्तार तथा उनकी हरियाली से मानसून प्रभावित होते हैं, जिससे धरती पर प्राण वायु ऑक्सीजन को अमृत रूप में देकर वसुधा को मनुष्य अन्य प्राणियों के रहने लायक बनाते हैं। इसलिए वृक्षों के नानाविध वनस्पतियों के सुन्दर स्वरूपों के बिम्बात्मक चित्रणों द्वारा कवि ने ऐसे चित्र उपस्थित किए हैं, जिससे मानव समाज की उनके प्रति आत्मीयता और तादात्म्य पैदा हो सके और पर्यावरण संहार की कल्पना उसके मन में न उठे।

एक समय था जब मनुष्य प्रकृति से भय खाता था, उसके प्रकोप के डर से उसकी पूजा-अर्चना करता था। उस समय जीवन का प्रत्येक पक्ष प्रकृति द्वारा नियंत्रित होता था और एक आज का युग है कि प्रकृति पर मनुष्य का नियंत्रण उत्तरोत्तर व तीव्र गति से बढ़ रहा है।

“मानवता के सारे पुराने और सारे नए तत्व हम शामिल किए लेते हैं,
धीरज भी, इंतजार भी, सब्र भी
(छह कोणों वाले यंत्र जैसी मानवता बनाई जा रही है)
भाई-चारा, शमशान और समाधि भी
मंदिर भी, मस्जिद भी और कब्र भी
फिर भी हम मुमकिन करना चाहते हैं,
कि कुछ चीजें प्रकृति को लौटा दी जाए।”⁷

ताकि भविष्य की आधुनिकता के लिए भी हम प्रकृति के पास जा सकें।

कवि का मानना है कि आज मानवता समाप्त हो गई है। वह केवल भौतिक सुख की इच्छा रखता है, उसे भविष्य में उत्पन्न होने वाली विपदा का आभास तो है पर फिर भी अपनी विध्वंसक प्रवृत्ति को त्याग कर प्रकृति निर्मित मानव नहीं बनना चाहता। मानव का कर्तव्य बनता है कि वह प्रकृति को सुरक्षित रखे, अधिक से अधिक वृक्षारोपण करें ताकि आने वाले भविष्य में आधुनिकता के लिए हम प्रकृति को कुछ दे सकें तथा अपने पर्यावरण को सुरक्षित बनाकर भावी पीढ़ी को उपहार स्वरूप कुछ दे सकें। कवि ईश्वर से जीवन मंगल की कामना कर कहता है –

“प्रभु भू पर हो
भौतिक आत्मिक जीवन—मंगल
सितगिरि तेरे चरणों पर
अर्पित सुख दुख फल।”⁸

कवि का ईश्वर से यही अनुग्रह है कि संपूर्ण संसार इस धरती पर सुख का जीवन व्यतीत करें। आधुनिकता को अपनाते हुए उसका प्रयोग मानव हित में लगाए, जिससे समाज सशक्त बने। अपनी धरती को खुशहाल बनाए, औद्योगिकरण का लाभ उठाएं पर साथ ही यह ध्यान रखें कि उससे किसी प्रकार की हानि पर्यावरण को न पहुँचे, यद्यपि औद्योगिक विकास के द्वारा विश्व स्तर पर भारत को सम्मानजनक पद प्राप्त होता है, किंतु पर्यावरण विनाश की कीमत पर औद्योगिक विकास उचित नहीं है क्योंकि इससे जल, थल तथा वायुमण्डल सभी प्रदूषित होते हैं, जिसका सीधा प्रभाव जनजीवन पर पड़ता है। मानव ही प्रदूषण फैलाकर पर्यावरण को प्रदूषित करता है, वही इसे स्वच्छ एवं निर्मल भी कर सकता है। अतः जरूरी है कि वृक्ष कटान की अपेक्षा उसकी सुरक्षा के इंतजाम किए जाएं और इसे धर्म-कर्म से जोड़ा जाए।

औद्योगिकरण पूरे विश्व में फैलकर पर्यावरण के लिए कितना विध्वंसकारी होगा। केवल प्रगति-विकास के नाम पर दूर-दृष्टा कवि लिखता है –

“सुन्दरता में छिपी हुई है,
महानाश की माया,
फूलों से शोभित झुरमुट में,
कमल-सर्पिणी सोती,
ज्वालामुखी फूट पड़ते हैं,
भू-कंपन हो जाता,
जब भी अत्याचार प्रपीड़ित,
नारी व्याकुल रोती।”⁹

कवि इस सत्य को स्वीकार करते हैं कि हर वस्तु के अत्यधिक उपभोग से विनाश निश्चित है। कवि उपभोक्तावाद की ओर बढ़ते आकर्षण के प्रति चेतावनी देता है और पर्यावरण संरक्षण के द्वारा समस्या के समाधान का रास्ता बताकर मानव को सचेत करता है, वह स्पष्ट करता है कि सौंदर्य से परिपूर्ण वस्त्र के पीछे विनाश भी छिपा होता है।

आज बढ़ते औद्योगिक विकास को रोकना आसान नहीं है, किंतु मानव मन को नव चेतना के साथ कदम बढ़ाना होगा, जिससे पर्यावरण में विकास का दूषित विष न फैले और स्वच्छ समीर से मानव जीवन विकसित होता रहे क्योंकि जहाँ एक ओर आर्थिक विकास से देश मजबूत व विकसित हुआ है, वहीं दूसरी ओर आधुनिकता के कदमों से प्राकृतिक संसाधनों को सुरक्षित भी रखा जा सके।

पर्यावरणविद् पद्मश्री डॉ० अनिल जोशी का कहना है कि “हमें यह आंकलन करना चाहिए कि पिछले वर्षों में हमने प्रकृति प्रदत्त संसाधनों को कितना नुकसान पहुँचाया है या उनमें कितनी संवृद्धि की है, जैसा कहा है – आज हमारी सबसे बड़ी आवश्यकता पर्यावरण सुरक्षा है।”¹⁰

आज एक बार फिर आवश्यकता बन पड़ी है कि मानव जीवन संरक्षण के लिए प्राचीन ऋषि-मुनियों की धरोहर को स्वीकार कर उनका अनुसरण करें। पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, अग्नि इन पंचतत्वों की रक्षा कर धरती का अंचल उज्वल बनाएं। ईश्वरीय धरोहर रूपी प्रकृति को नष्ट न कर उसका संरक्षण करें क्योंकि आज वैज्ञानिक भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि प्राकृतिक संतुलन से ही मानव जीवन संभव है।

आज हमारे सम्मुख जो समस्याएं पर्यावरण को लेकर उत्पन्न हो रही हैं, उन सबका वर्णन कवियों ने पहले ही अपनी रचनाओं में सुरक्षित कर मानव को सचेत कर दिया क्योंकि वह जानता है कि आने वाले समय में मनुष्य भौतिकवादी होने पर प्राकृतिक पर्यावरण का हनन कर उसे नुकसान

पहुँचाएगा, जिससे सचेत रहने के लिए आधुनिक कवियों ने काव्य का सहारा लिया। कवियों का एकमात्र ध्येय यही था कि मानव समाज से जुड़े अपने प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण कर सकें। यही कारण है कि कवियों ने अपनी सहज वाणी से समाज की चेतना को जागृत करने का प्रयास किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. पर्यावरण और संस्कृति, डॉ० गोविन्द चातक, पृ० सं० 1
2. तारा पथ, सुमित्रानंदन पन्त, पृ० सं० 55
3. पन्त ग्रन्थावली, भाग-1 'वीणा', सुमित्रानंदन पन्त पृ० सं० 84
4. अपरा, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, पृ० सं० 22
5. पल्लव, सुमित्रानंदन पन्त, पृ० सं० 103
6. प्रसाद ग्रन्थावली, पृ० सं० 311
7. ईश्वर की अध्यक्षता में, लीलाधर जगूड़ी, पृ० सं० 105
8. चित्रांगदा, सुमित्रानंदन पन्त, पृ० सं० 205
9. पृथिवी पुत्र, श्री विलास डबराल 'विलास', पृ० सं० 7
10. पर्यावरण चेतना, मार्च 2007, अंक-11, पृ० सं० 39

तुलसी साहित्य में छन्द प्रक्रिया

वनीत कौर

शोध छात्रा, हिन्दी विभाग
कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर
जम्मू व कश्मीर-190006

छन्द को चरण कहा गया है अर्थात् शब्दार्थ शरीर व रस प्राण के लिए छन्द संचरण हेतु अपेक्षित है। “छद्” धातु से व्युत्पन्न-आवृत्, रक्षित और प्रसन्न करने का अर्थ देनेवाला ‘छंद’ शब्द ऋग्वेद से ही ढूँढा गया है। (छदयन्ति ह वा एनं छन्दांसि पापात्कर्मणः)। अक्षर, अक्षरों की संख्या एवं क्रम, मात्रा-गणना तथा यति-गति आदि से सम्बन्धित विशिष्ट नियोजित पद्य रचना छन्द है।¹ छन्द के आदि आचार्य पिंगल मुनि स्वयं हैं, जिन्होंने पिंगल-सूत्र रचकर श्रीगणेश किया है, कालानंतर में गंगादास की ‘छंदोमञ्जरी’ व क्षेमेन्द्र ने ‘सुवृत्त तिलक’ की रचना की है। “कविता में बिंब-विधान और वाद-विधान, दोनों ही होते हैं। प्रत्येक भाव अपनी अभिव्यक्ति के लिए अपने अनुरूप आरोह-अवरोह उत्पन्न कर लेता है, जिसे हम ‘लय’ कहते हैं। जब इसी आरोह-अवरोह को एक निश्चित नियोजित कर दिया जाता है, तो इसके सामूहिक ढाँचे को हम छंद कहते हैं।”²

छन्द की अतिआवश्यकता सुकवि हेतु अपेक्षित है। महाकाव्य, खण्डकाव्य व गीति/मुक्तक काव्य हेतु छन्द साहित्य तत्व के समान आवश्यक है। “नाद सौन्दर्य से कविता की आयु बढ़ती है। तालपत्र, भोजपत्र, कागज आदि का आश्रय छूट जाने पर भी वह बहुत दिनों तक लोगों की जिह्वा पर नाचती रहती है। बहुत सी उक्तियों को लोग उनके अर्थ की रमणीयता इत्यादि की ओर ध्यान ले जाने का कष्ट उठाये बिना ही, प्रसन्न चित्त रहने पर गुनगुनाया करते हैं। अतः नाद-सौन्दर्य का योग भी कविता का पूर्ण स्वरूप खड़ा करने के लिए कुछ न कुछ आवश्यक होता है।”³

गोस्वामी तुलसीदास हिन्दी के महान रचनाकार हैं। उन्होंने ‘छंद तत्व’ को अत्यधिक महत्व दिया है। ‘रामचरितमानस’ में कवि ने छन्द तत्व को इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

“वर्णानामर्थ संधानां, रसानां छन्छसामपि।”⁴

कवि ने वर्ण, अर्थ, रस के साथ छन्द तत्व को प्रमुख माना है। ‘रामचरितमानस’ में प्रमुख छन्द दोहा, चौपाई, सोरठा, हरिगीतिका, चौपैया, त्रिभंगी, नाराय, चामर, भुजंगप्रयात, शार्दूल विक्रीडित आदि प्रयोग में लाये गये हैं। सबसे अधिक दोहा व चौपाई छन्द का प्रयोग किया गया है। दोहा एक ऐसा छन्द है, जो दो पंक्तियों में लिखा जाता है। इसके प्रथम और तृतीय चरणों में 13 मात्राएँ, द्वितीय और चतुर्थ चरणों में 11 मात्राएँ होती हैं। अंत में गुरु के पश्चात् लघु होना अनिवार्य है।⁵ उदाहरण —

“सारद सेस महेस विधि, आगम निगम पुरान।

नेति नेति कहि पासु गुन करहिं निरंतर गान।।”⁶

उसी प्रकार ‘सोरठा’ छन्द का प्रयोग भी कहीं-कहीं दृष्टिगत होता है। “यह दोहा का उल्टा होता है। इसके विषम अर्थात् प्रथम एवं तृतीय चरण के ग्यारह तथा द्वितीय व चतुर्थ में तेरह मात्राएँ होती हैं।”⁷

उदाहरण स्वरूप — “बंदरुँ गुरु पद कंज, कृपा सिंधु नर रूप हरि।

महामोह तम पुंज, जासु बचन रवि कर निकर।।”⁸

‘रामचरितमानस’ में चौपाई छन्द का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है। कवि की मान्यता भी है—

“छन्द सोरठा, सुन्दर दोहा ।”

पुरुइन सघन चारु चौपाई ।।”

“इसके प्रत्येक चरण में 16 मात्रायें होती हैं। अन्त में लघु नहीं रहना चाहिए। दो गुरु अन्त में रहने से प्रवाह आ जाता है।”

उदाहरण –

“भाव भेद रस भेद अपारा।

कवित दोष गुन विविध प्रकारा ।।”

गोस्वामी जी ने चौपैया व त्रिभंगी छन्द का अति सुन्दर प्रयोग किया है, जो जन-जन के कंठ में निवास करता है—

“भए प्रकट ‘कृपाला’ दीन दयाला, कौसिल्या हितकारी।

हर्षित महतारी मुनि-मन हारी, शोभा सिन्धु खरारी ।।”

व

“परसत पद पावन, शोक नसावन, प्रकट भई तप पुंज सही।

देखत रघुनायक, जन सुखदायक, रनमुख है का जोरि रही ।।”

उपर्युक्त उभय छन्द 30 व 32 मात्राओं से युक्त है। गोस्वामी तुलसीदास ने अट्टाइस मात्राओं वाली हरिगीतिका छन्द का प्रयोग दोहा-चौपाई की एक रसता को भंग करने के लिए किया है—

“बन बाग उपबन वाटिका सर कूप बापी सोहही।

नर नाग सुर गंधर्व कन्या रूप मुनि मन मोहही ।।”

मात्रिक छन्दों के अतिरिक्त ‘तुलसी साहित्य’ में वार्षिक छन्द भी प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। यथा-भुजंग प्रभात छन्द। इसका प्रयोग ‘रामचरितमानस’ में किया गया है—

“निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं। चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं ।।”

‘दोहावली’ मात्रा दोहा छन्द में रचित ग्रन्थ है। इसमें पाँच सौ तिहत्तर छन्द हैं। इस ग्रन्थ में उपलब्ध दोहे अपूर्व हैं। एक उदाहरण है—

“बध्यो बधिक परमो पुन्य जल, उलहि उठाई चोंच।

तुलसी चातक प्रेम पट मरतहुँ लगी न खोंच ।।”

“किसी बहेलिये ने चातक को मार दिया, वह पुण्यसलिला गंगा जी में गिर पड़ा, परन्तु गिरते ही उस अनन्य प्रेमी चातक ने चोंच को उलटकर ऊपर उठा लिया। तुलसीदास जी कहते हैं कि चातक के प्रेम रूपी वस्त्र पर कोई खरोंच नहीं लगी ।।”

‘दोहावली’ एक मुक्तक काव्य ग्रन्थ है। मुक्तक के प्रत्येक पद स्वतंत्र होते हैं। प्रत्येक विचार पूर्वापर मुक्त रूप से आते हैं। अतः इस प्रकार की रचना हेतु दोहा छंद ही उपयुक्त है। ‘कवितावली’ में कवित्त-सवैया छन्द प्रमुख रूप से प्रयुक्त है। ‘सवैया’ छन्द का सर्वाधिक प्रथम प्रयोग कवितावली में किया गया है। यह छन्द अपनी नाद-योजना के कारण श्रोता को मुग्ध करता है। सवैया एक वर्णिक छन्द है। यह बाइस से छब्बीस पर आधारित छन्द है। इसके अनेक प्रकार हैं। यथा-मदिरा, मतगयंद, सुमुखी, दुर्मिल, किरिट, अरसात, सुन्दरी, सिंहावलोकन, चकोर, अरविन्द, मुक्ताहार, लवंगकता, गंगोदक इत्यादि उसी प्रकार कवित्त (मनहरण) में इक्तीस वर्ण, रूप धनाक्षरी में बत्तीस व देव धनाक्षरी में तैंतीस वर्ण निहित होते हैं। इसी प्रकार कुछ अन्य छन्द भी मधुर रूप में आये हैं। स्वामी तुलसीदास ने ‘कवितावली’ में अति मधुर सवैया छन्द भी नाद योजना में सहृदयों से हृदय को शीघ्र ही विकृष्ट कर लेती है।

“पदकंजनि मंजु बनी धनही धनुकी सा पंकज पानि लिएँ।

लरिका सँग खेलत डोलत है साजू तह चौहट हाट हिएँ।।”

गोस्वामी जी ने ‘गीतावली’, ‘कृष्णगीतावली’ व ‘विनयपत्रिका’ में संगीत के आधार पर छन्दों की योजना की है, जो राग-रागिनियों पर निर्भर है। ‘जानकी-मंगल’ व ‘पार्वती-मंगल’ लोक छन्द व दोहा छन्द में वर्णित है। ‘बरवै रामायण’ वरवै छन्द में वर्णित है। इसके प्रथम व तृतीय में बारह तथा द्वितीय व चतुर्थ में सात मात्राएँ होती है। यथा—

“चंपक हरवा अंग मिलि, अधक सुहाइ।।

जानि परै सिय हियरै, जब कुँभिलाइ।।”

यह बरवै छन्द अधिक ‘सौन्दर्योपकारक’ होता है। रस भरने में यह उपयुक्त छन्द माना जाता है।

सन्दर्भ :-

1. कामायनी पढ़ते हुए—अशोक प्रियदर्शी, पृ0सं0 104, अनुपम प्रकाशन पटना, प्रथम संस्करण—1977 ई0।
2. पृ0, उपर्युक्त
3. चिन्तामणि—आचार्य शुक्ल, पृ0सं0 110, संस्करण—2002 ई0, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
4. रामचरितमानस—गोस्वामी तुलसीदास, पृ0सं0 17, संवत्—2078, एक सौ इक्यावनवाँ पुनर्मुद्रण, गीता प्रेस गोरखपुर।
5. रस—दोष छन्द अलंकार निरूपण—मनहरगोपाल/श्री राकेश, पृ0सं0 77, प्रकाशन केन्द्र सीतापुर, लखनऊ
6. रामचरितमानस—गोस्वामी तुलसीदास, पृ0सं0 25
7. रस—दोष—छंद अलंकार निरूपण—राकेश, पृ0सं0 78
8. ‘दोहावली’—तुलसीदास, संवत् 2077, पृ0सं0 83, तिरसठवाँ पुनर्मुद्रण, गीता प्रेस गोरखपुर
9. कवितावली—तुलसीदास—संवत् 2077, पृ0सं0 07, बासठवाँ पुनर्मुद्रण, गीता प्रेस, गोरखपुर
10. बरवै रामायण—तुलसीदास, पृ0सं0 40, संवत् 2076, सत्रहवाँ संस्करण, गीता प्रेस, गोरखपुर

समकालीन हिंदी कविता : समय की चुनौतियाँ

डॉ. काली चरण झा

सहायक प्राध्यापक

हिंदी विभाग

त्रिपुरा विश्वविद्यालय

सूर्यमणिनगर

त्रिपुरा, पिन- 799022

बीसवीं शताब्दी ने भारतीय इतिहास, अर्थनीति, समाज और साहित्य को समझने के कई सूत्र दिए हैं। राजनीतिक स्तर पर स्वाधीनतापूर्व भारत और स्वातंत्र्योत्तर भारत इन दो ध्रुवों के आधार पर भारतीय राजनीतिक परिस्थितियों का विश्लेषण किया जा सकता है। आर्थिक दृष्टि से भारतीय अर्थ तंत्र तीन पड़ावों का साक्षी रहा है- स्वाधीनतापूर्व की आर्थिक-नीति, नेहरूवियन अर्थ-नीति और फिर इस शताब्दी के अंतिम दशक में अपनाए गए वैशिकरण का अर्थतंत्र। इन ऐतिहासिक और आर्थिक परिवर्तनों के आलोक में भारतीय समाज में होने वाले व्यापक परिवर्तन को लक्षित किया जा सकता है। निसंदेह समकालीन हिंदी कविता संवेदना के स्तर पर इन परिवर्तनों से अछूती नहीं रही है।

बौद्धिक परिदृश्य में बीसवीं शताब्दी का अंत अपने साथ कई अंतों का आतंक लेकर आया। विचारधारा का अंत (समाजशास्त्री डेनियल बेल), साहित्य की मौत (एलविन केरमैन), प्रगीत की मृत्यु (प्रगीत की मृत्यु) आदि उद्घोषणाओं ने वैचारिक स्तर पर समाज और साहित्य को भी प्रभावित किया। जाहिर तौर पर इन समकालीन परिस्थितियों में भी कविता अगर ज़िंदा है तो कहीं न कहीं वह साहित्य और समाज के गहरे बोध को आत्मसात करते हुए ही, हमें उम्मीद जगाती, आश्वस्त करती है। “वैशिकरण के अर्थतंत्र ने सौंदर्यशास्त्र को अपने कब्जे में ले लिया है और बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ ही बता रही हैं कि क्या सुन्दर है। उनके कब्जे में विकसित तकनीक भी है, जिसके बल पर दुनिया को डिजिटल संस्कृति से घेरा जा रहा है।”¹

लेकिन समकालीन कविता मानव विरोधी इस अर्थतंत्र की स्पष्ट पहचान कराती है-
“जिस तरह दिखता है वह उस तरह नहीं होता /यह बाजार का एक ठोस आध्यात्मिक आधार है/ इसलिए चमत्कारों का उत्पादन सबसे बड़ा व्यापार है।”²

इक्कीसवीं सदी के उपभोक्ताप्रधान सामाजिक ढाँचे के भीतर अपसंस्कृति का निरंतर फैलाव तथा आर्थिक विषमता निरंतर बढ़ रहा है। विकास के नाम पर आदिवासियों, दलितों, गरीबों को विस्थापित किया जा रहा है। हजारों किसान-मजदूर आत्महत्याएँ कर रहे हैं।

महिलाओं को वस्तु के रूप में प्रायोजित किया जा रहा है। इतना ही नहीं “असीमित पूँजी और नवीनतम तकनीक के बल पर हो रहा उद्योगीकरण श्रमिकों के शोषण, कृषि भूमि हथियाने, किसानों के विस्थापन, खनिज संपदा की लूट और पर्यावरण के विनाश का कारण बन गया है। चंद लोग और ज्यादा अमीर होते जा रहे हैं, तो व्यापक जनता और ज्यादा गरीब होती जा रही है। प्रकृति और पूँजी के बीच शत्रुतापूर्ण अंतर्विरोध पैदा हो जाने से पर्यावरण बुरी तरह संकटग्रस्त होता जा रहा है।”³

विचित्र विडंबना यह है कि हथियारों के विश्व बाजार में दूसरा सबसे बड़ा खरीददार देश है जिसकी अस्सी कड़ोर आबादी सरकारी सहायता पर जीने को अभिशप्त हैं। वास्तविकता यह है कि दुनिया के सबसे ज्यादा भूखे, कुपोषित और अशिक्षित लोग यहीं रहते हैं। प्रतिव्यक्ति आय में दुनिया के देशों में भारत का स्थान बहुत नीचे रहता है। स्कूल जाने वाले छात्र-छात्राओं की संख्या में गिरावट चिंता का सबब है। “अहिंसा और सत्याग्रह से आजादी हासिल करने वाले बुद्ध, महावीर और गाँधी के इस देश ने क्या कभी सोचा था कि एक दिन वह इंसानों का कत्लेआम करने वाले संहारक हथियारों का सबसे बड़ा खरीददार भारत पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को सहारा देने वाला बनेगा।”⁴

समय और समाज की इन बदलती स्थितियों के बारे में समकालीन कवि आज काफ़ी सजग और सचेत है। क्योंकि साहित्य और समाज कि सही परख ही किसी कवि को महत्वपूर्ण बनाती है। वस्तुतः “साहित्य की जड़ें समाज में होती हैं। वह स्वयं एक सामाजिक उत्पाद है। वह अपनी सामाजिक भूमिका के कारण ही मानवीय परंपरा का अंग बन सका है।”⁵ वास्तविकता तो यह है कि “किसी भी युग का साहित्य उस समय के संसार और समाज के प्रचलित धारणाओं से अछूता नहीं रहता। साहित्यकार संसार और समाज के प्रति कोई न कोई दृष्टिकोण अपनाए बिना तो रचना कर ही नहीं सकता।”⁶ लोकानुभूति की भावना से प्रेरित होने के कारण साहित्य का समाज से घनिष्ठ संबंध रहता है। हर युग में कवि को अपने ढंग से अपने समय के समाज की वास्तविकता को व्यक्त करने के लिए एक नए रूपाकार की भी तलाश करनी होती है। “एक ऐसे समाज में जो संघर्षशील समाज है, पूँजीवादी समाज है, निरंतर अपनी स्थिति से जूझता हुआ समाज है, बदलता हुआ समाज है, ऐसे में एक सार्थक कवि की भूमिका यही हो सकती है कि वह अपने समय के अंतर्विरोधों को पहचाने और सार्थक अभिव्यक्ति अपनी कविता में करे। अपने समाज के, अपने समय के अंतर्विरोध और स्वयं अपने भीतर के अंतर्विरोध इन तीनों की गहरी तीखी पहचान और उस अंतर्विरोध को व्यक्त करने के लिए वैसी समर्थ भाषा, रूपाकार इसकी खोज आवश्यक है।”⁷

निसंदेह समकालीन कवि लगातार मूल्यों को क्षरित होते देख रहा है। हमारे सांस्कृतिक मूल्यों को उपभोक्तावादी संस्कृति किस तरह लील रही है इसका बोध कवि को है। हमें अपने जीवन मूल्य को सुरक्षित रखना होगा। जीवन मूल्य हमारी प्राथमिक आवश्यकताएँ हैं, जो आज कठिन होती जा रही हैं। संस्कृति और सभ्यता पर लगातार हमला हो रहा है, परिवेश

उजड़ रहा है ऐसे में कवि को लग रहा है जैसे अपने देश को किसी की बुरी नज़र लग गई है। कवि विनोद कुमार शुक्ल अपनी कविता 'बुरी नजर' के माध्यम से आंतकवाद, सम्प्रदायवाद जैसी अमानवीय ताकतों से सबको बचाना चाहते हैं-

*"मुझे बचना है/एक एक कर/ अपनी प्यारी दुनिया को/ बुरे लोगों की नजर है इसे खत्म कर देने को।"*⁸

वस्तुतः समकालीन कवि विश्व में फैले आंतकवाद, क्रूडता, अमानवीयता आदि के फैलाव से चिंतित है और चाहता है कि उदारता और सहृदयता का विकास हो और हम सब इस नासूर से निजात पाएँ। सहृदयता, कृतज्ञता, धन्यवाद और प्रेम जैसे शब्द हमारे जन-जीवन में विकसित हों वे सभी में प्रेम देखना चाहता है-

*"यह मेरा सौभाग्य था कि मुझे प्यार मिला / मैं उसे धन्यवाद देना चाहता था / कृतज्ञ होना चाहता था/ और हर जगह यहाँ तक कि हमेशा उसे पाना चाहता था।"*⁹

समय के साथ कठिन दौर क्रमशः बढ़ता ही जा रहा है और यह भी सही है कि वह भारतीय समाज और कविता से गया भी नहीं है। अपने समय और समाज का कठिन द्वंद्व आज भी बदस्तूर जारी है। भारतीय राजनीति का यह भी यथार्थ है- *"काजू भूनी प्लेट में, व्हिस्की गिलास में/ उतारा है रामराज विधायक के निवास में"* (आदम गॉडवी) कहना न होगा कि आम आदमी के लिए रामराज आज भी आकाश कुसुम है। भ्रष्टाचार एक सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्य के रूप में स्थापित किया जा रहा है। हमारी सौंदर्यबोधी चेतना को भ्रमित किया जा रहा है। हम बचपन से सीखते-समझते चले आ रहे हैं कि दाग अच्छे नहीं होते किन्तु संचार माध्यम का सहारा लेकर उपभोक्तावादी संस्कृति के फैलाव में हमें समझाया जाता है कि दाग अच्छे हैं। हकीकत में, "उपभोक्तावाद के फैलाव के साथ ही संस्कृति उद्योग में परिवर्तित हो रही है। क्योंकि संस्कृति के उद्योग से उपभोग कि संस्कृति का गहरा रिश्ता है। कोई भी उद्योग केवल उपभोग की वस्तु पैदा नहीं करता, उस वस्तु की जरूरत और इच्छा भी पैदा करता है।... आजकल संस्कृति का उद्योग अत्यंत तेजी से फैल रहा है और समाज के सांस्कृतिक जीवन में उसका असर लगातार बढ़ रहा है। यह संस्कृति का उद्योग मायावी संस्कृति के वर्चस्व का साधन है।"¹⁰

इसका स्वाभाविक असर समकालीन कविता पर पड़ा है इससे इंकार नहीं किया जा सकता है। कविता संकट की ओर है, ऐसे में हमें समस्या की जड़ की तलाश करनी होगी और तभी साहित्य भी बचेगा। अन्तरराष्ट्रीय पूँजी के बढ़ते नियंत्रण, बाज़ार के वर्चस्व, भूमंडलीकरण का आकर्षण, संचार माध्यमों के अभूतपूर्व विस्तार और साम्राज्यवादी देशों की आक्रामक राजनीति ने हमारे सामने कई चुनौतियाँ खड़ी की है। उन चुनौतियों में महत्वपूर्ण एक चुनौती है- सामान्य नागरिक की विवेकशीलता का संरक्षण। "समकालीन कविता के साथ एक अजीब बात हो रही है कि एक पढ़ा-लिखा पाठक या श्रोता भी उसमें आये ब्यौरों को केवल सूचना के स्तर पर ग्रहण कर रहा है। कविता आज पढ़े-लिखे श्रोता या पाठक को झकझोर नहीं पा रही

है, तो क्या कविता में कहीं कोई कमी है या श्रोता या पाठक ही किसी दूसरी मिट्टी का बना हुआ है।”¹¹ वस्तुतः इस तरह कविता का सामान्य पाठक वर्ग से काटना वर्तमान समय के कविता के सामने खड़ी सबसे बड़ी चुनौती है। हमें यह याद रखना होगा कि यह जो सामान्य पाठक-वर्ग है वही समकालीन सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक-राजनीतिक चुनौतियों का भोक्ता भी है और उसी से समकालीन हिंदी कविता दूर होती जा रही है जो कि एक चिंता का विषय है।

इसके साथ ही वर्तमान में, कविता और प्रकाशक के अंतर्संबंधों की खोजबीन करें तो अक्सर यह कहा और सूना जाता है कि हिंदी कविता-संग्रह को छपने के लिए प्रकाशक तैयार नहीं होते हैं। जवरीमल पारख लिखते हैं कि “इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि आज प्रकाशक कविताओं की किताबें आसानी से छपने को तैयार नहीं होते, क्योंकि उनके खरीददार नहीं हैं।”¹² यह विचित्र संयोग है कि खरीददार नहीं होने के बावजूद हिंदी के कवियों को पुरस्कार भी मिल रहे हैं लेकिन कविता को पाठक नहीं मिल रहे हैं। लेकिन यहाँ यह उद्धृत करना जरूरी है कि कविता-संग्रह की कितनी प्रतियाँ छपती है इस तथ्य की सही जानकारी तो प्रकाशक ही दे सकता है। लेकिन प्रकाशक ऐसी जानकारी साझा क्यों करेगा।

इन विषम परिस्थितियों में भी यह सुखद संयोग है कि हिंदी में अलग-अलग स्थानों से नियमित और अनियमित निकलने वाली लघु-पत्रिकाओं की संख्या लगभग तीन सौ से अधिक है। यह लघु पत्रिकाएँ सामान्य पाठक तक कविताओं को पहुँचाने के सबसे सशक्त माध्यम हैं। तकनीक के बढ़ते फैलाव के परिणामस्वरूप पिछले कुछ वर्षों से वेबसाइटों और ब्लागों पर भी पाठकों का विस्तार हुआ है। बहुत सी पत्र-पत्रिकाएँ इन्टरनेट पर उपलब्ध हैं। स्वतंत्र रूप से वेब-पत्रिकाएँ भी नियमित रूप से निकल रही हैं, जिसके माध्यम से नए कवि और पाठक भी सामने आ रहे हैं। लेकिन हमें यह समझना होगा कि यह पाठक निश्चय ही सामान्य पाठक नहीं है। इसीलिए मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं कि “आज की अधिकांश हिंदी कविता का जनजीवन पर कोई खास प्रभाव नहीं है और उससे व्यापक समाज का कोई लगाव भी नहीं है, क्योंकि उसका स्वभाव अभिजन समुदाय की अभिरुचि के अनुकूल है, व्यापक समाज की आकांक्षा के अनुरूप नहीं।”¹³

इन सबके बावजूद आज का कवि इन चिंताओं को अपनी काव्यानुभूति का हिस्सा बना चाहता है। क्योंकि इक्कीसवीं सदी के साथ जैसे-जैसे निर्धनता, गरीबी, बेकारी, शोषण, भ्रष्टाचार, महँगाई, अनैतिकता, अमानवीयता बढ़ती गयी यथार्थ निरंतर भयावह होता गया है। कवियों को आज के समय में मनुष्य के सामने खड़े संकटों का बोध है और वह उसे अभिव्यक्त भी कर रहा है। कवि केदारनाथ सिंह के शब्दों में “पर मौसम/ चाहे जितना खराब हो/ उम्मीद नहीं छोड़ती कविताएँ/ वह किसी अदृश्य खिड़की से/ चुपचाप देखती रहती है/ आते-जाते को/ और बुदबुदाती है/ धन्यवाद-धन्यवाद।” उम्मीद न छोड़ना मनुष्यता की विजय है।

स्पष्टतः बदलते हुए सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक व आर्थिक परिदृश्य में समकालीन कविता चुनौतियों का सामना करते हुए भी अपनी प्रभावी भूमिका को लेकर आश्वस्त है। आज की कविता में संशय, असमंजस अथवा अनिर्णय की स्थिति नहीं है। उसके संवेदना-संसार का फलक विस्तृत है। इसीलिए वह हमारे लिए आज भी शक्ति-पूज है।

संदर्भ सूची :

1. आलोचना पत्रिका, पृष्ठ 43
2. मंगलेश डबराल, आवाज भी एक जगह है, पृष्ठ 58
3. लक्ष्मीनारायण मिश्र, जनसत्ता, 2 मार्च, 2012
4. सुनील, जनसत्ता, 25 फ़रवरी 2012
5. श्यामाचरण दूबे, 'साहित्य और समाज' लेख से
6. श्यामाचरण दूबे, 'साहित्य और समाज' लेख से
7. केदारनाथ सिंह, पूर्वग्रह, अंक 63-64, पृष्ठ 56
8. विनोद कुमार शुक्ल, सब कुछ होना बचा रहेगा, पृष्ठ 48
9. लीलाधर जगूड़ी, कवि ने कहा, पृष्ठ 56
10. मैनेजर पाण्डेय, 'आज का समय और हिंदी कविता' लेख से
11. विजय कुमार, कविता की संगत, पृष्ठ 26
12. जनसत्ता, 26 फ़रवरी, 2012
13. मैनेजर पाण्डेय, 'आज का समय और कविता का संकट' लेख से

तुलसी की भक्ति दृष्टि : नवधा भक्ति

डॉ० अरुण कुमार मिश्र

असि० प्रोफेसर, हिन्दी

एम०डी०पी०जी० कॉलेज, प्रतापगढ़

सम्बद्ध : प्रो० रा०सि० विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सनातन जीवन दर्शन तथा धर्म परम्परा में ईश्वर की प्राप्ति सर्वप्रमुख उद्देश्य के रूप में प्रख्यापित की गयी है। मानव जीवन का परमलक्ष्य 'ब्रह्म' की प्राप्ति ही है। वैदिक साहित्य के अनुसार परब्रह्म निराकार है। ब्रह्म प्रकृति और जीव के गुणों से परे है। निर्गुण होते हुए भी ब्रह्म स्वाभाविक गुणों से युक्त होता है। 'ब्रह्म' के ऐसे स्वरूप को सगुण रूप कहते हैं। आराधना की दृष्टि से ईश्वर का सगुण स्वरूप ही श्रेयस्कर है। यद्यपि सन्त शिरोमणि तुलसीदास ने सगुण तथा निर्गुण दोनों स्वरूपों में समन्वय किया है—

सगुणहिं अगुणहिं नहिं कछु भेदा। गावहिं श्रुति पुरान बुध वेदा।।
अगुण अरुप अलख अज जोई। भगत प्रेमवस सगुन सो होइ।।¹

ईश्वर की प्राप्ति के तीन मार्ग बताये जाते हैं। पहला ज्ञान मार्ग, दूसरा भक्ति मार्ग तथा तीसरा कर्ममार्ग। ज्ञान मार्ग में ज्ञान द्वारा ब्रह्म प्राप्ति का विधान है तो भक्ति मार्ग में भक्ति अथवा ईश्वर में पूर्ण अनुराग तथा समर्पण भाव द्वारा 'ब्रह्म' प्राप्ति का विधान है। मध्य युगीन सन्त कवियों ने भक्ति को कर्म तथा ज्ञान से श्रेष्ठ बताया है। सगुण भक्ति काव्य धारा के दो महान कवियों सूर तथा तुलसी ने भी भक्ति को श्रेष्ठ बताया है। सूरदास भक्ति के बिना भगवद् प्राप्ति असम्भव मानते हैं—

रे मन समुझि सोचि विचार।
भक्ति बिनु भगवन्त दुर्लभ कहत निगम पुकारि।।²

तुलसी ने भी सूरदास के इसी मन्तव्य को स्वीकार किया है तथा रामचरितमानस में उल्लेख किया है—

मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा। किये जोगतप ज्ञान विरागा।।³

सन्त तुलसी ने उस कुल को भ्रंजी धन्य कहा है जिसमें भगवत्यपरायण भक्त उत्पन्न होता है।

सो कुल धन्य उमा सुनु, जगत पूज्य सुपुनीत।
श्री रघुबीर परायन, जेहि नर उपज विनीत।।⁴

तुलसी की भक्ति दृष्टि अलौकिक है। तुलसी का 'ब्रह्म' अपने भक्त के प्रेमवश उसी प्रकार प्रकट हो जाता है जिस प्रकार काठ से अग्नि। तुलसी के अनुसार—

अग जग मय सब रहित विरागी। प्रेम ते प्रभु प्रकटइ जिमि आगी।।⁵

तुलसीदास सगुण शाखा के भक्त कवि हैं। उनके आराध्य मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम स्वयं 'ब्रह्म' के अवतार हैं। रामचरितमानस उनकी अमूल्य कृति है। रामचरितमानस में राम को ही ब्रह्म घोषित किया गया है—

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अविगत अलख अनादि अनूपा।।
सकल विकार रहित गतभेदा। कहि नित नेति निरूपहिं वेदा।।⁶

तुलसी के राम अपने भक्तों की रक्षा के लिए ही मनुष्य रूप में अवतरित होते हैं और नाना प्रकार के लीला प्रसंगों के द्वारा जगत का कल्याण करते हैं।

भगत भूमि भुसुर सुरभि, सुरहित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज तन, सुनत मिटहिं जग जाल।।⁷

तुलसीदास की मान्यता है कि निर्गुण 'ब्रह्म' अपने भक्त के प्रेम के कारण ही मनुष्य शरीर धारण कर लौकिक पुरुष के अनुरूप विभिन्न भावों का प्रदर्शन करते हैं।

भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तन भूप।
किये चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप।।⁸

तुलसी न सिर्फ अनन्य रामभक्त थे, वरन् अपने समय के सचेत लोक नायक भी थे। तुलसी की भक्ति भावना में लोकमंगल की प्रबल भावना दृष्टिगोचर होती है। माता पार्वती द्वारा भगवान शिव से राम कथा के विषय में प्रश्न करने पर भगवान शिव ने रामकथा को लोकहितकारी कहा है—

कथा जो सकल लोक हितकारी। सोइ पूँछन चह शैल कुमारी।।⁹

माता पार्वती के प्रश्नों को सुनकर भोलेनाथ अत्यन्त प्रसन्न होकर उनकी प्रशंसा करते हैं—

धन्य—धन्य गिरिराज कुमारी। तुम समान नहीं कोउ उपकारी।
पूछेउ रघुपति कथा प्रसंगा। सकल लोक जगपावनि गंगा।।¹⁰

रामभक्ति में रत तुलसी रामचरितमानस रूपी गंगा में भक्ति को ही निर्मल धारा के रूप में प्रख्यायित करते हैं।

राम भक्ति जँह सुरसरि धारा। सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा।।

रामचरितमानस भक्ति सरोवर है। इस सरोवर को राम भक्ति रूपी कमल से विभूषित जानकर सतपुरुष सदैव इसमें अवगाहन करते हैं। इस सरोवर में बिना स्नान किये जीवन का ताप तथा दुःख समाप्त नहीं होता। सन्त तुलसी लिखते हैं—

राम भगति भूषित जिय जानी। सुनिहहिं सुजन सराहि सुबानी।
रामचरित सर बिनु अन्हवाये। सो श्रम जाइ न कोटि उपाये।।¹²

भारतीय वांग्मय में भक्ति के अनेकों दृष्टांत प्राप्त होते हैं। भागवत पुराण में नौ प्रकार की भक्ति का उल्लेख प्राप्त होता है। श्रीमद्भागवत के अनुसार—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनं।
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्यनिवेदनं।।¹³

इस प्रकार नौ प्रकार की भक्ति— श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद—सेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन का विस्तृत विवेचन श्रीमद्भागवत में प्राप्त होता है। एक भक्त कवि के रूप में यदि हम तुलसी का मूल्यांकन करें तो हम यह कह सकते हैं कि तुलसी की जितनी भी कृतियां हमें उपलब्ध होती हैं उन सबमें भक्ति की प्रधानता ही परिलक्षित होती है। समस्त तुलसी वांग्मय का अवलोकन करें तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि तुलसी प्रधानतः सगुण भक्ति के पोषक हैं। वे दशरथ पुत्र राम को अपना आराध्य मानकर उनको विष्णु का अवतार घोषित करते हैं और यह मानते हैं कि स्वयं साक्षात् नारायण ने अपने भक्तों का उद्धार करने के लिए पृथ्वी पर अवतार धारण किया है।

एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानन्द पर धामा।।
से केवल भगतन हित लागी। परम कृपाल प्रनत अनुरागी।।
जेहिं जन पर ममता अति छोदू। जेहिं करुना करि कीन्ह न कोहू।।¹⁴

अर्थात्— वह लीला केवल भक्तों के लिए ही करते हैं क्योंकि भगवान परम कृपालु है और शरणागत वत्सल हैं, जिनकी भक्तों पर बड़ी ममता और कृपा है। उन्होंने एक बार जिस पर कृपा कर

दी, उस पर फिर कभी क्रोध नहीं किया। तुलसी के राम समस्त सृष्टि के कर्ता, धर्ता और संहारकर्ता हैं। तुलसी की सम्पूर्ण भक्ति दास्य भावना पर आधारित है। विनय पत्रिका में भी तुलसी ने अपनी भक्ति दृष्टि को रेखांकित किया है—

तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रान ते प्यारो।
जासो होय सनेह राम पद एतो मतो हमारो।।¹⁵

रामचरितमानस में भक्ति प्रसंगों का उल्लेख कई स्थानों पर प्राप्त होता है जिनमें भगवान राम द्वारा लक्ष्मण जी को भक्ति, ज्ञान तथा वैराग्य का उपदेश तथा माता शबरी को नवधा भक्ति का दिया गया उपदेश प्रमुख रूप से उल्लिखित किये जा सकते हैं। अब हम मूलतः इन्हीं प्रसंगों को आधार बनाकर तुलसी की भक्ति दृष्टि को स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे।

पंचवटी प्रवास के समय लक्ष्मण जी द्वारा भगवान राम से पाँच प्रश्न किये गये। लक्ष्मण जी का प्रश्न ज्ञान, वैराग्य, माया, भक्ति तथा ईश्वर और जीव में भेद के विषय में था। यह प्रसंग द्रष्टव्य है—

एक बार प्रभु सुख आसीना। लक्ष्मिन बचन कहे छलहीना।।
सुरनर मुनि सचराचर साँई। मैं पूँछऊँ निज प्रभु की नाई।।
मोहि समुझाइ कहउ सोई देवा। सब तजि करौँ चरन रज सेवा।।
कहत ज्ञान विराग अरु माया। कहहु सो भगति करहु जेहि दाया।।

ईश्वर जीव भेद प्रभु सकल कहहु समुझाई
जाते होई चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ।।¹⁶

अर्थात्— एक बार प्रभु श्रीराम जी सुख से बैठे हुए थे। उसी समय लक्ष्मण जी ने उनसे छलरहित अर्थात् सरल बचन कहे। हे समस्त देवताओं, मनुष्यों, मुनियों एवं चराचर के स्वामी! मैं आपको अपना स्वामी समझकर आपसे कुछ पूँछना चाहता हूँ। हे देव! मुझे समझाकर वही कहिये जिससे सब कुछ छोड़कर मैं आपकी चरणरज की ही सेवा करूँ। हे प्रभो! आप ज्ञान, वैराग्य, माया का वर्णन कीजिए और उस भक्ति को कहिये जिसके कारण आप दया करते हैं। ईश्वर और जीव के भेद को भी समझाइये जिससे आपके चरणों में मेरी प्रीति हो और मेरे शोक, मोह तथा भ्रम नष्ट हो जाएँ। लक्ष्मण जी के ऐसे सरल बचन सुनकर श्रीराम ने उनके समस्त प्रश्नों का उत्तर दिया—

थोरेहिं मैं सब कहउँ बुझाई। सुनहु तात मति मन चितलाई।।¹⁷

अर्थात् है लक्ष्मण! अब मैं तुम्हें सब कुछ थोड़े में ही समझाकर कहता हूँ। हे तात! अब अपनी बुद्धि, मन तथा चित्त लगाकर सुनो। श्रीराम ने सर्वप्रथम माया से सम्बन्धित प्रश्न का उत्तर देते हुए माया के भेदों का वर्णन किया—

मैं अरुमोर तोर तै माया। जेहिं बस कीन्हें जीव निकाया।।
गो गोचर जँह लागि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई।।
तेहिंकर भेद सुनहु तुम सोऊ। विद्या अपर अविद्या दोऊ।।
एक दुष्ट अतिशय दुःखरूपा। जावस जीव परा भव कूपा।।
एक रचइ जग गुण बस जाके। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताके।।¹⁸

अर्थात्— मैं और मेरा, तू और तेरा, यही माया है जिसने समस्त प्राणिमात्र को अपने वश में कर रखा है। हे भाई! इन्द्रियों द्वारा उपभोग किये जाने वाले विषयों और जहाँ तक मन जा सकता है, उन सभी को माया ही समझना। इस माया के भी दो रूप होते हैं। एक अत्यन्त ही दुःख रूप है और जिसके वशीभूत होकर जीव संसार रूपी कुएँ में पड़ा रहता है। इसे अविद्या कहा जाता है। दूसरी वह जिसके वश में सभी प्रकार के गुण होते हैं और वही भगवान से प्रेरित होकर जगत की रचना करती है। उसे सिर्फ भगवान का सहारा होता है, उसका अपना बल कुछ भी नहीं होता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सन्त तुलसी ने माया के दोनों स्वरूपों अविद्या तथा विद्या को सम्यक रूप से विवेचित किया है। तुलसी की इसी दृष्टि का समर्थन ईशोपनिषद में भी प्राप्त होता है—

विद्यां च अविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह ।
अविद्यया मृत्युंतीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥¹⁹

अर्थात् जो विद्या और अविद्या इन दोनों को ही एक साथ जानता है, वह अविद्या से मृत्यु को पार करके विद्या से अमृत तत्व (देवत्व) प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार विद्या से आशय उस ज्ञान से है जिसे प्राप्त करने के पश्चात् और कुछ जानना शेष न रह जाये। इस प्रकार अविद्या रूपी माया जीव को जन्म मरण के चक्कर में फँसाकर उसे भटकाती रहती है तो विद्यारूपी माया उसे जीवन-मृत्यु से मुक्त करवाती है।

माया-विवेचन के पश्चात् 'ज्ञान' तथा वैराग्य के विषय में वर्णन है। ज्ञान की विवेचना करते हुए श्रीराम ने कहा-

ग्यान मान जँह एकउ नाहीं । देख ब्रह्म समान सब माँही ॥
कहिय तात सो परम विरागी । तृन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी ॥²⁰

अर्थात्- ज्ञान वह है जिसमें मान आदि दोषों का सर्वथा अभाव है और जो सभी प्राणियों में समान रूप से 'ब्रह्म' भाव आलोकित करता है। हे तात! परम वैराग्यवान उसी को कहना चाहिए जो समस्त सिद्धियों तथा तीनों गुणों को तिनके के समान त्याग चुका हो।

चौथे प्रश्न के रूप में ईश्वर तथा जीव के मध्य भेद को निरूपित किया गया है-

माया ईस न आपु कहँ जान करिअ सो जीव ।
बंध मोक्ष प्रद सर्व पर माया प्रेरक सीव ॥²¹

अर्थात् जो माया को, ईश्वर को और अपने स्वरूप को नहीं जानता उसे जीव कहना चाहिए। जो इन जीवों को उनके कर्मानुसार बंधन और मोक्ष का प्रदाता है और माया का प्रेरक तथा उससे परे है, वही ईश्वर है।

पाँचवें प्रश्न के रूप में लक्ष्मण जी ने भक्ति तथा उसे प्राप्त करने के साधनों के विषय में पूँछा है। भगवान राम भक्ति की विवेचना करते हुए कहते हैं-

धर्म ते विरति जोगते ग्याना । ग्यान मोक्ष प्रद वेद बखाना ॥
जते वेगि द्रवउँ मैं भाई । सो मम भगति भगत सुखदायी ॥
से सुतंत्र अवलम्बन आना । तेहिं आधीन ग्यान विज्ञाना ॥
भगति तात अनुपम सुख मूला । मिलई जो संत होई अनुकूला ॥²²

अर्थात्- धर्म के आचरण से वैराग्य और योग से ज्ञान होता है तथा ज्ञान ही मोक्ष प्रदान करता है ऐसा वेदों में वर्णित है। हे भाई वह भक्ति ही है, जो भक्तों को सुख देने वाली है और जिससे मैं अति शीघ्र प्रसन्न हो जाता हूँ। वह भक्ति परम स्वतंत्र होती है। उसे ज्ञान विज्ञान आदि किसी भी अन्य साधन की कोई आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि ज्ञान-विज्ञान तो उसके अधीन ही रहते हैं। हे तात! भक्ति परम अनुपम तथा समस्त सुखों की मूल है और सन्त महापुरुषों की सेवा से ही प्राप्त होती है।

भक्ति को प्राप्त करने के मार्ग के विषय में श्रीराम ने विस्तार से समझाया है-

भगति के साधन कहँ बखानी । सुगम पंथ मोहि पावहिं प्राणी ॥
प्रथमहिं विप्र चरन अति प्रीती । निज निज कर्म निरत श्रुति रीती ॥
एहि कर फल पुनि विषय विरागा । तब मम धर्म उपज अनुरागा ॥
श्रवणादिक नव भक्ति दृढाही । मम लीला रति अति मन माँही ॥
सन्त चरन पंकज अति प्रेमा । मन क्रम बचन भजन दृढ नेमा ॥
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा । सब मोहि कहँ जानै दृढ सेवा ॥
मम गुन गावत पुलक सरीरा । गद्गद गिरा नयन बह नीरा ॥
काम आदि मद दंभ न जाके । तात निरन्तर बस मैं ताके ॥

बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम ।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा विश्राम ।।²³

अर्थात् हे लक्ष्मण अब मैं भक्ति के साधनों को विस्तार से कहता हूँ। भक्ति ही वह सुगम मार्ग है जिससे जीव मुझको सहजता से प्राप्त कर सकता है। प्रथमतः जीव को ब्राह्मणों अर्थात् सत् पुरुषों के चरणों में अत्यन्त प्रीति के साथ वेद विहित कर्मों में निरत रहना चाहिए। इसके फलस्वरूप उसे विषयों के प्रति वैराग्य होगा तथा भगवत धर्म में प्रेम उत्पन्न होगा, श्रवणादिक नवधा भक्ति दृढ़ होगी और मेरी अर्थात् ईश्वर की लीला प्रसंगों के प्रति अत्यंत प्रेम होगा। जिसका सन्त महापुरुषों के चरणों में प्रेम होता है तथा जो मन बचन और कर्म से मुझको ही अपना गुरु, माता, पिता, भाई, पति तथा देवता सब कुछ मानता है, मेरा गुणगान करते-करते जिसका शरीर पुलकित हो जाता है और नेत्रों से प्रेमाश्रुओं का प्रवाह होने लगता है, जिसमें काम मद दंभ आदि का सर्वथा अभाव होता है, मैं सदा उसके वश में रहता हूँ, जो मन वचन तथा कर्म से सिर्फ मेरा चिंतन करते हैं और निष्काम भाव से मेरा भजन करते हैं, उनके हृदय कमल में मैं सदा विश्राम करता हूँ।

इस प्रकार श्रीराम द्वारा लक्ष्मण जी को दिये गये उपदेश में तुलसी की भक्ति भावना परिलक्षित होती है। भक्ति के प्रति प्रबल विश्वास तुलसी वांगमय की विशिष्टता है। सन्त तुलसी के इसी मत को श्रीमद्भागवत से भी समर्थन प्राप्त होता है। भगवान कृष्ण उद्धव जी से कहते हैं—

वाग्गद्गदा द्रवते यस्यचित्तं
कदन्त्यभीक्षणं हसति क्वचिच्च ।
विलज्ज उद्गायीत नृत्यते च
मद्भक्ति युक्तो भुवनं पुनाति ।।²⁴

अर्थात् जिसकी वाणी मेरे नाम, गुण और लीला का वर्णन करते-करते गद्गद हो जाती है, जिसका चित्त मेरे रूप, गुण, प्रभाव और लीलाओं को याद करते-करते द्रवित हो जाता है, जो बार-बार रोता रहता है तथा कभी-कभी हँसने लग जाता है, जो लज्जा छोड़कर प्रेम में मग्न हुआ पागल की भाँति ऊँचे स्वर से गायन करता है और नाचने लग जाता है, ऐसा मेरा भक्त संसार को पवित्र कर देता है।

माता शबरी के प्रसंग में सन्त तुलसी की भक्ति दृष्टि को समझा जा सकता है। इस प्रसंग में तुलसी ने श्रीराम से 'नवधा भक्ति' का विशद विवेचन प्रस्तुत कराया है। नवधा भक्ति रामचरितामनस के अरण्यकाण्ड में श्रीराम शबरी संवाद के अन्तर्गत दृष्टव्य है— श्रीराम के शबरी आश्रम में पहुँचने पर माता शबरी ने उनका विधिवत सत्कार किया तथा उनसे भक्ति का उपदेश करने का आग्रह किया, जिससे माता शबरी को समझाते हुए श्रीराम कहते हैं—

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता । मानउँ एक भगति कर नाता ।।
जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई । धन बल परिजन गुन चतुराई ।।
भगति हीन नर सोहइ कैसा । बिनु जल वारिद देखिय जैसा ।।
नवधा भगति कहउँ तोहिं पाहीं । सावधान सुनु धरु मन माहीं ।।
प्रथम भगति सन्तन कर संगी । दूसर रतिमय कथा प्रसंगी ।।
गुरु पद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान ।
चौथि भगति मम गुन गन, करइ कपट तजि गान ।।
मंत्र जाप मम दृढ़ विश्वासा । पंचम भजन सो वेद प्रकाशा ।।
छठ दमशील विरति बहु कर्मा । निरत निरन्तर सज्जन धर्मा ।।
सातवँ सम मोहिमय जग देखा । मोते सन्त अधिक करि लेखा ।।
आठवँ यथा लाभ सन्तोषा । सपनेहु नहिं देखइ पर दोषा ।।
नवम सरल सब सन छलहीना । मम भरोस हिम हरष न दीना ।।
नव मँह एकउ जिनके होई । नारि पुरुष सचराचर कोई ।।
सोउ अतिसय प्रिय भामिनि मोरे । सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे ।।²⁵

अर्थात्— श्रीराम ने कहा— हे भामिनी! मेरी बात सुनो। मैं तो केवल एक भक्ति का ही सम्बन्ध मानता हूँ क्योंकि जाति, पाँति, कुल, धर्म, बड़ाई, धन, बल, परिवार, गुण तथा चतुरता इन सबके होते हुए भी भक्ति से विहीन मनुष्य जलहीन बादलों के समान ही दिखायी पड़ता है। इसलिए अब मैं तुझसे

अपनी 'नवधा' भक्ति कहता हूँ जिसे तुम सावधान होकर सुनो और अपने मन में धारण करो। पहली भक्ति सन्तों का संग तथा दूसरी भक्ति मेरे कथा प्रसंगों में अनुराग है। अभिमान रहित होकर गुरु के चरण कमलों की सेवा तीसरी भक्ति तथा कपट छोड़कर मेरे गणगणों का गान चौथी भक्ति है। मेरे (राम) मंत्र का जाप और मुझमें दृढ़ विश्वास, जो कि वेदों में वर्णित है, पाँचवीं भक्ति है। इन्द्रियों का निग्रह, शील (अच्छा चरित्र) बहुत कार्यों से वैराग्य और निरन्तर सन्त धर्म में संलग्न रहना छड़वीं भक्ति है। समस्त संसार को समभाव से मुझमें ओत-प्रोत देखना तथा मुझसे अधिक सन्तों का सम्मान करना सातवीं भक्ति है। जीवन में जो कुछ भी प्राप्त हो जाए, उसी में संतुष्ट रहना तथा स्वप्न में भी पराये दोष को न देखना यह आठवीं भक्ति है। सभी के साथ कपट रहित व्यवहार अपने हृदय में मेरा भरोसा रखना तथा किसी भी अवस्था में हर्ष और विषाद का न होना नवीं भक्ति है। इन नवों प्रकार की भक्ति में कोई एक भी जिनके पास होती है वह स्त्री-पुरुष जड़-चेतन कोई भी हो वह मुझे अत्यन्त प्रिय है। हे भामिनी तुझमें तो ये समस्त प्रकार की भक्ति विद्यमान है। इसीलिए तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो।

उपरोक्त समस्त प्रसंगों को दृष्टिगत करने पर तुलसी की भक्ति दृष्टि अपने आप स्पष्ट हो जाती है। तुलसी भक्त और भक्ति की अनुपम छटा अपने साहित्य में इस तरह उकेरते हैं कि किसी अन्य कवि के लिए ऐसा कर पाना सर्वथा दुर्लभ ही है। तुलसीदास का भक्ति मार्ग ज्ञान मार्ग के दम्भ को सर्वथा समाप्त कर देता है। तुलसी ने अपने को रामभक्ति प्रसंग में चातक के समान कहा है।

एक राम घनश्याम हित चातक तुलसीदास।।

एक भरोसो एक बल, एक आस विश्वास।।

तुलसी के भक्ति साहित्य में भक्ति के पाँचों सोपान परिलक्षित होते हैं। नवधा भक्ति के रूप में तुलसी ने अपनी भक्ति दृष्टि को स्पष्ट किया है। तुलसी की भक्ति दास्य भावना से परिपूर्ण है क्योंकि वे राम को सबसे अधिक महान मानते हैं तथा निरन्तर उनके चरणों में रत रहना चाहते हैं। रामचरितमानस के समापन स्थल पर तुलसी स्पष्ट करते हैं—

कामिहिं नारि पियारि जिमि लोभिहिं प्रिय जिमि दास।

तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोहि राम।।²⁷

अर्थात् जिस प्रकार कामी पुरुषों को नारी तथा लालची व्यक्ति को धन अत्यन्त प्रिय होता है, उसी प्रकार हे रघुनाथ! आप हमें सदैव प्रिय लगें।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि गोस्वामी तुलसी का सम्पूर्ण जीवन दर्शन भक्ति सिद्धान्त पर ही आधारित है। अपने वांग्मय में उन्होंने भक्ति का जो स्वरूप प्रस्तुत किया है, वह अत्यन्त ही विलक्षण है। भक्ति मार्ग को समस्त मार्गों से श्रेष्ठ प्रतिपादित किया गया है क्योंकि इसी मार्ग का अनुशरण करता हुआ जीव सहज ही 'ब्रह्म' को प्राप्त कर लेता है। इसीलिए तुलसी की दृष्टि 'नवधा' भक्ति का प्रतिपादन करती है। यद्यपि गोस्वामी तुलसीदास जी सावना पक्ष के लिए निर्गुण तथा सगुण दोनों रूपों को महत्व देते हैं किन्तु तुलसी के भाव पक्ष में केवल सगुण स्वरूप ही विराजता है। निर्गुण उपासना में ज्ञान का महत्व है किन्तु वे ज्ञान की अपेक्षा भक्ति को महत्व देते हैं, इसलिए 'ब्रह्म' के सगुण व साकार स्वरूप के पोषक हैं। उपरोक्त समस्त तर्कों के आधार पर सन्त तुलसी को भक्ति पथ का श्रेष्ठतम आचार्य घोषित किया जा सकता है।

संदर्भ सूची :

1. रामचरितमानस, बालकाण्ड
2. सूरदास, सूरसागर
3. रामचरितमानस, बालकाण्ड
4. रामचरितमानस, बालकाण्ड
5. रामचरितमानस, बालकाण्ड
6. रामचरितमानस, बालकाण्ड
7. रामचरितमानस, बालकाण्ड

8. रामचरितमानस, बालकाण्ड
9. रामचरितमानस, बालकाण्ड
10. रामचरितमानस, बालकाण्ड
11. रामचरितमानस, बालकाण्ड
12. रामचरितमानस, बालकाण्ड
13. श्रीमद्भागवत, 7 / 5 / 23
14. रामचरितमानस, बालकाण्ड
15. विनय पत्रिका
16. रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड
17. रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड
18. ईशोपनिषद
19. रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड
20. रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड
21. रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड
22. रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड
23. श्रीमद्भागवत, 11 / 14 / 24
24. रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड
25. दोहावली
26. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड
27. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड

मध्यकालीन भारतीय समाज का समाजशास्त्रीय पक्ष

माधुरी कुमारी

पीएच डी शोधार्थी

समाजशास्त्र विभाग

सरदार पटेल विश्वविद्यालय, बालाघाट, मध्य प्रदेश, भारत

भारतीय सामाजिक इतिहास में भक्ति काल का स्थान महत्वपूर्ण है। यह काल महत्वपूर्ण इसलिए है की जहां एक ओर सांस्कृतिक उत्थान की बात देखी जाती है वहीं दूसरी ओर सामाजिक और आर्थिक रूप से भी यह काल महत्वपूर्ण है। सामाजिक और आर्थिक रूप से जब इस काल का अध्ययन किया जाता है तो पता चलता है की भक्ति काल में न केवल भक्ति की धारा बही बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक जागरण की ओर अग्रसर होते पाते हैं। यह इस अर्थ में भी महत्वपूर्ण है कि जब तक सामाजिक और आर्थिक उत्थान नहीं होते तब तक सांस्कृतिक जागरण के भी प्रश्न अधूरे हो सकते हैं। इस संदर्भ में मेरे शोध पत्र में यह दिखाने का प्रयास है की क्या भक्ति काल के सांस्कृतिक जागरण को सामाजिक और आर्थिक उत्थान से जोड़कर देखा जा सकता है। इसको और अधिक स्पष्ट करने के लिए यह कहा जा सकता है की भक्ति काल में सामाजिक और आर्थिक उत्थान में निम्न जातियों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। इसे हम विशेष रूप से संत कबीर जो कपड़ा बुनते थे और जुलाहा जाति से थे वहीं रैदास चमड़े से जूते बनाते थे और जाति से चमार थे। इसी तरह सेना नाई, धन्ना जाट आदि कई संत हैं जो सामाजिक संस्तरण में निम्न जाति से ताल्लुक रखने वाले हैं। अब सवाल उठता है की भक्ति काल में ऐसी कौन सी परिस्थितियां बनी जिसमें निम्न जातियों के बीच सामाजिक-सांस्कृतिक जागरण होता है।

मध्यकालीन भारत में भक्ति काल का वह समय है जब दिल्ली सल्तनत में जिसमें गुलाम वंश, खिलजी वंश, तुगलक वंश, सैयद वंश,लोदी वंश की स्थापना हो चुकी होती थी और यह एक लंबे समय तक चलती रही। भारतीय संस्कृति के मूल में वैदिक धर्म से लेकर बौद्ध धर्म, जैन धर्म से होते हुए हिंदू धर्म की स्थापना होती है और इस स्थापित होते हुए धर्मों के बीच सामाजिक संस्तरण के रूप में जातियां भी मौजूद रहीं हैं। यहाँ पर प्रश्न उठता है कि समाज में निम्न जाति कही जाने वालियों से उन संतों की जो उनकी बानियाँ मिलती हैं उसमें समाज में समानता लाने का प्रयास करते दिखते हैं। यह सब अनायास नहीं हो सकता है। सामाजिक परिवर्तन के सिद्धांत के तहत यह माना जाता है कि सामाजिक परिवर्तन की दिशा तभी तय होती है जब सामाजिक सोच में परिवर्तन होना शुरू होता है। सामाजिक परिवर्तन में समाज में रह रहे जाति, धर्म, वर्ग के लोगों में तो परिवर्तन होता ही है साथ वही परिवर्तन सांस्कृतिक परिवर्तन के रूप में भी नजर आता है। जब तक आर्थिक स्थिति मजबूत नहीं होती तब तक किसी जाति अथवा समुदाय में सामाजिक परिवर्तन की दर को आंका नहीं जा सकता है। इस तरह भक्ति काल के सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक पक्ष को समझने के लिए समाजशास्त्र के अंतर्गत आने वाले विविध विधियों को प्रयोग में लाकर यह दिखाना है। भक्ति काल का समाज सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से उन्नति की ओर जाने वाला जागरण का काल रहा है। इस आधार पर भक्ति काल के समाजशास्त्रीय अध्ययन पक्ष को स्थापित किया जाएगा।

साहित्य और समाज बिना चेतना के जीवित रहना तो दूर अपितु इसके अभाव में वह अपना आकार लेने की भी नहीं सोच सकता। जिस प्रकार चेतना-विहीन प्राणी निष्प्राण हो जाता है, उसी प्रकार चेतना विहीन साहित्य भी विलीन होकर लोगों के मन मस्तिष्क से भी लुप्त हो जाता है। साहित्य

की इसी चेतना से इतिहास भी सायास या अनायास समाविष्ट हो जाता है और इस प्रकार किसी काल का जन्म होता है। भक्ति काल भी अपना आकार लेने से पूर्व चेतना की जिस गति का आभास लगातार करा रहा था उसे हम उस काल के सामाजिक और राजनीतिक वातावरण में भली-भांति महसूस कर सकते हैं। राजनीतिक दृष्टि से तो यह काल मुगल शासकों के अधीन था साथ ही समाज भी संघर्षशील परिस्थितियों से गुजर रहा था। जाति संकीर्णता, नारी की दयनीय दशा के साथ-साथ बौद्ध और जैन धर्म भी विलुप्तता की कगार पर ही थे, आस्था और विश्वासों में धर्म संप्रदाय एवं नैतिक अवधारणाओं में खास प्रकार की रूढ़ियों से ग्रस्त होकर समाज भयाक्रांत स्थिति में जी रहा था। उस युग में अर्थव्यवस्था का मूलाधार कृषि व्यवसाय ही था जिस पर अधिकांश उद्योग-धंधे भी निर्भर थे। साथ ही नए-नए बाजार बनने से मजदूर वर्ग का विकेंद्रीकरण होने लगा था। इसके फलस्वरूप वर्ण व्यवस्था और सामंतवाद के विरोध में निम्न वर्ग में सुगबुगाहट प्रारंभ हो गई। इस सुगबुगाहट को स्पष्ट स्वर भक्ति काल के संतों ने दिया जहां स्पष्ट तौर पर जाती-पांती, रूढ़ी-अंधविश्वास और अंधश्रद्धा के विरोध में संत कबीर दास के उग्र स्वर निम्न जातियों की ढाल बनकर सामने आए।

भक्ति आंदोलन की धारा पर स्पष्ट तौर हम यह कह सकते हैं कि यह कोई आकस्मिक घटना नहीं थी अपितु इसकी उत्पत्ति के लिए सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक कारक वर्षों से कार्यरत थे। इसके परिणाम स्वरूप इस ऐतिहासिक जनचेतना काल का उदय हुआ। हिंदी साहित्य जगत में यह भक्ति काल जिन दो धाराओं को लेकर चल रहा था वह वस्तुतः दो विपरीत विचारों की लड़ाई थी, जिसमें सगुण भक्त वैदिक-ब्राह्मण-संस्कृत-संस्कृति के समर्थक थे और निर्गुण संत न केवल सगुणवाद के अपितु समाज में फैली उन सभी बुराइयों के भी विरोधी थे जो धर्म की आड़ लेकर समाज को दिशा भ्रमित कर रही थी। ऐसे में संत कबीरदास जब यह कहते हैं कि-

मेरा तेरा मनवा कैसे एक होई रे ।

मैं कहता हूं आखिन देखी तू कहता कागद की लेखी।¹

तो धर्म का घालमेल कर लोगों को ठगने वाले धर्म अधिकारियों के प्रति उनका मतभेद स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो जाता है। इतना ही नहीं समाज को जातियों में बांट कर शूद्रों के साथ पक्षपात करने वाले तथाकथित उच्च वर्ग से ये संत अपनी जाति का खुलासा धड़ल्ले से करके असंख्य निम्न जातियों को जिस प्रकार सम्मान एवं गर्व की अनुभूति कराना सिखा रहे थे, वह उनमें आत्मविश्वास भरने का कार्य करता है। रैदास डंके की चोट पर स्वयं को चमार घोषित करते हुए कहते हैं-

कहीं रैदास खलास चमारा ।

जो हम सहरी सु मीत हमारा।²

भक्ति काल में संत साहित्य को लेकर आने वाला यह निर्गुण वर्ग जितना स्पष्ट वक्ता रहा उतने ही तीक्ष्ण व्यंगकार भी। इन्होंने ईश्वर अल्लाह को मंदिर मस्जिद की मूर्तियों और अज्ञान में ढूंढने वालों की न केवल दिल खोलकर निंदा ही की अपितु उनके ऐसे कृत्य पर प्रश्न भी खड़ा कर दिया। कबीरदास जब यह कहते हैं कि-

पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजू पहाड़ ।

ताके से चक्की भली, पीस खाय संसार।।

काकर पाथर जोरि के, मस्जिद लई बनाय ।

ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय।।³

तो उनकी तर्कशक्ति को कोई उच्च कोटि का ब्राह्मण भी काटने की क्षमता नहीं रखता। अब तक का भारतीय समाज जो कहीं धर्म के नाम पर, कहीं जाति के नाम पर और कहीं परंपराओं और अंधविश्वासों के नाम पर बंटा हुआ था, उसे भक्ति आंदोलन में संत कबीर दास के नेतृत्व में पहली बार जाति, धर्म, वर्ग, वर्ण आदि से निरपेक्ष एक मानव संस्कृति की नींव के रूप में देखा गया।

भक्ति आंदोलन के द्वारा संत कबीर ने समाज को एक करके जिस नवजागरण की शुरुआत की उसकी अनवरत परंपरा हमें डॉक्टर अंबेडकर द्वारा लिखित आधुनिक भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षता के रूप में भी मिलती है। अतः इसमें कोई दो राय नहीं है कि भक्ति काल की निर्गुण धारा के अग्रदूत संत कबीर की बानियां आज भी कालजयी बनकर मानवतावाद के उस रूप को बार-बार दोहरा रही हैं जिसे आधुनिक समाज पुनः अपनी धर्माधता के कारण भुला बैठा है। मानव समता की प्रबल उद्घोषक बनकर ये बानियां हर उस काल में अपनी उपस्थिति दर्ज कराती रहेंगी, जब समाज पथभ्रष्ट होकर मानव समता के भाव को भुला बैठेगा।

संदर्भ ग्रंथ

1. कबीर –हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ 247
2. रैदास ग्रंथावली – जगदीश शरण, पृ 181
3. पंचनाद – सं. शमीम शर्मा, पृ 139

बिक्रम सिंह की कहानियों में स्त्री-विमर्श

श्रीमती मीरा देवी
शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
सरदार पटेल महाविद्यालय,
बालाघाट (मध्य प्रदेश)

डॉ. लोपामुद्रा सदाशिवराव बनसोडे
शोध निर्देशिका, हिन्दी विभाग,
सरदार पटेल विश्वविद्यालय,
बालाघाट (मध्य प्रदेश)

प्राकृतिक तथा संवैधानिक दृष्टि से स्त्री व पुरुष को समान माना गया है। सृष्टि के निर्माण की प्रक्रिया स्त्री व पुरुष के सहयोग के बिना असंभव प्रतीत होती है। स्त्री सृष्टि के संसाधनों को जुटाने में बराबरी की भूमिका निभाने में सक्षम है, तो ऐसे कौन से सामाजिक, सांस्कृतिक कारण हैं, जिनके आधार पर स्त्रियों को दोगुना दर्जे का स्थान प्राप्त है। पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री को बराबरी का दर्जा प्राप्त नहीं है। न केवल संपत्ति में बल्कि सामाजिक परम्पराओं व रीति-रिवाजों में स्त्री को स्त्री न मानकर एक भोगवादी वस्तु के रूप में देखा गया है। जैसे स्त्री को निर्बल व असहाय माना गया है और स्त्री की पुरुष के बिना कल्पना भी नहीं की जा सकने की स्थिति में स्थापित किया गया है। कहानीकार बिक्रम सिंह ने अपनी कहानियों में दो तरह के स्त्री पात्रों का वर्णन किया है – एक परम्परावादी स्त्री जो स्त्रित्तव के बोझ में दबी हुई और दूसरी परम्परा को उखाड़ फेंकने वाली। प्रस्तुत आलेख में बिक्रम सिंह की कहानियों में आए स्त्री-विमर्श के विविध आयामों को सामने रखा जाएगा।

बिक्रम सिंह 90 के दशक के कहानीकार रहे हैं। उन्होंने तत्कालीन समाज के सभी पहलुओं को अपनी कहानी में दर्शाने का प्रयास किया है। उनकी कहानियों में बाल विमर्श, दलित विमर्श, ग्रामीण परिवेश, शिक्षा में व्याप्त जातिवाद तथा स्त्री विमर्श के सभी भावात्मक स्थल को स्पर्श करने का प्रयास किया है। स्त्री विमर्श से जुड़ी कहानियों में ब्रह्मपिशाच, जलुआ, पब्लिक पैलेस, टोह, टॉस आदि प्रमुख हैं।

साहित्य समाज की अनुभूति होता है, जो साहित्य सोई हुई चेतना को झकझोर कर रख देता है वही साहित्य के उद्देश्य की कोटि में आता है। प्रेमचंद ने साहित्य का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए लिखा है – बोलचाल से हम अपने करीब के लोगों पर अपने विचार प्रकट करते हैं— अपने हर्ष और शोक के भावों का चित्र खींचते हैं। साहित्यकार वही काम लेखनी द्वारा करता है। हां, उसके श्रोताओं की परिधि बहुत विस्तृत होती है और अगर उसके बयान में सच्चाई है, तो शताब्दियों और युगों तक उसकी रचनाएं हृदयों को प्रभावित करती रहती है।¹ कहानीकार बिक्रम सिंह की कहानियां इस तथ्य पर सार्थक सिद्ध होती हैं।

स्त्री विमर्श स्त्री अस्मिता और स्त्री स्वतंत्रता पर टिका हुआ है। स्त्री विमर्श पुरुषों का विरोध नहीं बल्कि उनके शोषण का विरोध है। स्त्री विमर्श में स्त्री की पीड़ा का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया जाता है। स्त्री को अपनी पीड़ा तथा मानसिक गुलामी से मुक्त होना होगा। बिक्रम सिंह ने अपनी कहानियों के माध्यम से यह दिखाया है कि उनकी कहानियों की स्त्री पात्रा मानसिक गुलाम नहीं है, बल्कि वे सांस्कृतिक बंधनों से अपनी आजादी के रास्ते तलाश कर लेती है। बिक्रम सिंह की स्त्री पात्रा दूसरी स्त्री से प्रेरित होकर अपनी आजादी के रास्ते तलाशती है, उन्हें किसी पुरुष की जरूरत नहीं होती। ये स्त्रियां मानसिक रूप से सक्षम हैं। ये सामाजिक दायरे में रहकर ही समस्याओं का समाधान खोजती हैं। उस परिवेश को छोड़कर नहीं जाती है। जैसे 'जलुआ' कहानी ग्रामीण परिवेश पर आधारित है। इसमें किसानों के अभावग्रस्त जीवन के वर्णन के साथ-साथ ग्रामीण स्त्रियों के जीवन के अभावों

और पैसों की कमी ही नहीं बल्कि संबंधों में अतृप्ति को भी दिखाया गया है। गाँवों में प्रचलित जलुआ प्रथा का वर्णन करते हुए कहानीकार बिक्रम सिंह ने दिखाया है, “जब तक नाड़ा बांधता है और इस सिलसिले में कुछ निश्चित कर पाता, चटाक से एक हंटर पीठ पर लगा। इस प्रकार मैं तिलमिला गया। पजामा सरककर नीचे आ गिरा। मैंने देखा खाकी वर्दी पहने कोई पुलिस का जवान खोर से गुजर रहा है। जूतों की मच-मच की आवाज आ रही थी। मुझे लगा इस जवान की मूँछे अवश्य होंगी।”²

गाँव की औरतें घर में आने वाले मेहमान से मज़ाक करती हैं, तो मुरझाये हुए ग्रामीण परिवेश में जीवन्तता का संचार हो उठता है। “मोंछ वाला सिपाही और का बोल रहा था? उसने बड़े अंदाज में यह कहा। मगर इसे कैसे मालूम। अच्छा तो ये माजरा है। वही तो कहूं। मैंने उसके चेहरे पर अपनी आंखें गड़ा दीं। किवाड़ के पीछे से झांकती हुई बड़ी आंखों का तो खेल नहीं है ये सब।”³ गाँव की औरतों के खुलेपन को दिखाते हुए लेखक लिखता है – “इतना कहकर उसने मेरा गट्टा पकड़ लिया। मुझे लगा कि मेरी इज्जत दांव पर लगी है। मैंने जोर लगाकर बिजली की गति से अपना हाथ छुड़ा लिया।”⁴ इस कहानी में गाँव की औरतें शर्माते या डरते हुए नहीं बल्कि पुरुषों का मज़ाक उड़ाते हुए और पुरुषों के पसीने छुड़ाते हुए दिखाया है। “मैं समझ नहीं पा रहा था कि वह मेरा और कितना मजाक उड़ाएगी। वह ठठाकर हंसी। मैंने इधर-उधर देखा, कोई आ-जा नहीं रहा है। वह गोपनीय मार्ग से जनाना घर की ओर चल पड़ी। इज्जत बच गई थी।”⁵

ग्रामीण परिवेश में स्त्री पुरुष के यौन संबंधों को दिखाती जलुआ कहानी एक पढ़े-लिखे युवक को चकित करती है। गाँव में केवल बच्चे व बूढ़े ही दिखाये गए हैं। युवा वर्ग आजीविका की तलाश में गाँव से बाहर ही ज्यादातर समय व्यतीत करते हैं ऐसी स्थिति में यहां की स्त्रियां पराए पुरुषों से यौन संबंध बना लेती हैं। लेकिन पुरुषों के लिए यह केवल जलुआ प्रथा है। इसलिए काका कहता है, “जलुआ से डर गए, जब गाँव के मर्द बाहर चले जाते हैं तो औरतें मन बहलाव के लिए ये खेल खेलती हैं।”⁶ प्रस्तुत कहानी में यौन संबंधों की अश्लीलता को यथार्थवादी नजरिये से प्रस्तुत किया गया है। मालती विवाहित स्त्री है पराए पुरुष से शारीरिक संबंध उसके लिए वर्जित नहीं है। वह रात में लड़के से शारीरिक संबंध बनाती है और दिन में उसके सामने मन की बात करती है, “ध्यान से सुनो, ये मेरे सबसे सुंदर कपड़े हैं। मैंने वर्षों अपने मर्द का इंतजार किया, वह कभी गाँव नहीं लौटा। मेरे जैसी कई औरतें हैं टोले में। जो बाहर गया वह लौटकर नहीं आया। गाँव में तुमने देखा ही है वहां केवल बूढ़े और बच्चे रहते हैं। तुम आए तो मैंने अपना शौक पूरा कर लिया। तसल्ली हुई कि मैं भी औरत हूं। अब ये कपड़े मेरे किसी काम के नहीं। इन्हीं कहीं फेंक देना।”⁷ यहां पर कहानीकार बिक्रम सिंह ने स्त्री के नैतिक पक्ष को उजागर किया है। मालती भले ही पराए पुरुष से संबंध बनाती है, यह उसकी जरूरत है। वह अपने सुन्दर कपड़ों को तब तक संभालकर रखती है जब तक उसकी इच्छा पूरी नहीं होती। जैसे ही इच्छा पूर्ति होती है वह कपड़े उसे सौंपकर आजाद हो जाती है। मालती जलुआ के बहाने अपनी कामेच्छा की पूर्ति करती है।

ब्रह्मपिशाच कहानी में लेखक ने दो पीढ़ियों की विधवाओं की स्थिति का चित्रण किया है, “आंगन में दो विधवाएं ऐसे व्यवहार कर रही थी, जैसे दुनिया की भीड़ से अलग होकर अपने को पहचान रही हों।”⁷ सतकालो स्वयं विधवा का जीवन बिता चुकी है इसलिए वे जानती थी कि एक युवा विधवा पर लोगों की कैसी गिद्ध दृष्टि होती है। “लछमीना के गोरे अंग घायल पड़े थे। श्वेत साड़ी शरीर से चिपक गई थी। फूले-फूले अंग झांक रहे थे। बिसनाथ पांडे अब जांघ को दबाकर नहीं बैठे थे, बल्कि स्पर्श सुख ले रहे थे।”⁸ इसलिए वह लछमीना को लोगों की कुदृष्टि से बचाना चाहती हैं और वह लोगों में एक भय फैलाती है कि, “गोबरधन पांडे लछमीना से बड़ा प्रेम करते थे। एक साल भी उनसे रहा नहीं गया। चले आये ब्रह्मपिशाच बनकर। पहले तो ज्यादा दिक नहीं करते थे, मगर अब तो पूरा नेटुघाघर लगा देते हैं। लगता है पांडे जी जान गये हैं कि लछमीना पर लोगों की बुरी नजर पड़

गई है। देखे, मैं तुम लोगों को बता देती हूँ कि अपने-अपने भतार को संभाल लो। नहीं तो पांडे जी किसी की मांग में सिंदूर नहीं रहने देंगे।”⁹

सतकालो स्वयं विधवा का दुख भोग रही थी इसलिए वह एक विधवा की तकलीफ को समझती थी। वह लछमीना से हमदर्दी दिखाते हुए कहती भी है कि, “पूरा गाँव तुमसे न जाने किस जन्म की दुश्मनी निकाल रहा है। लेकिन तुमसे क्यों दुश्मनी निकालूँ? मेरा है ही कौन? तुम्हारा दरद मुझे छोड़कर और कौन जान सकता है?”¹⁰ सतकालो अपने दुख से सीख लेकर लछमीना को वैधव्य के दुख से बचाना चाहती है। वह उसे गाँव के एक आदमी से विवाह करने के लिए प्रेरित करती है। इसलिए वह बातों ही बातों में उसे समझाती है कि, “सुना तुमने बिसनाथ पांडे के यहां टरेक्टर आया है। बहुत दामी है। बाल बच्चा कोई है नहीं। मेहरारू भाग गई। मिले थे। हमने कहा – का करोगे एतना माल-असबाब। बोले – दादी आप सब पुरखे-पुरनिया लोगों की किरपा है।”¹¹ यद्यपि सतकालो का अपना स्वार्थ भी इसमें निहित है। उसके स्वार्थ की आड़ में ही बिसनाथ पांडे लछमीना को पाने की तरकीबें लगाता रहता है। वह कभी सतकालो को बहला-फुसलाकर और कभी धमकी देकर लछमीना से बात करने को कहता है, “हमें इंतजारी की लत नहीं है, और ध्यान रखना तुम्हारा खेत हमारे यहां रहना है। रहना छुड़ना है तो।”¹² इसलिए सतकालो लछमीना को उसकी आर्थिक स्थिति के बारे में चेताती है, “अभी तुम्हें बीस-तीस बरस जीना है। इस टूटते मकान में बीस-तीस साल काटना आसान नहीं है। अभी एक साल भी नहीं हुआ और हालात क्या से क्या हो गई? कटोरा भर-भर के दूध पीओगी।”¹³ वह उसे समझाते हुए कहती है, “बिसनाथ पांडे ने पटना में एक मकान खरीदा है। यहां नहीं रहना है। वहां कोई गाँव का नहीं है। मेम बनकर रहोगी। तीन बजे ही एक बस जाती है। तैयार रहना, कल आ जाउंगी।”¹⁴

इस कहानी का अन्त स्वयं लेखक ने स्पष्ट नहीं किया है लेकिन एक संकेत अवश्य दिया है कि लछमीना को समझाने वाली सतकालो बिसनाथ पांडे के घर की ओर जाती है। उससे पहले वह लछमीना को उसके भविष्य के बारे में चेता चुकी थी। निर्णय उसने लछमीना के पाले में छोड़ दिया था कि वह जो निर्णय ले। लेकिन जब हम बिक्रम सिंह की ‘जलुआ’ कहानी पढ़ते हैं तो स्पष्ट होता है कि लछमीना ही मालती बनकर उभरती है। जो निर्णय लछमीना नहीं ले पाई वह निर्णय मालती ले लेती है और अपने जीवन की साध पूरी कर लेती है। ऐसा लगता है मालती ही लछमीना का फैसला सुनाती है। मालती के बहाने लेखक ने लछमीना का फैसला सुनाया। ‘ब्रह्मपिशाच’ कहानी की लछमीना युवा विधवा होने के कारण संस्कृति की खोह में छटपटाती है लेकिन वह किसी निष्कर्ष पर पहुंचने की हिम्मत नहीं कर पाती। हालांकि सतकालो उसे दूसरा विवाह करने के लिए उकसाती रहती है लेकिन वह सतकालो की बात मानकर बिसनाथ पांडे से विवाह कर पाती है या नहीं यह निर्णय ‘ब्रह्मपिशाच’ कहानी में स्पष्ट नहीं हो पाया, लेकिन ‘जलुआ’ कहानी की पात्रा मालती के चरित्र को देखें तो उसमें लछमीना का ही प्रगतिशील रूप दिखता है। जो निर्णय लछमीना सतकालो को उकसाने और समझाने पर भी ले पाई थी उसे मालती एक झटके में ही ले लेती है। शायद यह मालती के पति के जिंदा होने का फायदा होती है। प्रेमचंद ने भी माना है कि, “साहित्य अपने काल का प्रतिबिम्ब होता है। जो भाव और विचार लोगों के हृदयों को स्पन्दित करते हैं, वही साहित्य पर भी अपनी छाया डालते हैं।”¹⁵ इन दोनों कहानियों का प्रकाशन वर्ष देखें तो स्पष्ट होता है कि ‘ब्रह्मपिशाच’ कहानी का प्रकाशन वर्ष 1992 है जिसमें लछमीना घुटती नजर आती है लेकिन 2004 में रचित कहानी जलुआ की पात्रा मालती घुटती नहीं है और ना ही उसे किसी सतकालो की जरूरत पड़ती है। वह अपने जीवन की साध पूरी करने का निर्णय एक झटके में ले लेती है। एक लेखक की दो कहानियों की पात्राओं के निर्णय में यह अंतर समय की मांग या लेखक की दृष्टि का विकास, इसका निर्णय पाठकों पर छोड़ दिया है। इन दोनों कहानियों को पढ़ते हुए यह महसूस जरूर होता है कि ‘ब्रह्मपिशाच’ की लछमीना को जलुआ की मालती में परिवर्तित करने में कहीं ना कहीं सतकालो की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। सतकालो एक बूढ़ी विधवा है जिसने ताउम्र वैधव्य

को ढोया है। वह नहीं चाहती कि लछमीना भी उसकी तरह अपनी जिन्दगी बर्बाद कर दे इसलिए वह लछमीना को बिसनाथ पांडे से विवाह करने के लिए उकसाती रहती है और मालती जैसे सतकालो की साध को पूरा करती नजर आती है।

सतकालो के बारे में कहानीकार ने बताया है कि, “ऐसे सतकालो ही एकमात्र वृद्धा थी, जो बेहिचक लछमीना के घर जा सकती थी। जब कई दिनों तक लछमीना एकान्तवास से ऊब गई और रह रहकर आत्महत्या के बारे में सोचने लगी, तभी सतकालो का आगमन हुआ। ऐसा नहीं था कि वह पहले नहीं आ सकती थी, परन्तु वह जान बूझकर नहीं आई। वह पूरा मूल्य चाहती थी और उसे हासिल करने की तरकीबें भी जानती थी।”¹⁶

“जब-जब लछमीना पराजय बोध से चकराने लगती सतकालो ही उसे भंवर से निकालती। लछमीना उससे शंकित भी रहती थी और उसकी सहानुभूति की भी आदि हो चुकी थी। वह नरक पार कराने वाली गाय थी।”¹⁷

बिक्रम सिंह ने अपनी कहानियों में स्त्री चेतना को दर्शाया है। उनकी स्त्री पात्राओं की चेतना व्यक्तिवादी होते हुए भी सामाजिक दायरे के अन्तर्गत हैं। उदाहरणस्वरूप ‘जलुआ’ कहानी में लेखक ने सामाजिक प्रथा ‘जलुआ’ के बहाने स्त्री चेतना को दिखाया है। वह सम्पूर्ण समाज की स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है। हिन्दी साहित्य में आधुनिक चेतना खासकर स्त्री चेतना को पारिवारिक टूटन, समाज और परिवार से विद्रोह का परिणाम दिखाया गया है, परन्तु इनकी कहानियों में स्त्री चेतना का समाज या परिवार पर कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं दिखाई देता। ‘जलुआ’ की मालती का संस्कृति और सामाजिक मूल्यों से विद्रोह करना उसके परिवार पर कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं डालता। वह अपनी यौन इच्छा को पूरा करने के लिए अपना परिवार छोड़कर भी नहीं भागती अपितु परिवार की जिम्मेवारी का निर्वाह करती रहती है। वह व्यक्तिगत स्तर पर विद्रोहिणी है परन्तु अपने दुखों, तकलीफों को बदला परिवार से नहीं लेती। लेखक ने उसे कहीं भी परिवार को कोसते हुए नहीं दिखाया है। मालती का दुख पति के विरह के कारण है इसलिए उसके मन में केवल पति के प्रति शिकायत है। वह ‘जलुआ’ के बहाने पति की कमी एक दिन के लिए ही सही, पूरी कर लेती है और फिर वापिस अपने परिवार में लौट आती है। मालती की समस्या केवल अकेली मालती की ही नहीं है बल्कि समाज की अन्य परित्यक्त औरतों भी ऐसी ही तकलीफ से गुज रही है जिनके बारे में वह बताती भी हैं, “मेरे जैसी कई औरते हैं टोले में। जो बाहर गया वह लौटकर नहीं आया। गाँव में तुमने देखा ही है वहाँ केवल बूढ़े और बच्चे रहते हैं। तुम आए तो मैंने अपना शौक पूरा कर लिया।”¹⁸ इससे स्पष्ट होता है कि मालती की समस्या पूरे गाँव और समाज की समस्या है।

‘जलुआ’ कहानी की क्रान्तिकारी मालती की एक और विशेषता है कि लेखक ने उसकी पहचान स्पष्ट नहीं की है। कहानी के अन्त में उसे गन्ने के खेतों में गायब होते हुए दिखाया है। यह एक प्रतीकात्मक घटना है। मालती का अन्त में गन्ने के खेतों में गायब होना यह दर्शाता है कि विद्रोह के बाद भी उसका जीवन खेतों में मेहनत करते-करते ही बीतने वाला है। उसकी जिन्दगी खेतों की मिट्टी में ही मिलती रहेगी। वह समाज और संस्कृति से विद्रोह करके भी गुमनाम ही रहती है। वह किसी के लिए प्रेरणा या किसी आन्दोलन की प्रेरणा नहीं बनती। यह मालती की हार है या समाज की परिणति। ऐसा शान्त और सामान्य अन्त मालती द्वारा किए गए विद्रोह को दो रूपों में व्याख्यायित करता है, एक तो मालती का विद्रोह किसी सामाजिक क्रान्ति के लिए नहीं था, दूसरी मालती जैसी स्त्रियों के लिए यह विद्रोह सामान्य बात है। इसको महिमामंडित करके वे अपने शान्त जीवन में कोई हलचल नहीं चाहती। अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों से भागना नहीं चाहती। वे समाज से कटना नहीं चाहती बल्कि समाज में रहते हुए ही अपनी जरूरतों को पूरा करने का तो निर्णय लेने की हिम्मत करती है।

‘ब्रह्मपिशाच’ कहानी की लछमीना को समझाने वाली सतकालो एक प्रतीकात्मक पात्रा है। वह अतीत, वर्तमान और भविष्य की प्रतीक है। सतकालो का अतीत विधवा जीवन की सच्चाई को बयान करता है और उसकी चिन्ताएं एक विधवा स्त्री के भविष्य की चिन्ताओं को दर्शाती हैं। समय की सीख ही सबसे बड़ी सीख होती है और लछमीना को सीख देने का कार्य लेखक ने सतकालो के माध्यम से किया है। सतकालो के बहाने मानो सत्य और काल समय के रूप में बोल रहा हो। बिक्रम सिंह की कहानियों में पात्रों का नामकरण भी बहुत सोच समझकर और परिवेशानुकूल किया गया है। उदाहरणस्वरूप ‘ब्रह्मपिशाच’ कहानी की पारम्परिक पात्रा का नाम लछमीना रखा गया है तो परम्पराओं को तोड़ने वाली ‘जलुआ’ कहानी की पात्रा का नाम मालती रखा गया है। इन दोनों के बीच की कड़ी सतकालो को समय के प्रतीक के रूप में चुना है। सतकालो समय का ही प्रतीक है जो जलुआ कहानी में भी लछमीना के परिवर्तित रूप मालती के सामने साक्षी बन बूढ़ी के रूप में उपस्थित रहती है। जब तक सतकालो के रूप में समय आगे बढ़ने का समर्थन करता है तब तक लछमीना उसको सुनते रहती है लेकिन ज्यों ही समय बाधा बनता है तो मालती उसे नकारने में भी गुरेज नहीं करती। “एक बूढ़ी औरत आंगन में सधे हुए हाथों में सूप चलाए जा रही थी। कुछ बुदबुदाने के अंदाज में अपने भाग्य को कोस रही थी। बीच-बीच में दो चार मोती मालती जी पर भी न्यौछावर हो जाते थे। पता नहीं मालती जी ने कौन सी सांकेतिक झिड़की लगाई कि बुढ़िया वहां से गायब हो गई।”¹⁹

भारतीय समाज पारम्परिक समाज है। इस पारम्परिक समाज में स्त्री को लेकर जो दृष्टिकोण बने हैं, उस दृष्टिकोण का यथार्थ चित्र बिक्रम सिंह ने अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया है। ‘पंचर’ कहानी की पात्रा कबूतरी के माध्यम से पितृसत्तात्मक समाज में जमाल जैसा आदमी जो शोषक वर्ग का प्रतीक है उसकी नजर रमुआ के श्रम व रमुआ की बहन कबूतरी के श्रम पर न जाकर उसकी देह पर टिक जाती है। “अच्छा बता तेरी बहन क्या करती है? – वह भी बर्तन मांजती है। उन दोनों को यहीं ला, वो भी यहीं रहेंगी। ...सारा खर्चा मैं दूंगा।”²⁰ वह कबूतरी को पाने का हर संभव प्रयास करता है। “अपनी माँ और कबूतरी को यहां ला.... अरे साला अब भी मान जा, एक पाव जलेबी तुझे रोज न खिलाऊं तो मेरा नाम भी जमाल नहीं। जमाल ने फिर एक गोंटी फेंकी।”²¹ जैसे ही कबूतरी गरीबी के जंजाल से बाहर निकलती है वैसे ही वह अपने आप को आजाद महसूस करती है और समाज की परम्पराओं को तोड़ती नज़र आती है और वही ‘ब्रह्मपिशाच’ की लछमीना उसी परम्परा में दम तोड़ती नज़र आती है। ‘पंचर’ कहानी की तरह ही बिक्रम सिंह ‘टोह’, ‘टॉस’ और ‘पब्लिक पैलेस’ जैसी कहानियों में स्त्री आजादी की भी बात करते हैं।

कहानीकार बिक्रम सिंह ने स्त्री जीवन के सभी आयामों को प्रस्तुत किया है। उनकी कहानी में स्त्री कहीं पारम्परिकता के घेरे में घुट-घुटकर जी रही है तो कहीं विसनाथ पांडे जैसे व्यक्ति की गुलामी को स्वीकार करने के लिए मजबूर होते दिखाया है। कहीं पर परिस्थितियों से पलायन करती कबूतरी भी है तथा पारम्परिक समाज में यौवन स्वच्छंदता को प्राप्त करती हुई मालती भी है। वहीं ‘टोह’ कहानी की क्रिस्टीना भी है जो आधुनिक स्त्री विमर्श को प्रस्तुत करती हुई भगवान के चित्र को लात मारती है कि उसे कुरूप क्यों बनाया। देह व्यापार से जुड़ी हुई क्रिस्टीना को जब दो ग्राहक पुरुष रंग के कारण उसे नकार देते हैं तो वह अपना गुस्सा ईश्वर पर उतारती है। “मुझे क्यों जन्म दिया। क्या ये मुझे सुन्दर नहीं बना सकते थे। इनका मैंने क्या बिगाड़ा था। अगर मुझे इतना ही कुरूप बनाना था तो मुझे किसी आदिवासी गाँव में क्यों नहीं पैदा किया। उसने ताबड़तोड़ लात मारकर उन सभी चित्रों को तोड़ दिया।”²² इस तरह क्रिस्टीना स्त्री विमर्श को एक नया आयाम देती है।

बिक्रम सिंह की कहानियों में परम्परा से जुड़ी हुई कहानियों में स्त्रियों का जहाँ एक ओर प्रस्तुतीकरण है वहीं दूसरी ओर वह परम्परा को लात मारती हुई नज़र आती है। इन्होंने अपनी कहानियों में भारतीय समाज के अनुरूप ही पात्रों का चयन किया। बिक्रम सिंह की कहानियों के अध्ययन से ऐसा

प्रतीत होता है कि वे परम्परा में ही प्रगति के बीज खोज रहे थे। उनकी कहानियाँ भारतीय संदर्भ में भारतीयता को समेटे हुए परिवर्तन को अपनाती हैं।

संदर्भ सूची :

1. प्रेमचंद प्रतिनिधि संकलन, संपा—नामवर सिंह, पृ. 3
2. जलुआ, बिक्रम सिंह, पृ. 17
3. जलुआ, बिक्रम सिंह, पृ. 19
4. वही, पृ. 20
5. वही, पृ. 20
6. वही, पृ. 25
7. वही, पृ. 25
8. ब्रह्मपिशाच और अन्य कहानियाँ, बिक्रम सिंह, पृ. 74
9. ब्रह्मपिशाच और अन्य कहानियाँ, बिक्रम सिंह, पृ. 73
10. ब्रह्मपिशाच और अन्य कहानियाँ, बिक्रम सिंह, पृ. 76
11. ब्रह्मपिशाच और अन्य कहानियाँ, बिक्रम सिंह, पृ. 76
12. ब्रह्मपिशाच और अन्य कहानियाँ, बिक्रम सिंह, पृ. 77
13. ब्रह्मपिशाच और अन्य कहानियाँ, बिक्रम सिंह, पृ. 78
14. ब्रह्मपिशाच और अन्य कहानियाँ, बिक्रम सिंह, पृ. 81
15. ब्रह्मपिशाच और अन्य कहानियाँ, बिक्रम सिंह, पृ. 81
16. प्रेमचंद प्रतिनिधि संकलन, संपा.—नामवर सिंह, पृ. 5
17. ब्रह्मपिशाच और अन्य कहानियाँ, बिक्रम सिंह, पृ. 79
18. ब्रह्मपिशाच और अन्य कहानियाँ, बिक्रम सिंह, पृ. 79
19. जलुआ, बिक्रम सिंह, पृ. 25
20. ब्रह्मपिशाच और अन्य कहानियाँ, बिक्रम सिंह, पृ. 80
21. ब्रह्मपिशाच और अन्य कहानियाँ, बिक्रम सिंह, पृ. 12
22. ब्रह्मपिशाच और अन्य कहानियाँ, बिक्रम सिंह, पृ. 13
23. मुकदमा और अन्य कहानियाँ, बिक्रम सिंह, पृ. 32

The outlines of Gift under Muslim Law - A detailed study

DR. FARID KHAN

Associate Professor,
Department Of Law Shri Varshney College,
Aligarh, U.P

Gifts are the expressions of love, care, and affection to the family members, friends, needy persons or any one we like or care. From the time immemorial in all societies in the world, this kind of practice is found. Gift or Hiba is a gratuitous transfer of one's property to any person inter vivos without consideration. The transferee of the property is called donor and in whose favour the property is transferred is called donee. A person can transfer or dispose of his property through many ways such as sale, mortgage, lease, exchange, will, pledge as well as through gift. A person can transfer his property in his life as well as after his life with consideration and without consideration. When he dispose of his property in his life it is called gift and if he arranges to dispose of his property after his death it is called will. Gift being a transfer of property, is governed under The Transfer of Property Act, 1882. Chapter VII of this Act is applicable to Gifts made by any person in India, irrespective of religion, caste, & creed. But, this chapter vii of TPA, 1882 does not apply to Muslim Gifts' or Hiba. Although there is no difference of Gift made by a Muslim, a Hindu or any citizen of India in its nature but the difference lies in formalities. Therefore, Muslim personal Law is applied to Muslims in relation to gift.

One of the interesting thing regarding gift is that a person can transfer or make Gift of 100%, of his property. But through will he can transfer only 1/3 of his property even after deduction of all debts and necessary expenses, i.e. funeral expenses, dower etc. A Gift made during death illness is subject to all the restrictions. The donor's power to dispose of his property by a gift during marz ul maat is limited.

A death bed gift

When made to non-heir - cannot take effect beyond 1/3 of his estate after payment of funeral expenses as well as other debt's i.e., dower. If the Gift amount to more than one third of his estate, his heirs have to give their consent to the excess to take effect. If they do not consent the gift takes effect only in respect of one third of the donor's estate.

Constitutionality of Gift / Hiba. The Transfer of property Act exempts only those gifts which are made by Muslims. This exemption may appear to be a discrimination on the ground of religion which is against the constitutional mandate, but it is now well settled law that this exemption is constitutional and lawful.¹

Muslim Gifts or Hiba has been associated with religion and has also been included in The Shariat Act, 1937, therefore, the exemption under Section 129 of the Transfer of

Property the Act does not violate Article 14 of the Constitution of India. The courts have held that the rules of Muslim law regarding gifts are based on reasonable classification and there is no discrimination in allowing a separate law for gift made by muslims.²

Section 122 " Gift" is the transfer of certain existing movable property made voluntarily and without consideration, by one person, called the donor, to another, called donee, and accepted by or on behalf of the donee.³

Kinds of Gift / Hiba.

- a. Hiba - gift without consideration
- b. Hiba-bil-Ewaz. – gift with consideration
- c. Hiba-bashartul-Ewaz - gift with condition precedent
- d. Musha – gift of an un divided property
- e. Aria - Gift of usufruct.

Conditions of a valid Gift.

1. Transfer of property through act of parties. There should be a gratuitous transfer of existing property by two persons through act of parties not by operation of law.
2. Transfer of ownership - It is not the transfer of property only but there should be the transfer of ownership from donor to donee.
3. Immediate transfer of ownership is necessary to complete the Gift.
4. Existing Form- For Hiba it is necessary that existing property in the same form should be present. For example, if a person makes a gift of 10 sacks of flour, it is the flour not the wheat to be in existence or a future property such as crop.
5. Without consideration - A general gift or Hiba should be without consideration, voluntary as well as intervivos as per Sec. 122 TPA, 1882. But under Muslim law as an exception some consideration as well as conditions are permitted.

Essentials of a valid Gift

1. Declaration - There should be a declaration of Gift (named, existing property) by the donor, may be oral, written or through a registered Gift deed with free consent and bonafide intention. For a Hiba the donor must be a Muslim, adult, of a sound mind and owner of the property. The declaration should be in clear words.

If a gift is made by a person in a particular state of mind, i.e., intoxication, attack of insanity, jest or compulsion, fraud, undue influence and threat. In these situations, if the donor wants to revoke gift, he has to prove that he was in a state of intoxication, jest, compulsion or was not in a position of sound mind. On the other hand, if donee want to possess gifted property of a person who is in either intoxication or having

some kind of mental disease has to prove that at the time of making gift the donor was sane, not intoxicated, jest or not in a state of compulsion as the case may be.

2. Acceptance of gift by donee - Acceptance of Hiba by donee is as necessary as the declaration of Gift by donor. the acceptance must be unconditional, means without adding any prefix or suffix. There are many qualifications of donor but there is no qualification for the donee, except that while making the gift he/she must be in existence. Insane, lunatic mad, idiot, minor child can be the donee and in these cases the acceptance has to be given by the guardian. An unborn child/ a child in womb can be a donee for a gift provided that he should born within six months of the gift declared/completed. A gift can be given to legal person, such as Mosque, Madarsa/ school, College, Dargah or khanqah. The acceptance in these cases be obtained by manager /Mutwalli.

3. Delivery of possession - There should be a delivery of possession of gifted property from donor to donee. Meaning thereby the the gifted property should be handed over/possessed by the donee, i.e., if the gifted property is a house – donor should vacate and left the house. If land - It should be harvested by the donee. If Shops or plot- The donee should take the rent.

In a case⁴ where the property was gifted on paper. The mutation (Dakhil-Kharij) was done. There was a declaration as well as acceptance by the donee. But the possession was not given. The property was with the donor. It was held by the court that the Gift is not valid.

In another cases⁵, the husband deposited some amount of money in his account, while showing the deposit slip to his wife, he said that after taking bath he would deposit the money in your account. The deposit slip was with the wife. The husband died before depositing the said amount in his wife's account. The wife's possession over the deposit slip was not considered as the transfer of amount and held the gift void.

If a property is illegally possessed by any trespasser, the gift is valid. But if there is a dispute about the ownership and the court has to decide, than there would be no gift of this property because it is a future property.

In an interesting case⁶ a maternal grandfather (nana) has gifted some property to his minor maternal grandson. The acceptance was given by the mother (daughter of the donor). The possession of the property was also given by the nana to his daughter not to his son-in-law - Damad. It was held by the Court that mother in this case is not a guardian because the father is alive and there is no dispute between the husband and wife, therefore the gift was held void. If the possession of the gifted property given to father the result would have been different.

In another case⁷

A husband gift's some property to his minor wife (16-year-old), the wife being minor the acceptance and possession is given by the mother of the minor wife. After some time, husband dies and few days later wife died. The brother of deceased (donor-husband) filed the suit against the validity of Gift. The mother of the minor girl

cannot be the legal Guardian when her father being alive. The court accept his plea but held the Gift valid because the wife though minor less than 18 years of age, but attained the age of puberty therefore she can use her discretion.

Delivery of possession of Gifts through Trust - The Gift can be made validly through trust and all the essentials should be followed. In a case Sadiq Hussain vs Hashim Ali.⁸

A Shia person made a gift in favour of his family (wife +3 children) through trust. The Family members were the trustees. Trust and gift deed is registered. Gift deed was signed and registered by the donor, but could not be signed by the trust members / donees. The property being not actually transferred therefore, held void.

When delivery of possession is not necessary

There are many circumstances when the delivery of possession of the Gifted property is not necessary though it is an essential element such as - donor and donee, live in the same house, or the donee already possess the property. There are some relations, where physical delivery of the gifted property is not necessary, for example.

- Husband to wife or wife to husband
- Father to kids or kids to their parents
- Relative to relative (provided, they are living in the same premises).
- Guardian to ward or ward to Guardian
- When gifted property is in the possession of the donee due to Lease, bailment, mortgage.

Subject matter of Gifts: ‘All forms of property be it movable⁹, immovable¹⁰, tangible/ corporeal¹¹, intangible / incorporeal¹² over which control may be exercised and can be transferred¹³ are the subject of Gift. The property may be self-acquired or ancestral. In a Simple way we can say that anything which can be termed as 'maal' can be the subject matter of Gift.’

Gift of Spes Successionis – Successionis means mere expectation of getting certain property through Succession. A son after the death of his father, inherits his property as a legal heir. But before the death of father, the son has simply a chance or expectation of getting his property through inheritance because he may or may not survive his father. Therefore, during the life of his father, the son's right in father's property is only a future possible interest i.e., spes successionis. Therefore, it being the future property it cannot be the subject matter of gift. Similarly, a property given under a will is a future property, cannot be a subject matter of gift.

Gift of a future property. The property which is the subject matter of a gift must be in existence at the time of declaration. If through a gift, the donor transfers the control and the ownership of a property. For ownership the existence of property is necessary. Therefore, if the property does not exist, the ownership also cannot exist. If ownership does not exist, what is to be transferred? According to Fatawa-e Alamgiri, the property whose existence belongs to future is not a subject matter of gift, such gift is void.

Gift of dower- Dower is a debt on husband. Right to claim a debt is an actionable claim, therefore, a dower can be a subject matter of gift. It may be noted that dower is a personal right of the wife and personal obligation of the husband, therefore it can neither be transferred by any person except wife nor can be transferred to any person other than husband. Meaning thereby gift of dower to any person other than husband is void. Even a gift of dower to a dead husband is valid.

Gift of services - It is clear that the subject matter of Gift must be property, whether tangible or intangible. Services or love and affection are not properties; therefore it can not be the subject matter of gift. But a person who has served in any capacity, friend, relative, doctor, neighbour or servant can be given a gift for rendering their services.

Gift of Musha

The word musha has been derived from Arabic word Shuyua, which means confusion. Musha is an undivided share in an immovable or movable property. Since the delivery of possession is one of the essentials of a valid gift, musha being a share in an undivided property, co-owned / joined property may create confusion or dispute among the family, therefore it is necessary that the property must be divided first, before it being gifted. In this situation we see that there are two types of property. I) Indivisible Property,

ii) Divisible Property.

Where property is indivisible – A gift may validly be made of an undivided share (musha) in a joint property which is incapable of being divided, or where the property can be used to better advantage in an undivided condition. Such as staircase, washroom or a small house. If this small bath, staircase or small house is divided it would be ruined, the musha in this case is valid.

Where property is divisible - The Gift of musha of a property which is capable of being divided is irregular but not void if made without partition. The Hedaya¹⁴ a gift of part of thing which is capable of division is not valid unless the gifted part be divided off and separated from the property of the donor, but a gift of part of an indivisible thing is valid.

Conditional and contingent gift- under Muslim Law; if a gift is made subject to some condition, the gift is valid but the condition is void. Where the donor has made a gift of his property subject to some condition which the donee is required to fulfil, the condition, being void, need not be fulfilled by the donee. Here non-fulfilment of the condition does not affect the validity of the gift and the gift is treated as if no condition is attached because gift is an unconditional transfer of property in which ownership or the absolute interest is transferred. Any condition which derogates from the completeness of the gift or is inconsistent with the full ownership is void. likewise, a gift cannot be made to take effect on happening of a certain event or contingency. A Gift of a future property is also not valid. A gift cannot be made as to take effect at any future time. Be the time is definite or indefinite.

Revocation of Gift; According to Muslim Law all voluntary transactions are revocable. Hence gifts may also be revoked. There is a difference of completed and in-completed Gift. The Gift which is completed i.e., property is delivered cannot be revoked and before delivery of property the gift can be revoked at any time.

Irrevocable Gifts - These are the gifts which after the delivery of possession cannot be revoked even by the court. Such as,

1. A Gift by husband to wife or by wife to husband.
2. where donor and donee are within the prohibited relationship.
3. where donor or donee is dead.
4. where the donee has transferred the property to another person.
5. where the property is lost or has been destroyed.
6. where the value of property increases subsequently.
7. where the property given is changed beyond identification.
8. where the gift has been made to secure religious or spiritual benefits.
9. when the gift is in the form of hiba-bil-Evaz.

Hiba-bil- Evaz: Gift with Exchange. Hiba-Bil-evaz is a unique concept of the Muslim personal Law, means a gift with exchange return or with consideration is valid under Muslim Law. It is necessary that all elements/formalities should be completed to make the Hiba-bil-evaz complete. Such as declaration, acceptance as well as possession should be made by both the sides. This kind of gift is generally considered as sale or exchange except that the evaz means exchange need not be equal to the original gift, evaz may be nominal.

Hiba-ba-shartul-Evaz : Gift with condition precedent

A gift with a condition for something in return is called. Hiba bashartul Evaz. In this kind of gift the gift and the Evaz go hand in hand. Payment or consideration is a prior condition for the Gift. Hiba bashartul Evaz is nothing but a set of two gifts at a time. As the whole transaction is a set of two independent gifts, therefore it must be completed by declaration, acceptance, delivery of possession and with the fulfilment of the second gift by the donee.

Difference between Hiba-bil-Evaz and Hiba-Bashartul Evaz.

Hiba Bil Evaz

Hiba-Bashartul Evaz

1. The consideration is paid by the donee voluntarily.	The payment/ exchange is Condition precedent
2. The consideration is at the will the donee.	The value / kind of Consideration is at the discretion of the donor.
3. It is more a kind of Exchange or sale in comparison of gift.	It is treated as gift.
4. Doctrine of musha is not applicable.	Doctrine of musha is applicable.

5. It is considered as sale or exchange; therefore, it must be in writing & registered.	Writing and registration is neither necessary nor sufficient.
---	---

Areat - It is merely a transfer of the right to enjoy the property /its usufruct for a limited period. The transferee / donee may enjoy the benefits only so long as the donor pleases. It is like a temporary licence, Without consideration and always revocable, therefore areat is neither transferable nor heritable.

Difference between Hiba and areat.

Hiba

Areat

1. The donor must be a person who has attained majority.	Majority not essential.
2. Ownership of the property is transferred, therefore it is transferable and heritable.	It is the right to enjoy the fruits/benefits of the property for a limited period not the ownership - Therefore it is neither transferable not heritable.
3. It must not be Conditional or limited in time.	It may be Subject to condition and revocable at any time.
4. It must be immediate not contingent.	It may be for future.
5. Gift of musha is not permitted in every case except in few cases.	Doctrine of musha does not apply.
6. Acceptance is necessary for its completion.	Acceptance is not a condition

REFERENCES:

1. Bibi Maniran v. Mohd. Ishaque. AIR (1963) Pat. 229.
2. M. Rawther V. M. Chary AIR (1972) Kerala 27
3. The Trasfer of Properly Act, 1882
4. Noor Jahan v. Muft- khan AIR (1970) Allahabad. 170
5. Agha Md. zafar V. Kulsoom Bibi (1897) 25 Cal. 9
6. Sunna Miyan v. Pillai (1933) Rangoon 155
7. In Kathisa umma vs Naraynath kunhamu AIR (1964) SC 275.
8. AIR (1916) 43 IA 212

9. Movable property is one which has a physical existence, which can be touched and can be removed from one place to another, technically it is called Goods, such as, jewellery, watch, mobile, utensils, clothes, etc.
10. Immovable property is one which has a physical existence touched but cannot be transferred from one place to another such as plot of land, house, shop, anything which is attached to land.
11. Tangible or corporeal property are those properties which has a physical existence and can be touched it may be a movable property- books furniture as well as an immovable property - house, shops etc.
12. Intangible/Incorporeal property are those property. which has no physical existence, can't be touched but they have their pecuniary. value such as, Debt, cash in bank. copy right, good will, equity of redemption, rental rights, etc.
13. Sec. 6 Transfer of property Act, 1882
14. Hedaya (Hamilton's Translation) Ed. 11,P. 483.